इस्लाम की

बुनियादी तालीमात

(ख़ुतबात मुकम्मल)

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)

अनुवादक

डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

विषय सूची

अध्याय — 4

ज़कात की हक़ीक़त

अध्याय — 5

हज की हक़ीक़त

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ط

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।)

भूमिका

इस किताब में इस्लामी जगत् के एक बड़े आलिम मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०) के उन ख़ुतबों (भाषणों) को जमा करके प्रकाशित किया गया है, जो उन्होंने सन् 1938 ई० में दारुल इस्लाम पठानकोट (पंजाब) की जामा मस्जिद में कम पढ़े-लिखे आम मुसलमानों के सामने दिए थे। इन ख़ुतबों में इतने सादा और प्रभावकारी अन्दाज़ में इस्लाम की शिक्षाओं को उनकी रूह के साथ पेश किया गया है कि इन्हें सुनकर या पढ़कर बेशुमार लोगों की ज़िन्दगियाँ सुधर गईं और वे बुराइयों को छोड़ने और भलाइयों को अपनाने पर मजबूर हो गए। इन लोगों में मुसलमान भी हैं और ग़ैर मुस्लिम भी हैं।

इन ख़ुतबों की इन्हीं ख़ूबियों की वजह से दुनिया की अनेक भाषाओं में इनके तर्जुमे बड़ी तादाद में प्रकाशित किए गए और वे सभी लोकप्रिय हुए।

मौलाना मौदूदी की एक अन्य लोकप्रिय किताब दीनियात (इस्लाम धर्म) में इस्लामी अक़ीदों की तफ़सील बयान की गई है और इस्लाम के शरई निज़ाम (व्यावहारिक व्यवस्था) के बारे में भी कुछ जानकारी उपलब्ध कराई गई है और अब इस किताब में दीन की रूह (स्प्रिट) और इबादतें तफ़सील से बयान कर दी गई हैं। उक्त दोनों किताबों को मिलाकर पढ़ने के बाद दीन को समझना और दीन पर चलना भी आसान होगा और फिर दीन पर अमल करने के नतीजे में इंसान और इंसानी समाज में एक ख़ुशगवार तब्दीली देखने में आएगी और लोग दीन के फ़ायदों और बरकतों को अपनी आँखों से ख़ुद देख सकेंगे।

जो लोग इन ख़ुतबों को जुमा में सुनाना चाहें वे पहले हर ख़ुतबे के शुरू में मसनून ख़ुतबा पढ़ें। दूसरा ख़ुतबा लाज़िमी तौर पर अरबी में दिया जाना चाहिए।

यह बात भी बता देना ज़रूरी मालूम होता है कि ये ख़ुतबे जिन हालात में दिए

गए थे वे हालात अब बहुत कुछ बदल चुके हैं, इसलिए पढ़ते वक़्त उन हालात को नज़र में रखना चाहिए।

यह किताब पाँच अलग-अलग हिस्सों में भी उपलब्ध है।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि०) हिन्दी ज़ुबान में इस्लामी शिक्षाओं पर आधारित किताबें तैयार करने की सेवा में लगा हुआ है। इस किताब को आपकी सेवा में पेश करने का सौभाग्य हमें मिला, इसपर हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं।

अल्लाह से दुआ है कि वह इस किताब को ज़्यादा से ज़्यादा मुफ़ीद बनाए।

— नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

अध्याय — 1

ईमान की हक़ीक़त

- मुसलमान होने के लिए इल्म की ज़रूरत
- मुसलमान और काफ़िर का असली फ़र्क़
- सोचने की बातें
- तय्यब कलिमे के मानी
- तय्यब कलिमा और ख़बीस कलिमा
- तय्यब कलिमे पर ईमान लाने का मक़सद

मुसलमान होने के लिए इल्म की ज़रूरत

अल्लाह का सबसे बड़ा एहसान

मुसलमान भाइयो ! हर मुसलमान सच्चे दिल से यह समझता है कि दुनिया में ख़ुदा की सबसे बड़ी नेमत 'इस्लाम' है। हर मुसलमान इस बात पर अल्लाह का शुक्र अदा करता है कि उसने नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की उम्मत में उसको शामिल किया और इस्लाम की नेमत उसको दी। ख़ुद अल्लाह तआला भी इसको अपने बन्दों पर अपना सबसे बड़ा इनाम ठहराता है। जैसा कि क़ुरआन पाक में आया है—

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ
وَ اَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِيْ وَرَضِيْتُ لَكُمُ الْإِسْلَامَ دِيْنًا ○

आज मैंने तुम्हारा दीन तुम्हारे लिए कामिल कर दिया और तुमपर अपनी नेमत पूरी कर दी और तुम्हारे लिए इस बात को पसन्द कर लिया कि तुम्हारा दीन इस्लाम हो। (क़ुरआन, 5:3)

एहसान का तक़ाज़ा

यह एहसान जो अल्लाह ने आपपर किया है उसका हक़ अदा करना आपपर फ़र्ज़ है, क्योंकि जो आदमी किसी के एहसान का हक़ अदा नहीं करता वह एहसान-फ़रामोश होता है और सबसे बदतर एहसान-फ़रामोशी यह है कि इनसान अपने ख़ुदा के एहसान का हक़ भूल जाए। अब आप पूछेंगे कि ख़ुदा के एहसान का हक़ किस तरह अदा किया जाए ? मैं इसके जवाब में कहूँगा कि जब ख़ुदा ने आपको हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की उम्मत में शामिल किया है तो उसके इस एहसान का सही शुक्र यह है कि आप मुहम्मद (सल्ल०) की पूरी पैरवी करें। जब ख़ुदा ने आपको मुसलमानों की मिल्लत में शामिल किया है तो उसकी इस मेहरबानी का हक़ आप इसी तरह अदा कर सकते हैं कि आप पूरे मुसलमान बनें। इसके सिवा ख़ुदा के इतने बड़े एहसान का हक़ आप और किसी तरह अदा नहीं कर सकते और यह हक़ अगर आपने अदा नहीं किया तो जितना बड़ा

ख़ुदा का एहसान है उतना ही बड़ा उसकी एहसान-फ़रामोशी का वबाल भी होगा । ख़ुदा हम सबको इस वबाल से बचाए—

आमीन !!!

मुसलमान बनने के लिए पहला क़दम

इसके बाद आप दूसरा सवाल यह करेंगे कि आदमी पूरा मुसलमान किस तरह बन सकता है ? इसका जवाब बहुत फैलाव चाहता है और आइन्दा जुमे के ख़ुतबों में इसी का एक-एक हिस्सा आपके सामने खोल-खोलकर बयान किया जाएगा । लेकिन आज के ख़ुतबे में मैं आपके सामने वह चीज़ बयान करता हूँ जो मुसलमान बनने के लिए सबसे ज़रूरी है, जिसको इस रास्ते का सबसे पहला क़दम समझना चाहिए ।

क्या मुसलमान नस्ल का नाम है ?

ज़रा दिमाग़ पर ज़ोर डालकर सोचिए कि आप 'मुसलमान' का जो लफ़्ज़ बोलते हैं उसका मतलब क्या है ? क्या इनसान माँ के पेट से 'इस्लाम' साथ लेकर आता है ? क्या आदमी सिर्फ़ इस बिना पर मुसलमान होता है कि वह मुसलमान का बेटा और मुसलमान का पोता है ? क्या मुसलमान भी उसी तरह एक मुसलमान पैदा होता है जिस तरह एक ब्राह्मण का बच्चा ब्राह्मण होता है, एक राजपूत का बेटा राजपूत और एक शूद्र का बेटा शूद्र ? क्या मुसलमान किसी नस्ल या जाति-बिरादरी का नाम है कि जिस तरह एक अँग्रेज़, अँग्रेज़ी क़ौम में पैदा होने की वजह से अँग्रेज़ होता है और एक जाट, जाट क़ौम में पैदा होने की वजह से जाट होता है । उसी तरह एक मुसलमान सिर्फ़ इस वजह से मुसलमान है कि वह मुसलमान नाम की क़ौम में पैदा हुआ है ? ये सवाल जो मैं आप से पूछ रहा हूँ,इनका आप क्या जवाब देंगे ? आप यही कहेंगे कि नहीं साहब ! मुसलमान इसको नहीं कहते । मुसलमान नस्ल की वजह से मुसलमान नहीं होता बल्कि इस्लाम को अपनाने से मुसलमान बनता है और अगर वह इस्लाम छोड़ दे तो मुसलमान नहीं रहता । एक आदमी चाहे ब्राह्मण हो या राजपूत, अँग्रेज़ हो या जाट, पंजाबी हो या हब्शी, जब उसने इस्लाम क़बूल किया तो मुसलमानों में शामिल हो जाएगा । और अगर एक दूसरा आदमी जो मुसलमान के घर पैदा हुआ है, अगर वह इस्लाम की पैरवी छोड़ दे तो वह मुसलमानों

की जमाअत से निकल जाएगा, चाहे वह सय्यद का बेटा हो या पठान का।

क्यों भाइयो ! आप मेरे सवाल का यही जवाब देंगे न ? अच्छा तो अब ख़ुद आप ही के जवाब से यह बात मालूम हो गई कि ख़ुदा की यह सबसे बड़ी नेमत जो आपको मिली है वह कोई नस्ली चीज़ नहीं है कि माँ-बाप से विरासत में आप ही आप मिल जाए और ख़ुद ब ख़ुद सारी उम्र आपके साथ लगी रहे, चाहे आप इसकी परवाह करें या न करें, बल्कि यह ऐसी नेमत है कि इसके हासिल करने के लिए ख़ुद आपकी कोशिश शर्त है । अगर आप कोशिश करके इसे हासिल करें तो यह आपको मिल सकती है और अगर आप इसकी परवाह न करें तो यह आपसे छिन भी सकती है । अल्लाह बचाए ।

इस्लाम लाने का मतलब

अब आगे बढ़िए, आप कहते हैं कि इस्लाम क़बूल करने से आदमी मुसलमान बनता है । सवाल यह है कि इस्लाम क़बूल करने का मतलब क्या है ? क्या इस्लाम क़बूल करने का यह मतलब है कि जो आदमी बस ज़बान से कह दे कि मैं मुसलमान हूँ या मुसलमान बन गया हूँ, वह अल्लाह तआला के नज़दीक मुसलमान है ? या, इस्लाम क़बूल करने का मतलब यह है कि एक आदमी अरबी के कुछ बोल बिना समझे-बूझे ज़बान से अदा कर दे और बस वह मुसलमान हो गया ? आप ख़ुद बताइए कि इस सवाल का आप क्या जवाब देंगे ? आप यही कहेंगे ना कि इस्लाम क़बूल करने का मतलब यह है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने जो तालीम दी है उसको आदमी जानकर, समझकर, दिल से क़बूल करें और उसके मुताबिक़ अमल करे । जो ऐसा करे वह मुसलमान है और जो ऐसा न करे वह मुसलमान नहीं है ।

पहली ज़रूरत— इल्म

यह जवाब जो आप देंगे, इससे आप ही आप यह बात खुल गई कि इस्लाम पहले इल्म का नाम है और इल्म (ज्ञान) के बाद अमल का नाम है । एक आदमी इल्म के बग़ैर ब्राह्मण हो सकता है क्योंकि वह ब्राह्मण

पैदा हुआ है और ब्राह्मण ही रहेगा। एक आदमी इल्म के बग़ैर जाट हो सकता है क्योंकि वह जाट पैदा हुआ है और जाट ही रहेगा, मगर एक आदमी इल्म के बिना मुसलमान नहीं हो सकता क्योंकि मुसलमान पैदाइश से मुसलमान नहीं हुआ करता, बल्कि इल्म से होता है। जब तक उसको यह इल्म न हो कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तालीम क्या है, वह उसपर ईमान कैसे ला सकता है और उसके अनुसार अमल कैसे कर सकता है ? जब वह जानकर और समझकर ईमान ही न लाया तो मुसलमान कैसे हो सकता है ? बस मालूम हुआ कि जिहालत और अज्ञान के साथ मुसलमान होना और मुसलमान रहना नामुमकिन है। हर आदमी जो मुसलमान के घर में पैदा हुआ है, जिसका नाम मुसलमानों जैसा है, जो मुसलमानों जैसे कपड़े पहनता है और जो अपने आपको मुसलमान कहता है असल में वह मुसलमान नहीं है, बल्कि मुसलमान दरअसल सिर्फ़ वह आदमी है जो इस्लाम को जानता हो और फिर जान-बूझकर उसको मानता हो। एक काफ़िर और एक मुसलमान में असली फ़र्क़ नाम का नहीं है कि वह ल्यूपोल्ड या रणजीत सिंह या राम प्रसाद है और यह अब्दुल्लाह है; इसलिए वह काफ़िर है और यह मुसलमान ? इसी तरह एक काफ़िर और एक मुसलमान में असली फ़र्क़ लिबास का भी नहीं है कि वह पतलून पहनता है या धोती बाँधता है और यह पाजामा पहनता है, इसलिए वह काफ़िर है और यह मुसलमान। बल्कि असली फ़र्क़ इन दोनों के बीच इल्म का है। वह काफ़िर इसलिए है कि वह नहीं जानता कि ख़ुदा का उससे और उसका ख़ुदा से क्या रिश्ता है और उस पैदा करनेवाले की मरज़ी के मुताबिक़ दुनिया में ज़िन्दगी बसर करने का सीधा रास्ता क्या है ? अगर यही हाल एक मुसलमान के बच्चे का भी हो तो फिर बताइए कि आप उसमें और एक काफ़िर में किस बिना पर फ़र्क़ करते हैं और क्यों यह कहते हैं कि वह तो काफ़िर है और यह मुसलमान है ?

हज़रात ! यह बात जो मैं कह रहा हूँ इसको ज़रा कान लगाकर सुनिए और ठण्डे दिल से इसपर विचार कीजिए। आपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि ख़ुदा की यह सबसे बड़ी नेमत जिसपर आप शुक्र और एहसानमंदी ज़ाहिर करते हैं, इसका हासिल होना और हासिल न होना दोनों बातें इल्म (ज्ञान) पर निर्भर हैं। अगर इल्म न हो तो यह नेमत आदमी को मिल

ही नहीं सकती और अगर थोड़ी-बहुत मिल भी जाए तो अज्ञानता के कारण हर वक़्त यह ख़तरा है कि यह सबसे बड़ी नेमत उसके हाथ से चली जाएगी। सिर्फ़ नादानी के कारण वह अपने नज़दीक यह समझता रहेगा कि मैं अभी तक मुसलमान हूँ, हालाँकि दरअसल वह मुसलमान नहीं होगा। जो आदमी यह जानता ही न हो कि इस्लाम और कुफ़्र में क्या फ़र्क़ है और ख़ुदा को एक मानने और उसके साथ साझी ठहराने में क्या भेद है, उसकी मिसाल तो बिलकुल ऐसी है जैसे कोई आदमी अँधेरे में एक पगडंडी पर चल रहा हो। हो सकता है कि सीधी लकीर पर चलते-चलते आप ही आप उसके क़दम किसी दूसरे रास्ते की तरफ़ मुड़ जाएँ और उसे यह ख़बर भी न हो कि मैं सीधी राह से हट गया हूँ, और यह भी हो सकता है कि रास्ते में कोई दज्जाल व दानव खड़ा हुआ मिल जाए और उससे कहे कि अरे मियाँ! तुम अँधेरे में रास्ता भूल जाओगे, आओ मैं तुम्हें मंज़िल तक पहुँचा दूँ। बेचारा अँधेरे का मुसाफ़िर ख़ुद अपनी आँखों से नहीं देख सकता कि सीधा रास्ता कौन-सा है, इसलिए नादानी के साथ अपना हाथ उस दज्जाल के हाथ में दे देगा और वह उसको भटकाकर कहीं से कहीं ले जाएगा। ये ख़तरे उस आदमी को इसी लिए तो पेश आते हैं कि उसके पास ख़ुद कोई रौशनी नहीं है और वह ख़ुद अपने रास्ते के निशानों को नहीं देख सकता। अगर उसके पास रौशनी मौजूद हो तो ज़ाहिर है कि न वह रास्ता भूलेगा और न कोई दूसरा उसको भटका सकेगा। बस इसी से समझ लीजिए कि मुसलमान के लिए सबसे बड़ा ख़तरा अगर कोई है तो यही कि वह ख़ुद इस्लाम की तालीम से नावाक़िफ़ हो, ख़ुद यह न जानता हो कि क़ुरआन क्या सिखाता है और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) क्या हिदायत दे गए हैं। इस जिहालत की वजह से वह ख़ुद भी भटक सकता है और दूसरे दज्जाल भी उसको भटका सकते हैं। लेकिन अगर उसके पास इल्म (ज्ञान) की रौशनी हो तो वह ज़िन्दगी के हर क़दम पर इस्लाम के सीधे रास्ते को देख सकेगा, हर क़दम पर कुफ़्र, शिर्क, गुमराही और बदकारी व गुनाह के जो टेढ़े रास्ते बीच में आएँगे उनको पहचानकर उनसे बच सकेगा और जो कोई रास्ते में उसको बहकानेवाला मिलेगा तो उसकी दो-चार बातें ही सुनकर वह ख़ुद समझ जाएगा कि वह बहकानेवाला आदमी है, उसकी पैरवी नहीं करनी चाहिए।

इल्म की अहमियत

भाइयो ! यह इल्म जिसकी ज़रूरत मैं आपसे बयान कर रहा हूँ उसपर आपके और आपकी औलाद के मुसलमान होने और मुसलमान रहने का दारोमदार है । यह कोई मामूली चीज़ नहीं है कि इससे बेपरवाई की जाए । आप अपनी खेती-बाड़ी के काम में ग़फ़लत नहीं करते, अपनी फ़सलों को पानी देने और उनकी देखभाल करने में लापरवाही नहीं करते, अपने मवेशियों को चारा देने में ग़फ़लत नहीं करते, अपने पेशे के कामों में ग़फ़लत नहीं करते, सिर्फ़ इसलिए कि अगर ग़फ़लत करेंगे तो भूखे मर जाएँगे और जान जैसी प्यारी चीज़ चली जाएगी । फिर मुझे बताइए कि उस इल्म के हासिल करने में ग़फ़लत क्यों करते हैं जिसपर आपके मुसलमान बनने और मुसलमान रहने का दारोमदार है ? क्या इसमें यह ख़तरा नहीं है कि ईमान जैसी प्यारी चीज़ चली जाएगी ? क्या ईमान, जान से ज़्यादा प्यारी चीज़ नहीं है ? आप जान का बचाव करनेवाली चीज़ों के लिए जितना वक़्त और जितनी मेहनत ख़र्च करते हैं, क्या उस वक़्त और मेहनत का दसवाँ हिस्सा भी ईमान का बचाव करनेवाली चीज़ों के लिए ख़र्च नहीं कर सकते ?

मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप में से हर आदमी मौलवी बने । बड़ी-बड़ी किताबें पढ़े और अपनी उम्र के दस-बारह साल पढ़ने में लगा दे । मुसलमान बनने के लिए इतना पढ़ने की ज़रूरत नहीं । मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि आप में का हर आदमी दिन-रात के चौबीस घण्टों में से सिर्फ़ एक घण्टा दीन का इल्म सीखने में ख़र्च करे । कम से कम इतना इल्म हर मुसलमान बच्चे, बूढ़े और जवान को हासिल होना चाहिए कि क़ुरआन जिस मक़सद के लिए और जो तालीम लेकर आया है उसका निचोड़ जान लें । नबी (सल्ल०) जिस चीज़ को मिटाने के लिए और उसकी जगह जो चीज़ क़ायम करने के लिए तशरीफ़ लाए थे उसको ख़ूब पहचान लें और ज़िन्दगी के उस ख़ास तरीक़े से वाक़िफ़ हो जाएँ जो अल्लाह ने मुसलमानों के लिए मुक़र्रर किया है । इतने इल्म के लिए बहुत ज़्यादा वक़्त की ज़रूरत नहीं है, और अगर ईमान प्यारा हो तो इसके लिए एक घण्टा रोज़ निकालना कुछ मुशकिल नहीं ।

मुसलमान और काफ़िर का असली फ़र्क़

मुसलमान और काफ़िर में फ़र्क़ क्यों ?

मुसलमान भाइयो ! हर मुसलमान अपने नज़दीक यह समझता है और आप भी ज़रूर ऐसा ही समझते होंगे कि मुसलमान का दर्जा काफ़िर से ऊँचा है । मुसलमान को ख़ुदा पसन्द करता है और काफ़िर को नापसन्द करता है । मुसलमान ख़ुदा के यहाँ बख़्शा जाएगा और काफ़िर की बख़शिश न होगी । मुसलमान जन्नत में जाएगा और काफ़िर दोज़ख़ में जाएगा । आज मैं चाहता हूँ कि आप इस बात पर ग़ौर करें कि मुसलमान और काफ़िर में इतना बड़ा फ़र्क़ आख़िर क्यों होता है ? काफ़िर भी आदम की औलाद है और आप भी । काफ़िर भी ऐसा ही इनसान है जैसे आप हैं । वह भी आपके ही जैसे हाथ, पाँव, आँख और कान रखता है । वह भी इसी हवा में साँस लेता है, यही पानी पीता है, इसी ज़मीन पर बसता है, यही पैदावार खाता है, इसी तरह पैदा होता और इसी तरह मरता है । उसी ख़ुदा ने उसको भी पैदा किया है जिसने आपको पैदा किया है । फिर आख़िर क्यो उसका दर्जा नीचा है और आपका ऊँचा ? आपको जन्नत क्यों मिलेगी और वह दोज़ख़ में क्यों डाला जाएगा ?

क्या सिर्फ़ नाम का फ़र्क़ है ?

यह बात ज़रा सोचने की है । आदमी और आदमी में इतना बड़ा फ़र्क़ सिर्फ़ इतनी-सी बात से तो नहीं हो सकता कि आप अब्दुल्लाह, अब्दुर्रहमान और ऐसे ही दूसरे नामों से पुकारे जाते हैं और वह दीनदयाल, करतार सिंह और राबर्टसन जैसे नामों से पुकारा जाता है । या आप ख़तना कराते हैं और वह नहीं कराता, या आप गोश्त खाते हैं और वह नहीं खाता । अल्लाह तआला जिसने तमाम इनसानों को पैदा किया है और जो सबका पालनहार है, ऐसी नाइनसाफ़ी व ज़ुल्म तो कभी कर ही नहीं सकता कि इन छोटी-छोटी बातों पर अपने बन्दों में फ़र्क़ करे और एक बन्दे को जन्नत में भेजे और दूसरे को दोज़ख़ में पहुँचा दे ।

असली फ़र्क़— इस्लाम और कुफ़्र-

जब यह बात नहीं है तो फिर सोचिए कि दोनों में असली फ़र्क़ क्या है ? इसका जवाब सिर्फ़ एक है और वह यह है कि दोनों में असली फ़र्क़ 'इस्लाम' और 'कुफ़्र' की वजह से होता है । इस्लाम के मानी ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी के हैं और कुफ़्र के मानी ख़ुदा की नाफ़रमानी के । मुसलमान और काफ़िर दोनों इनसान हैं, दोनों ख़ुदा के बन्दे हैं, मगर एक इनसान इसलिए बड़ाईवाला व अफ़ज़ल हो जाता है कि वह अपने मालिक को पहचानता है, उसके हुक्म की पैरवी करता है और उसकी नाफ़रमानी के अंजाम से डरता है । और दूसरा इनसान इसलिए ऊँचे दर्जे से गिर जाता है कि वह अपने मालिक को नहीं पहचानता और उसकी फ़रमाँबरदारी नहीं करता । इसी वजह से मुसलमान से ख़ुदा ख़ुश होता है और काफ़िर से नाराज़, मुसलमान को जन्नत देने का वादा करता है और काफ़िर को कहता है कि दोज़ख़ में डालूँगा ।

फ़र्क़ की वजह— इल्म और अमल

इससे मालूम हुआ कि मुसलमान को काफ़िर से अलग करनेवाली सिर्फ़ दो चीज़े हैं, एक 'इल्म' और दूसरी 'अमल' । यानी पहले तो उसे यह जानना चाहिए कि उसका मालिक कौन है ? उसके हुक्म क्या हैं ? उसकी मरज़ी पर चलने का तरीक़ा क्या है ? किन कामों से वह ख़ुश होता है और किन कामों से नाराज़ होता है ? फिर जब ये बातें मालूम हो जाएँ तो दूसरी बात यह है कि आदमी अपने आपको मालिक का ग़ुलाम बना दे । जो मालिक की मरज़ी हो उसपर चले और जो अपनी मरज़ी हो उसको छोड़ दे । अगर उसका दिल एक काम को चाहे और मालिक का हुक्म उसके ख़िलाफ़ हो तो अपने दिल की बात न माने और मालिक की बात मान ले । अगर एक काम उसको अच्छा मालूम होता है और मालिक कहे कि वह बुरा है, तो उसे बुरा ही समझे और अगर दूसरा काम उसे बुरा मालूम होता है और मालिक कहे कि वह अच्छा काम है, तो उसे अच्छा ही समझे । इसी तरह अगर एक काम में उसे नुक़सान नज़र आता हो और मालिक का हुक्म हो कि उसे किया जाए, तो चाहे उसमें जान और माल का कितना ही नुक़सान हो, वह उसको ज़रूर करके ही छोड़े ।

अगर दूसरे काम में उसको फ़ायदा दिखाई देता हो और मालिक का हुक्म हो कि उसे न किया जाए, तो फिर चाहे दुनिया भर की दौलत ही उस काम में क्यों न मिलती हो, वह उस काम को हरगिज़ न करे ।

यह 'इल्म' और यह 'अमल' है जिसकी वजह से मुसलमान ख़ुदा का प्यारा बन्दा होता है, उसपर ख़ुदा की रहमत उतरती है और ख़ुदा उसको इज़्ज़त देता है । काफ़िर यह इल्म नहीं रखता और इल्म न होने की वजह से उसका अमल भी यह नहीं होता; इसलिए वह ख़ुदा का जाहिल और नाफ़रमान बन्दा होता है और ख़ुदा उसको अपनी रहमत से महरूम कर देता है ।

अब ख़ुद ही इनसाफ़ से काम लेकर सोचिए कि जो व्यक्ति अपने आपको मुसलमान कहता हो, मगर वैसा ही जाहिल हो जैसाकि एक काफ़िर होता है और वैसा ही नाफ़रमान हो जैसा कि एक काफ़िर होता है, तो सिर्फ़ नाम और लिबास व खाने-पीने के फ़र्क़ की वजह से वह काफ़िर के मुक़ाबले में किस तरह अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) हो सकता है और किस बिना पर दुनिया और आख़िरत में ख़ुदा की रहमत का हक़दार हो सकता है ? इस्लाम किसी नस्ल या ख़ानदान या बिरादरी का नाम नहीं है कि बाप से बेटे को और बेटे से पोते को आप ही आप मिल जाए । यहाँ यह बात नहीं है कि ब्राह्मण का लड़का चाहे कैसा ही जाहिल हो और कैसे ही बुरे काम करे, मगर वह ऊँचा ही होगा; क्योंकि ब्राह्मण के यहाँ पैदा हुआ है और ऊँची ज़ात का है, और चमार का लड़का चाहे इल्म और अमल में हर तरह से उससे बढ़कर हो, मगर वह नीचा ही रहेगा; क्योंकि चमार के घर पैदा हुआ है और शूद्र है । यहाँ तो ख़ुदा ने अपनी किताब में साफ़ कह दिया है कि—

إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ اللَّهِ أَتْقَاكُمْ ۝

जो ख़ुदा को ज़्यादा पहचानता है और उसकी ज़्यादा फ़रमाँ-बरदारी करता है, वही ख़ुदा की नज़र में ज़्यादा इज़्ज़तवाला है ।

(क़ुरआन, 49:13)

हज़रत इबराहीम (अलै०) एक बुतपरस्त के घर पैदा हुए, मगर उन्होंने ख़ुदा को पहचाना और उसकी फ़रमाँबरदारी की, इसलिए ख़ुदा ने उनको

सारी दुनिया का इमाम बना दिया। हज़रत नूह (अलै०) का लड़का एक पैग़म्बर के घर पैदा हुआ मगर उसने ख़ुदा को न पहचाना और उसकी नाफ़रमानी की; इसलिए ख़ुदा ने उसके ख़ानदान की कुछ परवाह न की और उसे ऐसा अज़ाब दिया जिससे दुनिया सबक़ लेती है। बस ख़ूब अच्छी तरह समझ लीजिए कि ख़ुदा की नज़र में इनसान और इनसान में जो कुछ भी फ़र्क़ है वह इल्म और अमल के कारण है। दुनिया में भी और आख़िरत में भी, उसकी रहमत सिर्फ़ उन्हीं के लिए है जो उसको पहचानते हैं, उसके बताए हुए रास्ते को जानते हैं और उसकी फ़रमाँबरदारी करते हैं। जिन लोगों में यह ख़ूबी नहीं है उनके नाम चाहे अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान हों या दीनदयाल या करतार सिंह, ख़ुदा की नज़र में इन सब में कोई फ़र्क़ नहीं और उनको उसकी रहमत से कोई हक़ नहीं पहुँचता।

आज मुसलमान बेइज़्ज़त क्यों ?

भाइयो ! आप अपने आपको मुसलमान कहते हैं और आपका ईमान है कि मुसलमान पर ख़ुदा की रहमत होती है। मगर ज़रा आँखें खोलकर देखिए, क्या ख़ुदा की रहमत आप पर नाज़िल हो रही है ? आख़िरत में जो कुछ होगा वह तो आप बाद में देखेंगे, मगर इस दुनिया में जो आपका हाल है उसपर नज़र डालिए। आप अब भी करोड़ों की तादाद में हैं, इतनी बड़ी तादाद अगर इस्लाम की रूह और ईमान की कुव्वत रखती होती तो आप यूँ बेबस और बेवज़न न होते, बल्कि अल्लाह ने आपके हाथ में हुकूमत सौंपी होती। आपका सिर जो ख़ुदा के सिवा किसी के आगे न झुकता था, अब इनसानों के आगे झुक रहा है। आपकी इज़्ज़त, जिसपर हाथ डालने की कोई हिम्मत न कर सकता था, आज मिट्टी में मिल रही है। आपका हाथ जो हमेशा ऊँचा ही रहता था, अब वह नीचा होता है और इस्लाम के दुश्मनों के आगे फैलता है। जिहालत, ग़रीबी और क़र्ज़दारी ने हर जगह आपको ज़लील व रुसवा कर रखा है। क्या यह ख़ुदा की रहमत है ? अगर यह रहमत नहीं है, बल्कि खुला हुआ ग़ज़ब और प्रकोप है, तो कैसी अजीब बात है कि मुसलमान और उसपर ख़ुदा का ग़ज़ब नाज़िल हो! मुसलमान और ज़लील हो! मुसलमान और ग़ुलाम हो! यह तो ऐसी नामुमकिन बात है जैसे, कोई चीज़ सफ़ेद भी हो और काली भी।

जब मुसलमान ख़ुदा का महबूब और प्रिय है तो ख़ुदा का महबूब दुनिया में ज़लील और बेइज़्ज़त कैसे हो सकता है ? अल्लाह की पनाह ! क्या आपका ख़ुदा ज़ालिम है कि आप तो उसका हक़ पहचानें और उसकी फ़रमाँबरदारी करें और वह नाफ़रमानों को आप पर हाकिम बना दे और आपको फ़रमाँबरदारी के बदले में सज़ा दे ? अगर आपका ईमान है कि ख़ुदा ज़ालिम नहीं है और अगर आप यक़ीन रखते हैं कि ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी का बदला ज़िल्लत से नहीं मिल सकता, तो फिर आपको मानना पड़ेगा कि मुसलमान होने का दावा जो आप करते हैं उसी में कोई ग़लती है । आपका नाम सरकारी काग़ज़ों में तो ज़रूर मुसलमान लिखा जाता है, मगर ख़ुदा के यहाँ किसी सरकार के दफ़तर की सनद पर फ़ैसला नहीं होता । ख़ुदा अपना दफ़तर अलग रखता है । वहाँ तलाश कीजिए कि आपका नाम फ़रमाँबरदारों में लिखा हुआ है या नाफ़रमाँनों में ?

ख़ुदा ने आपके पास किताब भेजी ताकि आप उस किताब को पढ़कर अपने मालिक को पहचानें और उसकी फ़रमाँबरदारी का तरीक़ा मालूम करें । क्या आपने कभी यह मालूम करने की कोशिश की कि इस किताब में क्या लिखा है ? ख़ुदा ने अपने नबी को आपके पास भेजा ताकि वह आपको मुसलमान बनने का तरीक़ा सिखाए । क्या आपने कभी यह मालूम करने की कोशिश की कि उसके नबी (सल्ल०) ने क्या सिखाया है ? ख़ुदा ने आपको दुनिया और आख़िरत में इज़्ज़त हासिल करने का तरीक़ा बताया । क्या आप उस तरीक़े पर चलते हैं ? ख़ुदा ने खोलकर बताया कि कौन से काम हैं जिनसे इनसान दुनिया और आख़िरत में बेइज़्ज़त होता है । क्या आप ऐसे कामों से बचते हैं ? बताइए आपके पास इसका क्या जवाब है ? अगर आप मानते हैं कि न तो आपने ख़ुदा की किताब और उसके नबी की ज़िन्दगी से इल्म हासिल किया और न उसके बताए हुए तरीक़े की पैरवी की, तो आप मुसलमान हुए कब कि आपको इसका बदला मिले ? जैसे आप मुसलमान हैं वैसा ही बदला आपको मिल रहा है और वैसा ही बदला आख़िरत में भी देख लोगे ।

मैं पहले बयान कर चुका हूँ कि मुसलमान और काफ़िर में इल्म और अमल के सिवा कोई फ़र्क़ नहीं है । अगर किसी आदमी का इल्म और

अमल वैसा ही है जैसा किसी काफ़िर का है और वह अपने आपको मुसलमान कहता है तो वह बिलकुल झूठ कहता है । काफ़िर क़ुरआन को नहीं पढ़ता और वह नहीं जानता कि इसमें क्या लिखा है । यही हाल अगर मुसलमान का भी हो तो वह मुसलमान क्यों कहलाए ? काफ़िर नहीं जानता कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की क्या तालीम है और आपने ख़ुदा तक पहुँचने का सीधा रास्ता क्या बताया है । अगर मुसलमान भी उसी की तरह नावाक़िफ़ हो तो वह मुसलमान कैसे हुआ ? काफ़िर ख़ुदा की मरज़ी पर चलने के बजाए अपनी मरज़ी पर चलता है । मुसलमान भी अगर उसी की तरह अपनी मरज़ी पर चलनेवाला और आज़ाद हो, उसी की तरह अपने निज़ी ख़यालात और अपनी राय पर चलनेवाला हो, उसी की तरह ख़ुदा से बेपरवाह और अपनी ख़्वाहिश का बन्दा हो तो उसे अपने आपको 'मुसलमान' (ख़ुदा का फ़रमाँबरदार) कहने का क्या हक़ है ? काफ़िर हलाल व हराम में फ़र्क़ नहीं करता और जिस काम में अपने नज़दीक फ़ायदा या लज़्ज़त देखता है उसको अपना लेता है, चाहे ख़ुदा के नज़दीक वह हलाल हो या हराम । यही रवैया अगर मुसलमान का हो तो उसमें और काफ़िर में क्या फ़र्क़ हुआ ? ग़रज़ यह है कि जब मुसलमान भी इस्लाम के इल्म से उतना ही कोरा हो, जितना काफ़िर होता है और जब मुसलमान भी वही सब कुछ करे जो काफ़िर करता है तो उसको काफ़िर के मुक़ाबले में क्यों बड़ाई हासिल हो और उसका हश्र भी काफ़िर जैसा क्यों न हो ? यह ऐसी बात है जिसपर ठण्डे दिल से हम सबको ग़ौर करना चाहिए ।

सोचने की बात

मेरे प्यारे भाइयो ! कहीं यह न समझ लेना कि मैं मुसलमानों को काफ़िर बनाने चला हूँ । अल्लाह इससे पनाह में रखे ! नहीं, मेरा यह मक़सद हरगिज़ नहीं है । मैं ख़ुद भी सोचता हूँ और चाहता हूँ कि हममें से हर आदमी अपनी-अपनी जगह सोचे कि हम आख़िर ख़ुदा की रहमत से क्यों महरूम हो गए हैं ? हम पर हर तरफ़ से क्यों मुसीबतें नाज़िल हो रही हैं ? जिनको हम काफ़िर यानी ख़ुदा के नाफ़रमान बन्दे कहते हैं वे हमपर हर जगह ग़ालिब क्यों हैं ? और हम जो फ़रमाँबरदार होने का दावा करते हैं, हर जगह दबे हुए क्यों हैं ? इसकी वजह पर मैंने जितना ज़्यादा ग़ौर

किया, उतना ही मुझे यक़ीन होता चला गया कि हममें और काफ़िरों में बस नाम का ही फ़र्क़ रह गया है, वरना हम भी ख़ुदा से ग़फ़लत और उससे बेख़ौफ़ी और उसकी नाफ़रमानी में उनसे कुछ कम नहीं हैं । थोड़ा-सा फ़र्क़ हममें और उनमें ज़रूर है, मगर इसकी वजह से हम किसी अच्छे बदले के हक़दार नहीं हैं, बल्कि सज़ा के हक़दार हैं । हम जानते हैं कि क़ुरआन ख़ुदा की किताब है और फिर उसके साथ वह बरताव करते हैं जो काफ़िर करता है, हम जानते हैं कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के नबी हैं और फिर उनकी पैरवी से इस तरह भागते हैं जिस तरह काफ़िर भागता है, हमको मालूम है कि झूठे पर अल्लाह ने लानत की है, रिश्वत खाने और खिलानेवाले को जहन्नम का यक़ीन दिलाया है, सूद खाने और खिलानेवाले को बहुत बड़ा अपराधी ठहराया है, ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई) को अपने भाई का गोश्त खाने के बराबर बताया है, गाली, बेहयाई और बदकारी पर कड़ी सज़ा की धमकी दी है । मगर यह जानने के बाद भी हम बेदीनों की तरह यह सब काम आज़ादी के साथ करते हैं, गोया हमें ख़ुदा का कोई ख़ौफ़ ही नहीं । यही वजह है कि हम जो काफ़िरों के मुक़ाबले में थोड़े बहुत मुसलमान बने हुए नज़र आते हैं, इसपर हमें इनाम नहीं मिलता; बल्कि सज़ा दी जाती है । क़ाफ़िरों का हमपर हुकूमत करना, हर जगह हमारा नुक़सान उठाना, इसी जुर्म की सज़ा है कि हमें इस्लाम की नेमत दी गई थी और फिर हमने उसकी क़द्र न की ।

प्यारे भाइयो ! आज के ख़ुतबे में मैंने जो कुछ कहा है यह इसलिए नहीं कि आपको मलामत करूँ । मैं मलामत करने नहीं उठा हूँ । मेरा मक़सद यह है कि जो कुछ खो गया है उसको फिर से हासिल करने की कुछ फ़िक्र की जाए । खोए हुए को पाने की फ़िक्र उसी वक़्त होती है जब इनसान को मालूम हो कि उसके पास से क्या चीज़ खो गई है और वह कैसी क़ीमती चीज़ है । इसी लिए मैं आपको चौंकाने की कोशिश करता हूँ । अगर आपको होश आ जाए और आप समझ लें कि हक़ीक़त में बहुत क़ीमती चीज़ आपके पास थी, तो आप फिर से उसको हासिल करने की फ़िक्र करेंगे ।

इल्म हासिल करने की फ़िक्र

मैंने पिछले ख़ुतबे में आपसे कहा था कि मुसलमान को मुसलमान होने के लिए सबसे पहले जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह इस्लाम का 'इल्म' है। हर मुसलमान को यह मालूम होना चाहिए कि क़ुरआन की तालीम क्या है, रसूले पाक (सल्ल०) का तरीक़ा क्या है, इस्लाम किसको कहते हैं और कुफ़्र व इस्लाम में असली फ़र्क़ किन बातों की वजह से है ? इस इल्म के बग़ैर कोई आदमी मुसलमान नहीं हो सकता। मगर अफ़सोस है कि आप इस इल्म को हासिल करने की फ़िक्र नहीं करते। इससे मालूम होता है कि अभी तक आपको एहसास नहीं हुआ कि आप कितनी बड़ी नेमत से महरूम हैं। मेरे भाइयो ! माँ अपने बच्चे को दूध उस वक़्त तक नहीं देती जब तक कि वह रोकर माँगता नहीं। प्यासे को जब प्यास लगती है तो वह ख़ुद पानी ढूँढ़ता है और ख़ुदा उसके लिए पानी भी पैदा कर देता है। जब आपको ख़ुद ही प्यास न हो तो पानी से भरा हुआ कुआँ भी आपके पास आ जाए तो बेकार है। पहले आपको ख़ुद समझना चाहिए कि दीन से नावाक़िफ़ रहने में आपका कितना बड़ा नुक़सान है। ख़ुदा की किताब आपके पास मौजूद है, मगर आप नहीं जानते कि उसमें क्या लिखा है। इससे ज़्यादा नुक़सान की बात और क्या हो सकती है! नमाज़ आप पढ़ते हैं मगर आपको नहीं मालूम कि उस नमाज़ में आप अपने ख़ुदा से क्या अर्ज़ करते हैं। इससे बढ़कर और क्या नुक़सान हो सकता है! कलिमा, जिसके ज़रिए से आप इस्लाम में दाख़िल होते हैं उसके मानी तक आपको मालूम नहीं। आप नहीं जानते कि इस कलिमे को पढ़ने के साथ ही आपपर क्या ज़िम्मेदारियाँ आ पड़ती हैं। एक मुसलमान के लिए क्या इससे बढ़कर कोई नुक़सान हो सकता है ? खेती के जल जाने का नुक़सान आपको मालूम है, रोज़गार न मिलने का नुक़सान आपको मालूम है, अपने माल के नष्ट होने का नुक़सान आपको मालूम है, मगर इस्लाम से नावाक़िफ़ होने का नुक़सान आपको मालूम नहीं। जब आपको इस नुक़सान का एहसास होगा तो आप ख़ुद आकर कहेंगे कि हमें इस नुक़सान से बचाओ और जब आप ख़ुद कहेंगे तो इनशाअल्लाह आपको इस नुक़सान से बचाने का भी इनतिज़ाम हो जाएगा।

सोचने की बातें

क़ुरआन के साथ हमारा सुलूक

मुसलमान भाइयो ! दुनिया में इस समय मुसलमान ही वह ख़ुशक़िस्मत लोग हैं, जिनके पास अल्लाह का कलाम बिलकुल महफ़ूज़, हर तरह की काट-छाँट और अदल-बदल से पाक और ठीक-ठीक उन्हीं शब्दों में मौजूद है, जिन शब्दों में वह अल्लाह के सच्चे रसूल (सल्ल०) पर उतरा था और दुनिया में इस समय मुसलमान ही वह बदक़िस्मत लोग हैं जो अपने पास अल्लाह का कलाम रखते हैं और फ़िर भी उसकी बरकतों और अपार नेमतों से महरूम हैं। क़ुरआन इनसानों के पास इसलिए भेजा गया था कि उसको पढ़ें, समझें, उसपर चलें और उसको लेकर ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा के क़ानून की हुकूमत क़ायम कर दें। वह अपनी पैरवी करनेवालों को इज़्ज़त और ताक़त देने आया था। वह उन्हें ज़मीन पर ख़ुदा का असली ख़लीफ़ा बनाने आया था, और इतिहास गवाह है कि जब उन्होंने उसकी हिदायत पर अमल किया तो उसने उनको दुनिया का इमाम और पेशवा बनाकर भी दिखा दिया। मगर अब उनके यहाँ उसका प्रयोग सिवाय इसके और कुछ नहीं रहा कि उसको घर में रखकर जिन्न और भूत भगाएँ, उसकी आयतों को लिखकर गले में बाँधें और घोलकर पिएँ और पिलाएँ, सिर्फ़ सवाब के लिए बेसमझे-बूझे पढ़ लिया करें। अब यह उससे अपनी ज़िंदगी के मामलों में हिदायत नहीं माँगते। यह उससे नहीं पूछते कि हमारे अक़ीदे क्या होने चाहिएँ, हमारे अमल क्या होने चाहिएँ, हमारे अख़लाक़ कैसे होने चाहिएँ ? हम लेन-देन किस तरह करें ? दोस्ती या दुश्मनी में किस क़ानून की पाबन्दी करें ? ख़ुदा के बन्दों के और ख़ुद अपने नफ़्स के हक़ हमपर क्या हैं और उन्हें हम किस तरह अदा करें ? हमारे लिए हक़ क्या है और बातिल क्या ? इताअत व फ़रमाँबरदारी हमें किसकी करनी चाहिए और नाफ़रमानी किसकी ? ताल्लुक़ किससे रखना चाहिए और किससे न रखना चाहिए ? हमारा दोस्त कौन है और दुश्मन कौन है ? हमारे लिए

इज़्ज़त, सलामती और नफ़ा किस चीज़ में है और ज़िल्लत, नामुरादी और नुक़सान किस चीज़ में ? ये सारी बातें अब मुसलमानों ने क़ुरआन से पूछनी छोड़ दी हैं । अब वे ख़ुदा से फिरे हुए दुनियापरस्तों से, काफ़िरों और मुशरिकों से, गुमराह और ख़ुदग़रज़ लोगों से और ख़ुद अपने नफ़्स के शैतान से इन बातों को पूछते हैं और इन्हीं के कहे पर चलते हैं । इसलिए ख़ुदा को छोड़कर दूसरों के हुक्म पर चलने का जो अंजाम होना चाहिए वही उनका हुआ और उसी को वे आज हर जगह, हर मुल्क में बुरी तरह भुगत रहे हैं । क़ुरआन तो भलाइयों का सरचश्मा है, जितनी और जैसी भलाई आप उससे माँगेंगे वह आपको देगा । आप उससे महज़ जिन्न-भूत भगाना और खांसी-बुख़ार का इलाज और मुक़दमें की कामियाबी और नौकरी के हुसूल और ऐसी ही छोटी-छोटी, तुच्छ और बेहक़ीक़त चीज़ें माँगते हैं तो यही आपको मिलेगी । अगर दुनिया की बादशाही और रूए ज़मीन की हुकूमत माँगोगे तो वह भी मिलेगी और अगर अर्शे इलाही के क़रीब पहुँचना चाहोगे तो यह आपको वहाँ भी पहुँचा देगा । वह आपके हौसले की बात है कि समुद्र से पानी की दो बूंद माँगते हो, वरना समुद्र तो दरिया बख़्शने के लिए भी तैयार है ।

भाइयो ! जो मज़ाक़ और ज़ुल्म हमारे मुसलमान भाई अल्लाह की इस किताब के साथ करते हैं वह इतना बचकाना है कि अगर ये ख़ुद किसी दूसरे मामले में किसी दूसरे आदमी को ऐसी हरकतें करते देखें तो उसकी हँसी उड़ाएँ, बल्कि उसको पागल ठहराएँ । बताइए अगर कोई आदमी हकीम से नुसख़ा लिखवाकर लाए और उसे कपड़े में लपेटकर गले में बाँध ले या उसे पानी में घोलकर पी जाए तो उसे आप क्या कहेंगे ? क्या आपको उसपर हँसी न आएगी और आप उसे बेवकूफ़ न समझेंगे । मगर सबसे बड़े हकीम ने आपकी बीमारियों के लिए शिफ़ा और रहमत का जो बेमिसाल नुसख़ा लिखकर दिया है, उसके साथ आपकी आँखों के सामने रात-दिन यही सुलूक हो रहा है और किसी को इसपर हँसी नहीं आती, कोई नहीं सोचता कि नुसख़ा गले में लटकाने और घोल कर पीने की चीज़ नहीं बल्कि इसलिए होता है कि उसकी हिदायत के मुताबिक़ दवा इस्तेमाल की जाए ।

क़ुरआन को समझना और उसपर अमल करना लाज़िमी है

बताइए, अगर कोई आदमी बीमार हो और दवाइयों की कोई किताब लेकर पढ़ने बैठ जाए और यह ख़याल करे कि सिर्फ़ इस किताब को पढ़ लेने से बीमारी दूर हो जाएगी तो आप उसे क्या कहेंगे ? क्या आप न कहेंगे कि भेजो इसे पागलख़ाने में, इसका दिमाग़ ख़राब हो गया है। मगर हर मर्ज़ से छुटकारा दिलानेवाले ने जो किताब आपके मरज़ों का इलाज करने के लिए भेजी है, उसके साथ आपका यही बरताव है। आप उसको पढ़ते हैं और यह ख़याल करते हैं कि बस उसके पढ़ लेने ही से सारी बीमारियाँ दूर हो जाएँगी। उसकी हिदायत पर अमल करने की ज़रूरत नहीं, न उन चीज़ों से परहेज़ करने की ज़रूरत है, जिनको वह नुक़सानदेह बता रही है। फिर आप ख़ुद अपने ऊपर भी वही हुक्म क्यों नहीं लगाते, जो उस आदमी पर लगाते हैं जो बीमारी को दूर करने के लिए सिर्फ़ दवाओं की किताब पढ़ लेने को काफ़ी समझता है ?

आपके पास अगर कोई ख़त किसी ऐसी ज़बान में आता है जिसे आप न जानते हों तो आप दौड़े हुए जाते हैं कि इस ज़बान के जाननेवाले से उसका मतलब पूछें। जब तक आप उसका मतलब नहीं जान लेते आपको चैन नहीं आता। यह मामूली कारोबार के ख़तों के साथ आपका बरताव है जिनमें ज़्यादा-से-ज़्यादा चार पैसों का फ़ायदा हो जाता है। मगर दुनिया के मालिक का जो ख़त आपके पास आया हुआ है और जिसमें आपके लिए दीन व दुनिया के तमाम फ़ायदे हैं, उसे आप अपने पास यूँ ही रख छोड़ते हैं। उसका मतलब समझने के लिए कोई बेचैनी आपमें पैदा नहीं होती, क्या यह हैरत और ताज्जुब की बात नहीं ?

अल्लाह की किताब पर ज़ुल्म का नतीजा

मैं ये बातें हँसी-दिल्लगी के लिए नहीं कर रहा हूँ। आप इन बातों पर ग़ौर करेंगे तो आपका दिल गवाही देगा कि दुनिया में सबसे बढ़कर ज़ुल्म अल्लाह की इस पाक किताब के साथ हो रहा है और यह ज़ुल्म करनेवाले वही लोग हैं, जो कहते हैं कि हम इस किताब पर ईमान रखते हैं और इसपर जान क़ुरबान करने के लिए तैयार हैं। बेशक वे ईमान रखते

हैं और इसे जान से ज़्यादा प्यारी रखते हैं, मगर अफ़सोस यह है कि वही इसपर सबसे ज़्यादा ज़ुल्म करते हैं और अल्लाह की किताब पर ज़ुल्म करने का जो अंजाम है वह ज़ाहिर है । ख़ूब समझ लीजिए, अल्लाह का कलाम इनसान के पास इसलिए नहीं आता कि वह बदनसीबी और बदहाली व मुसीबत में पड़े ।

طٰهٰ مَآ اَنْزَلْنَا عَلَيْكَ الْقُرْآنَ لِتَشْقٰى○

ता०हा० । हमने यह क़ुरआन तुमपर इसलिए नहीं उतारा कि तुम मुसीबत में पड़ जाओ । (क़ुरआन, 20:1,2)

यह ख़ुशनसीबी और ख़ुशहाली का सरचश्मा है, बदबख़्ती का ज़रिया नहीं है । यह क़तई नामुमकिन है कि कोई क़ौम ख़ुदा के कलाम पर चले और फिर दुनिया में बेइज़्ज़त हो, दूसरों की महकूम हो, पाँव तले रौंदी और जूतियों से ठुकराई जाए, उसके गले में ग़ुलामी का पट्टा हो और ग़ैरों के हाथ में उसकी बागडोर हो और वह उसको इस तरह हाँके जैसे जानवर हाँके जाते हैं । यह अंजाम उसका सिर्फ़ उसी वक़्त होता है, जब वह अल्लाह के कलाम पर ज़ुल्म करती है । बनी इसराईल का अंजाम आपके सामने है । उनके पास तौरात और इनजील भेजी गई थीं और कहा गया था :

وَلَوْ اَنَّهُمْ اَقَامُوا التَّوْرٰةَ وَالْاِنْجِيْلَ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ مِّنْ رَّبِّهِمْ لَاَكَلُوْا مِنْ فَوْقِهِمْ وَمِنْ تَحْتِ اَرْجُلِهِمْ ط

अगर वे तौरात और इनजील और उन किताबों की पैरवी पर क़ायम रहते जो उनके पास भेजी गई थीं तो उनपर आसमान से रोज़ी बरसती और ज़मीन से रोज़ी उबलती । (क़ुरआन, 5:66)

मगर उन्होंने अल्लाह की किताबों पर ज़ुल्म किया और उसका नतीजा यह देखा कि : ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ النَّبِيّٖنَ بِغَيْرِ الْحَقِّ ط ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا يَعْتَدُوْنَ○

उनपर ज़िल्लत और ग़रीबी की मार पड़ी और वह ख़ुदा के

ग़ज़ब में घिर गए । यह इसलिए कि वह अल्लाह की आयतों से कुफ़्र करने लगे थे और पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करते थे और इसलिए कि वे अल्लाह के नाफ़रमान हो गए थे और हद से गुज़र गए थे । (क़ुरआन, 2:61)

इसलिए जो क़ौम ख़ुदा की किताब रखती हो और फिर भी कुचली हुई, बेइज़्ज़त और दूसरों की ग़ुलाम हो तो समझ लीजिए कि वह ज़रूर अल्लाह की किताब पर ज़ुल्म कर रही है और उसपर यह सारा वबाल इसी ज़ुल्म का है । ख़ुदा के इस ग़ज़ब से छुटकारा पाने का इसके सिवा कोई रास्ता नहीं कि उसकी किताब के साथ ज़ुल्म करना छोड़ दिया जाए और उसका हक़ अदा करने की कोशिश की जाए । अगर आप इस बड़े गुनाह से बाज़ न आएँगे तो आपकी हालत हरगिज़ न बदलेगी, चाहे आप गाँव-गाँव कॉलेज खोल दें और आपका बच्चा-बच्चा ग्रेजुएट हो जाए और आप यहूदियों की तरह ब्याज खाकर करोड़पति ही क्यों न बन जाएँ ।

मुसलमान किसे कहते हैं ?

भाइयो ! हर मुसलमान को सबसे पहले जो चीज़ जाननी चाहिए वह यह है कि 'मुसलमान' कहते किसको हैं और 'मुसलिम' के मानी क्या हैं ? अगर इनसान यह न जानता हो कि इनसानियत क्या चीज़ है और इनसान व जानवर में क्या फ़र्क़ है तो वह जानवरों की तरह हरकतें करेगा और अपने आदमी होने की क़द्र न कर सकेगा । इसी तरह अगर किसी आदमी को यह न मालूम हो कि मुसलमान होने के क्या मानी हैं और मुसलिम और ग़ैर-मुसलिम में फ़र्क़ किस तरह होता है, तो वह ग़ैर-मुसलिमों की तरह हरकतें करेगा और अपने मुसलमान होने की क़द्र न कर सकेगा । इसलिए मुसलमान को और मुसलमान के हर बच्चे को इस बात से वाक़िफ़ होना चाहिए कि वह जो अपने आपको मुसलमान कहता है तो इसके मानी क्या हैं ? मुसलमान होने के साथ ही आदमी की हैसियत में क्या फ़र्क़ पैदा हो जाता है, उसपर क्या ज़िम्मेदारी आ पड़ती है और इस्लाम की हदें क्या हैं, जिनके अन्दर रहने से आदमी मुसलमान रहता है और जिनके बाहर क़दम रखते ही वह मुसलमानियत से निकल जाता है, चाहे वह ज़बान

से अपने आपको मुसलमान ही कहता रहे ?

इस्लाम के मानी

'इस्लाम' के मानी हैं 'ख़ुदा की इताअत और फ़रमाँबरदारी' के । अपने आपको ख़ुदा के सुपुर्द कर देना 'इस्लाम' है, ख़ुदा के मुक़ाबिले में अपनी आज़ादी व ख़ुदमुख़तारी को छोड़ देना 'इस्लाम' है । ख़ुदा की बादशाही और हुक्मरानी के आगे सिर झुका देना 'इस्लाम' है । जो आदमी अपने सारे मामलों को ख़ुदा के हवाले कर दे, वह मुसलमान है और जो अपने मामलों को अपने हाथ में रखे या ख़ुदा के सिवा किसी और के सुपुर्द कर दे, वह मुसलमान नहीं है । ख़ुदा के हवाले या ख़ुदा के सुपुर्द करने का मतलब यह है कि ख़ुदा ने अपनी किताब और अपने रसूल (सल्ल०) के ज़रिए से जो हिदायत भेजी है उसको क़बूल किया जाए, उसमें चूँ-चिरा न की जाए और ज़िंदगी में जो मामला भी पेश आए उसमें सिर्फ़ क़ुरआन और रसूल (सल्ल०) की सुन्नत की पैरवी की जाए । जो आदमी अपनी अक़्ल और दुनिया के दस्तूर और ख़ुदा के सिवा हर एक की बात को पीछे रखता है और हर मामले में ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) से पूछता है कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए और जो हिदायत वहाँ से मिले उसको बेझिझक मान लेता है और उसके ख़िलाफ़ हर चीज़ को रद्द कर देता है, वह और सिर्फ़ वही 'मुसलमान' है, इसलिए कि उसने अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के सुपुर्द कर दिया और अपने को ख़ुदा के सुपुर्द करना ही 'मुसलमान' होना है । इसके बरख़िलाफ़ जो आदमी क़ुरआन और सुन्नते रसूल पर नहीं चलता, बल्कि अपने दिल का कहा करता है, या बाप-दादा से जो कुछ होता चला आया हो उसकी पैरवी करता है, या दुनिया में जो कुछ हो रहा हो उसके मुताबिक़ चलता है और अपने मामलों में क़ुरआन और सुन्नत से यह पूछने की ज़रूरत ही नहीं समझता कि उसे क्या करना चाहिए या अगर उसे मालूम हो जाए कि क़ुरआन और सुन्नत की हिदायत यह है, और फिर वह इसके जवाब में कहता है कि मेरी अक़्ल इसे क़बूल नहीं करती, इसलिए मैं इस बात को नहीं मानता, या बाप-दादा से तो इसके खिलाफ़ अमल हो रहा है, लिहाज़ा मैं इसकी पैरवी नहीं करूँगा, या दुनिया का तरीक़ा इसके ख़िलाफ़ है इसलिए मैं उसी

पर चलूँगा, तो ऐसा आदमी हरग़िज मुसलमान नहीं है । वह झूठ कहता है अगर अपने को मुसलमान कहता है ।

मुसलमान की ज़िम्मेदारियाँ

आप जिस वक़्त कलिमा 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' पढ़ते हैं और मुसलमान होने का इक़रार करते हैं उसी वक़्त मानो आप इस बात का इक़रार करते हैं कि आपके लिए क़ानून सिर्फ़ ख़ुदा का क़ानून है, आपका हाक़िम सिर्फ़ ख़ुदा है, आपको इताअत सिर्फ़ ख़ुदा की करनी है और आपके नज़दीक हक़ सिर्फ़ वह है जो ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) के ज़रिए से मालूम हो । इसके मानी ये हैं कि आप मुसलमान होते ही ख़ुदा के हक़ में अपनी आज़ादी से दस्तबरदार हो गए । अब आपको यह कहने का हक़ ही न रहा कि मेरी राय यह है, या दुनिया का दस्तूर यह है, या ख़ानदान का रिवाज यह है, या फ़लाँ हजरत या फ़लाँ बुज़ुर्ग यह फ़रमाते हैं । ख़ुदा के कलाम और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत के मुक़ाबिले में अब उनमें से कोई चीज़ भी आप नहीं कर सकते । अब आपका काम यह है कि हर चीज़ को क़ुरआन और सुन्नत के सामने पेश करें, जो कुछ उसके मुताबिक़ हो, उसे मान लें और जो उसके ख़िलाफ़ हो उसे उठा कर फेंक दें; चाहे वह किसी की बात और किसी का तरीक़ा हो । अपने आपको मुसलमान भी कहना और फिर क़ुरआन व सुन्नत के मुक़ाबले में अपने ख़याल या दुनिया के दस्तूर या किसी इनसान के क़ौल या अमल को तरजीह देना, ये दोनों एक-दूसरे के उलटे हैं । जिस तरह कोई अंधा अपने आपको आँखोंवाला नहीं कह सकता और कोई नाक कटा अपने आपको नाकवाला नहीं कह सकता; इसी तरह कोई ऐसा आदमी अपने आपको मुसलमान भी नहीं कह सकता जो अपनी ज़िंदगी के सारे मामलों को क़ुरआन और सुन्नत के अधीन बनाने से इनकार करे और ख़ुदा और रसूल के मुक़ाबिले में अपनी अक़्ल या दुनिया के दस्तूर या किसी इनसान के क़ौल व अमल को पेश करे ।

जो मुसलमान न रहना चाहता हो उसे कोई मुसलमान रहने पर मजबूर नहीं कर सकता, उसे इख़तियार है जो मज़हब चाहे इख़तियार करे और

जो नाम चाहे रख ले । मगर जब वह अपने आपको मुसलमान कहता है तो उसको ख़ूब समझ लेना चाहिए कि वह मुसलमान उसी वक़्त तक रह सकता है जब तक वह इस्लाम की सरहद में है । ख़ुदा के कलाम और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत को हक़ और सच्चाई की कसौटी मानना और उसके ख़िलाफ़ हर चीज़ को ग़लत समझना इस्लाम की सरहद है । इस सरहद में जो रहे वही मुसलमान है । इसके बाहर क़दम रखते ही आदमी इस्लाम से ख़ारिज हो जाता है और इसके बाद वह अगर अपने आपको मुसलमान समझता और मुसलमान कहता है तो वह ख़ुद अपने आपको भी धोखा देता है और दुनिया को भी ।

وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ ○

'और जो लोग अल्लाह की उतारी हुई हिदायत के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वही कुफ़्र करनेवाले हैं ।' (क़ुरआन, 5:44)

तय्यब कलिमे के मानी

मुसलमान भाइयो ! आपको मालूम है कि इनसान इस्लाम के दायरे में एक कलिमा पढ़कर दाख़िल होता है और वह कलिमा भी कुछ बहुत ज़्यादा लम्बा-चौड़ा नहीं है, सिर्फ़ कुछ शब्द हैं :

لَآ إِلٰـهَ إِلاَّ اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ.

'ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह ।'

इन शब्दों को ज़बान से अदा करते ही आदमी कुछ से कुछ हो जाता है— पहले काफ़िर था, अब मुसलमान हो गया । पहले नापाक था, अब पाक हो गया । पहले ख़ुदा के ग़ज़ब का मुस्तहिक़ था, अब उसका प्यारा हो गया । पहले दोज़ख़ में जानेवाला था, अब जन्नत का दरवाज़ा उसके लिए खुल गया, और बात सिर्फ़ इतने पर ही नहीं रहती— इसी कलिमे की वजह से आदमी और आदमी में बड़ा फ़र्क़ हो जाता है । जो इस कलिमे के पढ़नेवाले हैं वे एक उम्मत होते हैं और जो इससे इनकार करते हैं, वे दूसरी उम्मत हो जाते हैं । बाप अगर कलिमा पढ़नेवाला है और बेटा इससे इनकार करता है, तो गोया बाप, बाप न रहा और बेटा, बेटा न रहा । बाप की जायदाद से उस बेटे को वरसा (हिस्सा) न मिलेगा । ग़ैर आदमी (ग़ैर मुस्लिम) अगर कलिमा पढ़नेवाला है और उस घर की बेटी ब्याहता है, तो वह और उसकी औलाद तो उस घर से वरसा पाएगी, मगर यह अपनी कोख का बेटा सिर्फ़ इस वजह से कि कलिमे को नहीं मानता, ग़ैरों का ग़ैर बन जाएगा । गोया यह कलिमा ऐसी चीज़ है कि ग़ैरों को एक-दूसरे से मिला देती है और अपनों को एक-दूसरे से काट देती है, यहाँ तक कि इस कलिमे का ज़ोर इतना है कि ख़ून और जन्म के रिश्ते भी इसके मुक़ाबले में कुछ नहीं ।

इतना बड़ा फ़र्क़ क्यों ?

अब ज़रा इस बात पर ग़ौर कीजिए कि यह इतना बड़ा फ़र्क़ जो आदमी और आदमी में हो जाता है यह आख़िर क्यों होता है ? कलिमे में है क्या ?

सिर्फ़ चन्द हुरूफ़ ही तो हैं— लाम, अलिफ़, हे, मीम, दाल, सीन और ऐसे ही दो-चार हुरूफ़ और । इन हुरूफ़ों को मिलाकर मुँह से निकाल दिया जाए तो क्या कोई जादू हो जाता है कि आदमी की काया पलट जाए ? आदमी और आदमी में क्या बस इतनी-सी बात से ज़मीन और आसमान का फ़र्क़ हो सकता है ?

मेरे भाइयो ! आप ज़रा समझ से काम लेंगे तो आपकी अक़्ल ख़ुद कह देगी कि सिर्फ़ मुँह खोलने और ज़बान हिलाकर चन्द हुरूफ़ बोल देने की इतनी बड़ी तासीर नहीं हो सकती । बुतपरस्त ज़रूर समझते हैं कि बस एक मंत्र पढ़ देने से पहाड़ हिल जाएगा, ज़मीन फट जाएगी और चश्में उबलने लगेंगे; चाहे मंत्र के मानी की किसी को ख़बर न हो, क्योंकि वे समझते हैं कि सारी तासीर बस हरफ़ों में है, वह ज़बान से निकले और जादू के दरवाज़े खुल गए । मगर इस्लाम में यह बात नहीं है । यहाँ असल चीज़ मानी हैं । लफ़्ज़ों का असर मानी से है । मानी अगर न हों और वह दिल में न उतरें और उनके ज़ोर से आपके ख़यालात, आपके अख़लाक़ और आपके आमाल न बदलें तो निरे अलफ़ाज़ बोल देने से कुछ असर नहीं होगा ।

इस बात को मैं एक मोटी-सी मिसाल से आपको समझाऊँ! मान लो आपको सर्दी लगती है । अगर आप ज़बान से रूई-लिहाफ़, रूई-लिहाफ़ पुकारना शुरू कर दें तो सर्दी लगनी बन्द न होगी चाहे आप रात भर में एक लाख तसबीहें रूई-लिहाफ़ की पढ़ डालें । हाँ, अगर लिहाफ़ में रूई भरवाकर ओढ़ लेंगे तो सर्दी लगनी बन्द हो जाएगी । मान लीजिए कि आपको प्यास लग रही है । अगर आप सुबह से शाम तक पानी-पानी पुकारते रहे तो प्यास न बुझेगी । हाँ, पानी का एक घूँट लेकर पी लेंगे तो कलेजे की सारी आग तुरन्त ठण्डी हो जाएगी । मान लीजिए कि आपको नज़ला-बुख़ार हो जाता है । इस हाल में अगर बनफ़्शा गावज़बान, बनफ़्शा गावज़बान की तसबीहें आप पढ़नी शुरू कर देंगे तो नज़ला-बुख़ार में कुछ कमी न होगी । इन दवाओं का जोशाँदा बनाकर पी लेंगे तो नज़ला-बुख़ार ख़ुद भाग जाएगा । बस यही हाल तय्यब कलिमे का भी है । सिर्फ छः-सात शब्द बोल देने से इतना बड़ा फ़र्क़ नहीं होता कि आदमी काफ़िर से मुसलमान

हो जाए, नापाक से पाक हो जाए, धुतकारा हुआ होने के बजाए प्यारा बन जाए, दोज़ख़ी से जन्नती बन जाए । यह फ़र्क़ सिर्फ़ इस तरह होगा कि पहले इन लफ़्ज़ों का मतलब समझें और वह मतलब आपके दिल में उतर जाए, फिर मतलब को समझ-बूझकर जब आप इन अलफ़ाज़ को ज़बान से निकालें तो आपको अच्छी तरह यह एहसास हो कि आप अपने ख़ुदा के सामने और सारी दुनिया के सामने कितनी बड़ी बात का इक़रार कर रहे हैं और इस इक़रार से आपके ऊपर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी आ गई है । फिर यह समझते हुए जब आपने इक़रार कर लिया तो इसके बाद आपके ख़यालात (विचारों) पर और आपकी सारी ज़िन्दगी पर इस कलिमे का क़बज़ा हो जाना चाहिए, फिर आपको अपने दिल व दिमाग़ में किसी ऐसी बात को जगह न देनी चाहिए जो इस कलिमे के ख़िलाफ़ हो । फिर आपको हमेशा के लिए बिलकुल फ़ैसला कर लेना चाहिए कि जो बात इस कलिमे के ख़िलाफ़ है वह झूठी है और यह कलिमा सच्चा है, फिर ज़िंदगी के सारे मामलों में यह कलिमा आपका हाकिम होना चाहिए । इस कलिमे का इक़रार करने के बाद आप काफ़िरों की तरह आज़ाद नहीं रहे कि जो चाहें करें, बल्कि अब आप इस कलिमे के पाबन्द हैं, जो वह कहे उसको करना पड़ेगा और जिससे वह मना करे उसको छोड़ना पड़ेगा । इस तरह कलिमा पढ़ने से आदमी मुसलमान होता है और इस तरह कलिमा पढ़ने की वजह से आदमी और आदमी में इतना बड़ा फ़र्क़ होता है, जिसका ज़िक्र मैंने अभी आप से किया ।

कलिमे का मतलब

आइए अब मैं आपको बताऊँ कि कलिमे का मतलब क्या है और इसको पढ़कर आदमी किस चीज़ का इक़रार करता है और इसका इक़रार करते ही आदमी किस चीज़ का पाबन्द हो जाता है ।

कलिमे के मानी ये हैं कि, ''अल्लाह के सिवा कोई और ख़ुदा नहीं है और हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अल्लाह के रसूल हैं ।'' कलिमे में इलाह का जो लफ़्ज़ आया है उसके मानी 'ख़ुदा' के हैं । ख़ुदा उसको कहते हैं जो मालिक हो, हाकिम हो, पैदा करनेवाला

हो, पालने और पोसनेवाला हो, दुआओं का सुनने और क़बूल करनेवाला हो और इसका मुस्तहिक़ हो कि उसकी इबादत की जाए । अब जो आपने 'ला इला-ह इल्लल्लाह' कहा तो इसके मानी यह हुए कि अव्वल तो आपने यह इक़रार किया कि यह दुनिया न तो बेख़ुदा के बनी है और न ऐसा ही है कि इसके बहुत-से ख़ुदा हों, बल्कि दरअसल इसका बनानेवाला ख़ुदा है और वह ख़ुदा एक ही है, और उस एक ज़ात के सिवा ख़ुदाई किसी की नहीं है । दूसरी बात जिसका आपने कलिमा पढ़ते ही इक़रार किया वह यह है कि वही एक ख़ुदा आपका और सारी दुनिया का मालिक है । आप और आपकी हर चीज़ और दुनिया की हर चीज़ उसकी है । पैदा करनेवाला वह है, रोज़ी देनेवाला वह है, मौत और ज़िंदगी उसी की तरफ़ से है, दुख और सुख भी उसी की तरफ़ से है, जो कुछ किसी को मिलता है उसका देनेवाला हक़ीक़त में वह (अल्लाह) है और जो कुछ किसी से छीना जाता है उसका छीननेवाला भी असल में वही (अल्लाह) है । डरना चाहिए तो उसी से, माँगना चाहिए तो उसी से, सिर झुकाना चाहिए तो उसी के सामने, इबादत और बन्दगी की जाए तो उसी की । उसके सिवा हम किसी के बन्दे और ग़ुलाम नहीं हैं और उसके सिवा कोई हमारा मालिक और हाकिम नहीं है । हमारा असली फ़र्ज़ यह है कि उसी का हुक्म मानें और उसी के क़ानून पर चलें ।

अल्लाह से क़ौल व इक़रार

यह है वह क़ौल व इक़रार जो 'ला इला-ह इल्लल्लाह' पढ़ते ही आप अपने ख़ुदा से करते हैं और सारी दुनिया को गवाह बनाकर करते हैं । इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करेंगे तो आपकी ज़बान, आपके हाथ-पाँव, आपका रोंगटा-रोंगटा और ज़मीन और आसमान का एक-एक ज़र्रा, जिसके सामने आपने झूठा इक़रार किया, आपके ख़िलाफ़ ख़ुदा की अदालत में गवाही देगा और आप ऐसी बेबसी की हालत में वहाँ खड़े होंगे कि एक भी गवाह आपको सफ़ाई पेश करने के लिए न मिलेगा, कोई वकील या बैरिस्टर वहाँ आपकी तरफ़ से पैरवी करनेवाला न होगा; बल्कि ख़ुद वकील साहब और बैरिस्टर साहब जो दुनिया की अदालतों में क़ानून की उलट-फेर करते फिरते हैं, ये भी वहाँ आपकी ही तरह बेबसी की हालत में खड़े होंगे । वह अदालत

ऐसी नहीं है जहाँ आप झूठी गवाहियाँ और जाली दस्तावेज़ें पेश करके और ग़लत पैरवी करके बच जाओगे। दुनिया की पुलिस से आप अपना जुर्म छिपा सकते हैं, ख़ुदा की पुलिस से नहीं छिपा सकते। दुनिया की पुलिस रिशवत खा सकती है, ख़ुदा की पुलिस रिशवत खानेवाली नहीं। दुनिया के गवाह झूठ बोल सकते हैं, ख़ुदा के गवाह बिलकुल सच्चे हैं। दुनिया के हाकिम बेइनसाफ़ी कर सकते हैं, ख़ुदा ऐसा हाकिम नहीं जो बेइनसाफ़ी करे। फिर ख़ुदा जिस जेल में डालेगा उससे बचकर भागने का भी कोई रास्ता नहीं है। इसलिए ख़ुदा के साथ झूठा इक़रारनामा करना बहुत बड़ी बेवक़ूफ़ी और सबसे बड़ी बेवक़ूफ़ी है। जब आप इक़रार करते हैं तो ख़ूब सोच-समझकर करें और उसको पूरा करें, वरना आप पर कोई ज़बरदस्ती नहीं है कि ख़्वाह-मख़्वाह ज़बानी ही इक़रार कर लें, क्योंकि खोखला और बेहक़ीक़त ज़बानी इक़रार महज़ बेकार है।

रसूल (सल्ल०) की रहनुमाई का इक़रार

'ला इला-ह इल्लल्लाह' कहने के बाद आप 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' कहते हैं। इसके मानी हैं कि आपने यह इक़रार कर लिया कि मुहम्मद (सल्ल०) ही वह पैग़म्बर हैं जिनके ज़रिए से ख़ुदा ने अपना क़ानून आपके पास भेजा है। ख़ुदा को अपना आक़ा और शहंशाह मान लेने के बाद यह मालूम होना ज़रूरी था कि उस शहंशाह के अहकाम और आदेश क्या हैं ? हम कौन से काम करें जिनसे वह ख़ुश होता है और कौन से काम न करें जिनसे वह नाराज़ होता है ? किस क़ानून पर चलने से वह हमको बख़शेगा और उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करने पर वह हमको सज़ा देगा ? ये सब बातें बताने के लिए ख़ुदा ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अपना पैग़म्बर मुक़र्रर किया, आप (सल्ल०) के ज़रिए से अपनी किताब हमारे पास भेजी और आप (सल्ल०) ने ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ ज़िंदगी बसर करके हमको बता दिया कि मुसलमानों को इस तरह ज़िंदगी बसर करनी चाहिए। इसलिए आपने 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' कहा तो गोया इक़रार कर लिया कि जो क़ानून और जो तरीक़ा हुज़ूर (सल्ल०) ने बताया है, आप उसी की पैरवी करेंगे और जो क़ानून इसके ख़िलाफ़ है उसपर लानत भेजेंगे। यह इक़रार करने के बाद अगर आपने हुज़ूर (सल्ल०) के लाए हुए क़ानून को छोड़ दिया

और दुनिया के क़ानून को मानते रहे तो आपसे बढ़कर झूठा और बेईमान कोई न होगा; क्योंकि आप यही इक़रार करके तो इस्लाम में दाख़िल हुए थे कि मुहम्मद (सल्ल०) ही का लाया हुआ क़ानून हक़ है और उसी की आप पैरवी करेंगे। इसी इक़रार की बदौलत तो आप मुसलमानों के भाई बने, इसी की बदौलत तो आपने बाप से मीरास पाई, इसी की बदौलत एक मुसलमान औरत से आपका निकाह हुआ, इसी की बदौलत आपकी औलाद जाएज़ औलाद बनी, इसी की बदौलत आपको यह हक़ मिला कि तमाम मुसलमान आपके मददगार बनें, आपको ज़कात दें, आपकी जान-माल और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लें, और इन सबके बावजूद आपने अपना इक़रार तोड़ दिया; तो इससे बढ़कर दुनिया में कौन-सी बेईमानी हो सकती है। अगर आप 'ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' के मानी जानते हैं और जान-बूझकर इसका इक़रार करते हैं तो आपको हर हाल में ख़ुदा के क़ानून की पैरवी करनी चाहिए, चाहे उसकी पैरवी पर मजबूर करनेवाली कोई पुलिस और अदालत इस दुनिया में नज़र न आती हो। जो इनसान यह समझता है कि ख़ुदा की पुलिस और फ़ौज और अदालत और जेल कहीं मौजूद नहीं है इसलिए उसके क़ानून को तोड़ना आसान है और गवर्नमेन्ट की पुलिस, फ़ौज, अदालत और जेल मौजूद हैं, इसलिए उसके क़ानून को तोड़ना मुशकिल है। ऐसे आदमी के बारे में मैं साफ़ कहता हूँ कि वह 'ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' का झूठा इक़रार करता है। अपने ख़ुदा को, सारी दुनिया को, तमाम मुसलमानों को और ख़ुद अपने आपको धोखा देता है।

इक़रार की ज़िम्मेदारियाँ

भाइयो और दोस्तो ! अभी मैंने आपके सामने तय्यब कलिमे के मानी बयान किए हैं, अब इसी सिलसिले में एक और पहलू की तरफ़ आपको तवज्जोह दिलाता हूँ।

आप इक़रार करते हैं कि अल्लाह आपका और हर चीज़ का मालिक है। इसके क्या मानी हैं ? इसके मानी यह हैं कि आपकी जान आपकी अपनी नहीं, ख़ुदा की मिल्क है, आपके हाथ अपने नहीं, आपकी आँखें

और आपके कान और आपके जिस्म का कोई अंग आपका अपना नहीं। ये ज़मीनें जिनको आप जोतते हैं, ये जानवर जिनसे आप ख़िदमत लेते हो, ये माल और असबाब जिनसे आप फ़ायदा उठाते हैं, इनमें से कोई भी चीज़ आपकी नहीं है; हर चीज़ ख़ुदा की है और ख़ुदा की तरफ़ से अमानत के तौर पर आपको मिली है। इस बात का इक़रार करने के बाद आपको यह कहने का क्या हक़ है कि 'जान मेरी है, जिस्म मेरा है, माल मेरा है और फ़लाँ और फ़लाँ चीज़ मेरी है।' दूसरे को मालिक कहना और फिर उसकी चीज़ को अपनी क़रार देना बिलकुल एक झूठी बात है। अगर दरहक़ीक़त यह बात सच्चे दिल से मानते हैं कि इन सब चीज़ों का मालिक ख़ुदा ही है, तो इससे दो बातें आप पर ख़ुद ब ख़ुद लाज़िम हो जाती हैं। एक यह कि जब मालिक ख़ुदा है और उसने अपनी मिलकियत अमानत के तौर पर आपके हवाले की है तो जिस तरह मालिक कहता है उसी तरह आपको उन चीज़ों से काम लेना चाहिए। उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ अगर आप उनसे काम लेते हैं तो धोखाबाज़ी करते हैं। आप अपने इन हाथों और पाँव को भी उसकी पसन्द के ख़िलाफ़ हिलाने का हक़ नहीं रखते। आप इन आँखों से भी उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ देखने का हक़ नहीं रखते। आपको इस पेट में भी कोई ऐसी चीज़ डालने का हक़ नहीं है जो उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ हो। आपको इन ज़मीनों और इन जायदादों पर भी मालिक की मरज़ी के ख़िलाफ़ कोई हक़ हासिल नहीं है। आपकी बीवियाँ जिनको आप अपनी कहते हैं और आपकी औलाद, जिनको आप अपनी कहते हैं, ये भी सिर्फ़ इसलिए आपकी हैं कि आपके मालिक की दी हुई हैं। लिहाज़ा आपको उनसे भी अपनी ख़्वाहिश के मुताबिक़ नहीं, बल्कि मालिक के हुक्म के मुताबिक़ ही बरताव करना चाहिए। अगर इसके ख़िलाफ़ करोगे तो आपकी हैसियत ग़ासिब (हक़ मारनेवाला) की होगी। जिस तरह दूसरे की ज़मीन पर क़बज़ा करनेवाले को आप कहते हैं कि वह बेईमान है, इसी तरह अगर ख़ुदा की दी हुई चीज़ों को आप अपना समझकर अपनी मरज़ी के मुताबिक़ इस्तेमाल करेंगे, या ख़ुदा के सिवा किसी और की मरज़ी के मुताबिक़ उनसे काम लेंगे, तो वही बेईमानी का इलज़ाम आप पर भी आएगा। अगर मालिक की मरज़ी के मुताबिक़ काम करने में कोई नुक़सान होता है तो हुआ करे, जान जाती है तो जाए, हाथ-पाँव

टूटते हैं तो टूटें, औलाद का नुक़सान होता है तो हो, माल व जायदाद बरबाद हो तो हुआ करे। आपको क्यों ग़म हो ? जिसकी चीज़ है वही अगर नुक़सान पसन्द करता हो तो उसको हक़ है। हाँ, अगर मालिक की मरज़ी के ख़िलाफ़ आप काम करें और उसमें किसी चीज़ का नुक़सान हो तो बेशक आप मुजरिम होंगे, क्योंकि दूसरे के माल को आपने ख़राब किया। आप ख़ुद अपनी जान के मुख़तार नहीं हैं। मालिक की मरज़ी के मुताबिक़ जान देंगे तो मालिक का हक़ अदा करेंगे। उसके ख़िलाफ़ काम करने में जान देंगे तो वह बेईमानी होगी।

इस्लाम लाना ख़ुदा पर एहसान नहीं

दूसरी बात यह है कि मालिक ने जो चीज़ आपको दी है उसको अगर आप मालिक ही के काम में ख़र्च करते हैं तो किसी पर एहसान नहीं करते, न मालिक पर एहसान है, न किसी और पर। आपने अगर उसकी राह में कुछ दिया, कुछ ख़िदमत की, या जान दे दी जो आपके नज़दीक बहुत बड़ी चीज़ है, तब भी कोई एहसान किसी पर नहीं किया। ज़्यादा से ज़्यादा जो काम आपने किया वह बस इतना ही तो है कि मालिक का हक़ जो आप पर था वह आपने अदा कर दिया। यह कौन-सी ऐसी बात है जिसपर कोई फूले और फ़ख़्र करे और यह चाहे कि उसकी तारीफ़ की जाए और यह समझे कि उसने कोई बहुत बड़ा काम किया है जिसपर उसकी बड़ाई तसलीम की जाए ? याद रखिए कि सच्चा मुसलमान मालिक की राह में कुछ ख़र्च करने या कुछ ख़िदमत करने के बाद फूलता नहीं है, बल्कि ख़ाकसारी इख़तियार करता है। फ़ख़्र करना नेकियों को बरबाद कर देता है। तारीफ़ की चाहत जिसने की और उसके लिए कोई नेक काम किया, वह ख़ुदा के यहाँ किसी अच्छे बदले का हक़दार न रहा, क्योंकि उसने तो अपने काम का बदला दुनिया ही में माँगा और यहीं उसको मिल भी गया।

अल्लाह का एहसान और हमारा रवैया

भाइयो ! अपने मालिक का एहसान देखिए कि अपनी चीज़ आपसे

लेता और फिर कहता है कि यह चीज़ मैंने तुमसे ख़रीदी है और इसका बदला मैं तुम्हें दूँगा। अल्लाहु अकबर, इस शाने जूदो करम का भी कोई ठिकाना है ! क़ुरआन में आया है—

إِنَّ اللّٰهَ اشْتَرٰى مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ اَنْفُسَهُمْ وَاَمْوَالَهُمْ بِأَنَّ لَهُمُ الْجَنَّةَ ○

अल्लाह ने ईमानदारों से उनकी जानें और उनके माल ख़रीद लिए हैं, इसके बदले में उनके लिए जन्नत है। (क़ुरआन, 9:111)

यह तो मालिक का बरताव आपके साथ है। अब ज़रा अपना बरताव भी देखिए। जो चीज़ आपको मालिक ने दी थी और जिसको मालिक ने फिर आपसे मुआविज़ा देकर ख़रीद भी लिया, उसको ग़ैरों के हाथ बेचते हैं। निहायत ज़लील मुआविज़ा ले-लेकर बेचते हैं। वे मालिक की मरज़ी के ख़िलाफ़ आपसे काम लेते हैं और आप यह समझकर उनकी ख़िदमत करते हैं कि गोया रोज़ी देनेवाले वे हैं। आप अपने दिमाग़ बेचते हैं, अपने हाथ-पाँव बेचते हैं, अपने जिस्म की ताक़तें बेचते हैं और वह सब कुछ बेचते हैं जिसको ख़ुदा के बाग़ी ख़रीदना चाहते हैं। इससे बढ़कर बदअख़लाक़ी और क्या हो सकती है ? बेची हुई चीज़ को फिर बेचना क़ानूनी और अख़लाक़ी जुर्म है। दुनिया में इसपर दग़ाबाज़ी और धोखाधड़ी का मुक़दमा चलाया जाता है। क्या आप समझते हैं कि ख़ुदा की अदालत में इसपर मुक़दमा नहीं चलाया जाएगा ?

तय्यब कलिमा और ख़बीस कलिमा

मुसलमान भाइयो ! पिछले ख़ुतबे में तय्यब कलिमे के बारे में मैंने आपसे कुछ कहा था । आज फिर उसी कलिमे की कुछ और तशरीह मैं आपके सामने बयान करूँगा, इसलिए कि यह कलिमा ही इस्लाम की बुनियाद है; इसी के ज़रिए से आदमी इस्लाम में दाख़िल होता है और कोई शख़्स हक़ीक़त में मुसलमान बन ही नहीं सकता जब तक कि वह कलिमे को पूरी तरह समझ न ले और अपनी ज़िन्दगी को इसके मुताबिक़ न बना ले ।

अल्लाह तआला ने अपनी किताब क़ुरआन पाक में इस कलिमे की तारीफ़ इस तरह फ़रमाई है :

اَلَمْ تَرَ كَيْفَ ضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلاً كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ اَصْلُهَا ثَابِتٌ وَّفَرْعُهَا فِي السَّمَاءِ تُؤْتِيْٓ اُكُلَهَا كُلَّ حِيْنٍ بِاِذْنِ رَبِّهَا وَيَضْرِبُ اللّٰهُ الْاَمْثَالَ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ○ وَمَثَلُ كَلِمَةٍ خَبِيْثَةٍ كَشَجَرَةٍ خَبِيْثَةِ ۨاجْتُثَّتْ مِنْ فَوْقِ الْاَرْضِ مَالَهَا مِنْ قَرَارٍ ○ يُثَبِّتُ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَفِي الْاٰخِرَةِ ۚ وَيُضِلُّ اللّٰهُ الظّٰلِمِيْنَ ۙقف وَيَفْعَلُ اللّٰهُ مَا يَشَآءُ ○ ابراہیم

तय्यब कलिमे की मिसाल ऐसी है जैसे कोई अच्छी क़िस्म का पेड़ हो जिसकी जड़ें ज़मीन में ख़ूब जमी हुई हों, जिसकी शाख़ें आसमान तक फैली हुई हों और जो हर वक़्त अपने पालनहार के हुक्म से फल पर फल लाए चला जाता हो— इसके ख़िलाफ़ ख़बीस कलिमा यानी बुरा अक़ीदा और झूठा क़ौल ऐसा है जैसे एक बुरे क़िस्म का जंगली पेड़ कि वह बस ज़मीन के ऊपर ही होता है और एक इशारे में जड़ छोड़ देता है, क्योंकि उसकी जड़

गहरी जमी हुई नहीं होती ।   (क़ुरआन, 14:24-27)

यह ऐसी बेजोड़ मिसाल अल्लाह तआला ने दी है कि अगर आप इसपर ग़ौर करें तो आपको इससे बड़ा सबक़ मिलेगा । देखिए, आपके सामने दोनों क़िस्म के पेड़ों की मिसालें मौजूद हैं । एक तो यह आम का पेड़ है, कितना गहरा जमा हुआ है, कितनी ऊँचाई तक उठा हुआ है, कितनी इसकी शाख़ें फैली हुई हैं, कितने अच्छे फल इसमें लगते हैं ! यह बात इसे क्यों हासिल हुई ? इसलिए कि इसकी गुठली ज़ोरदार थी, इसको पेड़ बनने का हक़ हासिल था और वह हक़ इतना सच्चा था कि जब उसने अपने हक़ का दावा किया तो ज़मीन ने, पानी ने, हवा ने, दिन की गरमी और रात की ठंडक ने, ग़रज़ हर चीज़ ने उसके हक़ को तस्लीम किया और उसने जिससे जो कुछ माँगा, हर एक ने उसको दिया । इस तरह वह अपने हक़ के ज़ोर से इतना बड़ा पेड़ बन गया और अपने मीठे फल देकर उसने साबित भी कर दिया कि हक़ीक़त में वह इसी क़ाबिल था कि ऐसा पेड़ बने और ज़मीन व आसमान की सारी ताक़तों ने मिलकर अगर इसका साथ दिया तो कुछ ग़लत नहीं किया । बल्कि उन्हें ऐसा करना ही चाहिए था, इसलिए कि पेड़ों को ख़ुराक देने और बढ़ाने और पकाने की जो ताक़त ज़मीन, पानी, हवा और दूसरी चीज़ों के पास है, वह इसी काम के लिए तो है कि अच्छी ज़ातवाले पेड़ों के काम आए ।

इसके मुक़ाबले में ये झाड़-झंकाड़ और ख़ुदरौ पौधे हैं । इनकी हैसियत ही क्या है ? ज़रा-सी जड़ कि एक बच्चा उखाड़ ले, नर्म और बोदे इतने कि हवा के एक झोंके से मुरझा जाएँ, हाथ लगाओ तो काँटे आपकी ख़बर लें, चखें तो मुँह का मज़ा ख़राब कर दें । रोज़ ख़ुदा जाने कितने पैदा होते हैं और कितने ही उखाड़े जाते हैं । इनका यह हाल क्यों है ? इसलिए कि इनके पास हक़ का वह ज़ोर नहीं जो आम के पास है । जब ऊँची क़िस्म के पेड़ नहीं होते तो ज़मीन बेकार पड़े-पड़े उकता जाती है और इन पौधों को अपने अन्दर जगह दे देती है । कुछ मदद पानी कर देता है और कुछ हवा अपने पास से सामान दे देती है, मगर ज़मीन और आसमान की कोई चीज़ भी ऐसे पौधों का हक़ मानने के लिए तैयार नहीं होती । इसलिए न ज़मीन अपने अन्दर इनकी जड़ें फैलने देती है, न पानी इनको

दिल खोलकर ख़ुराक देता है और न हवा खुले दिल से इनको परवान चढ़ाती है । फिर जब इतनी-सी बिसात पर यह ख़राब पौधे बदमज़ा, काँटेदार और ज़हरीले बनकर उठते हैं, तो यह बात साबित हो जाती है कि ज़मीन और आसमान की ताक़तें ऐसे पौधे उगाने के लिए नहीं थीं । इनको इतनी ज़िन्दगी भी मिली तो बहुत मिली ।

इन दोनों मिसालों को सामने रखिए और फिर तय्यब कलिमे और ख़बीस कलिमे के फ़र्क़ पर ग़ौर कीजिए ।

तय्यब कलिमा क्या है ?

तय्यब कलिमा क्या है ? एक सच्ची बात है । ऐसी सच्ची बात कि दुनिया में इससे ज़्यादा सच्ची बात कोई हो ही नहीं सकती । सारे जहान का ख़ुदा एक अल्लाह है, इस बात पर ज़मीन और आसमान की हर चीज़ गवाही दे रही है । ये इनसान, ये जानवर, ये पेड़, ये पत्थर, ये रेत के ज़र्रे, यह बहती हुई नहर, यह चमकता हुआ सूरज, ये सारी चीज़ें जो हर तरफ़ फैली हुई हैं, इनमें से कौन-सी चीज़ है जिसको अल्लाह के सिवा किसी और ने पैदा किया हो, जो अल्लाह के सिवा किसी और की मेहरबानी से ज़िन्दा और क़ायम रह सके, जिसको अल्लाह के सिवा कोई और फ़ना कर सकता हो ? फिर जब यह सारा संसार अल्लाह का पैदा किया हुआ है और अल्लाह ही की मेहरबानी से क़ायम है और अल्लाह ही इसका मालिक और हाकिम है, तो जिस समय आप कहेंगे कि ''इस जहान में उस एक अल्लाह के सिवा किसी और की ख़ुदाई नहीं है'' तो ज़मीन व आसमान की एक-एक चीज़ पुकारेगी कि आपने बिलकुल सच्ची बात कही । हम सब आपके इस क़ौल की सच्चाई पर गवाह हैं । जब आप उसके आगे सिर झुकाएँगे तो कायनात की हर चीज़ आपके साथ झुक जाएगी, क्योंकि ये सारी चीज़ें भी उसी की इबादतगुज़ार हैं । जब आप उसके फ़रमान की पैरवी करेंगे तो ज़मीन और आसमान की हर चीज़ आपका साथ देगी; क्योंकि ये सब भी तो उसी ख़ुदा की फ़रमाँबरदार हैं । जब आप उसकी राह में चलेंगे तो आप अकेले न होंगे, बल्कि कायनात के बेशुमार लश्कर आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आसमान के सूरज से लेकर ज़मीन का एक मामूली ज़र्रा तक हर चीज़, हर आन उसी की राह में तो चल रही है ।

जब आप उसपर भरोसा करेंगे तो किसी छोटी ताक़त पर भरोसा न करेंगे, बल्कि एक बड़ी ताक़त पर भरोसा करेंगे जो ज़मीन और आसमान के सारे ख़ज़ानों की मालिक है । ग़रज़ इस सच्चाई पर आप नज़र रखेंगे तो आपको मालूम होगा कि तय्यब कलिमे पर ईमान लाकर जो इनसान अपनी ज़िन्दगी को उसके मुताबिक़ बना लेगा तो ज़मीन और आसमान की सारी ताक़तें उसका साथ देंगी । दुनिया से लेकर आख़िरत तक वह फलता-फूलता ही चला जाएगा; और कभी एक लम्हे के लिए भी नाकामी व नामुरादी उसके पास न आएगी । यही चीज़ अल्लाह तआला ने बयान फ़रमाई है कि यह कलिमा ऐसा पेड़ है, जिसकी जड़ें ज़मीन में जमी हुई हैं और शाख़ें आसमान पर फैली हुई हैं और हर वक़्त यह ख़ुदा के हुक्म से फल लाता रहता है ।

ख़बीस कलिमा क्या है ?

इसके मुक़ाबले में ख़बीस कलिमे को देखिए । ख़बीस कलिमा क्या चीज़ है ? यह कि इस जहान का कोई ख़ुदा नहीं, या यह कि एक अल्लाह के सिवा किसी और की भी ख़ुदाई है । ग़ौर कीजिए, इससे बढ़कर झूठी और बेअसल बात और क्या हो सकती है ? ज़मीन और आसमान की कौन-सी चीज़ इसपर गवाही देती है ? नास्तिक कहता है कि ख़ुदा नहीं है । ज़मीन और आसमान की हर चीज़ कहती है कि तू झूठा है । हमको और तुझको ख़ुदा ही ने पैदा किया है और उसी ख़ुदा ने तुझे वह ज़बान दी है जिससे तू यह झूठ बक रहा है । नास्तिक कहता है कि ख़ुदाई में दूसरे भी अल्लाह के शरीक हैं, दूसरे भी राज़िक़ (अन्नदाता) हैं, दूसरे भी मालिक हैं, दूसरे भी क़िस्मतें बनाते और बिगाड़ते हैं, दूसरे भी फ़ायदा व नुक़सान पहुँचाने की ताक़त रखते हैं, दूसरे भी दुआएँ सुननेवाले हैं, दूसरे भी मुरादें पूरी करनेवाले हैं, दूसरे भी ऐसे हैं जिनसे डरा जाए, दूसरे भी भरोसा करने के क़ाबिल हैं । इस ख़ुदाई में दूसरों का भी हुक्म चलता है और ख़ुदा के सिवा दूसरों का फ़रमान और क़ानून भी पैरवी के लायक़ है । इसके जवाब में ज़मीन और आसमान की हर चीज़ कहती है कि तू बिलकुल झूठा है । हर एक बात जो तू कह रहा है, यह हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है । अब ग़ौर कीजिए कि यह ख़बीस कलिमा जो शख़्स इख़तियार करेगा

और इसके मुताबिक़ जो शख़्स ज़िन्दगी बसर करेगा, दुनिया और आख़िरत में वह कैसे फल और फूल सकता है ? अल्लाह ने अपनी मेरहबानी से ऐसे लोगों को मुहलत दे रखी है और रोज़ी का वादा उनसे किया है, इसलिए ज़मीन व आसमान की ताक़तें किसी न किसी तरह उसकी भी परवरिश करेंगी; जिस तरह वे झाड़-झंकाड़ और ख़ुदरौ पौधों की भी आख़िर परवरिश करती हैं, लेकिन कायनात की कोई चीज़ भी उसका हक़ समझकर उसका साथ न देगी और न पूरी ताक़त के साथ उसकी मदद करेगी । वह उन्हीं ख़ुदरौ पौधों की तरह होगा जिनकी मिसाल अभी आपके समाने बयान हुई है ।

नतीजों का फ़र्क़

यही फ़र्क़ दोनों के फलों में है । तय्यब कलिमा जब कभी फलेगा, उससे मीठे और मुफ़ीद फल ही पैदा होंगे । दुनिया में इससे अमन क़ायम होगा, नेकी और सच्चाई और इनसाफ़ का बोल-बाला होगा और ख़ुदा के बन्दे इससे फ़ायदा ही उठाएँगे । मगर ख़बीस कलिमे की जितनी परवरिश होगी उससे काँटेदार शाख़ें ही निकलेंगी । उसमें कड़वे-कसैले ही फल आएँगे, उसकी रग-रग में ज़हर ही भरा होगा । दुनिया में अपनी आँखों से देख लीजिए । जहाँ कुफ़्र, शिर्क और नास्तिकता का ज़ोर है, वहाँ क्या हो रहा है ? आदमी को आदमी फाड़ खाने की तैयारियाँ कर रहा है, आबादियों की आबादियाँ तबाह करने के सामान हो रहे हैं । ज़हरीली ग़ैसें बन रही हैं और दोज़ख़ की तरह दुनिया को भूनकर रख देनेवाले हथियार ईजाद हो रहे हैं, एक क़ौम दूसरी क़ौम को बरबाद कर देने पर तुली हुई है, जो ताक़तवर है वह कमज़ोर को ग़ुलाम बनाता है, सिर्फ़ इसलिए कि उसके हिस्से की रोटी ख़ुद छीनकर खा जाए । जो कमज़ोर है वह फ़ौज और पुलिस और जेल और फाँसी के ज़ोर से दबकर रहने और ताक़तवर का ज़ुल्म सहने पर मजबूर किया जाता है । फिर उन क़ौमों की अन्दरूनी हालत क्या है ? अख़लाक़ बद से बदतर हैं, जिनपर शैतान भी शरमाए । इनसान वह काम कर रहा है जो जानवर भी नहीं करते । माँऐं अपने बच्चों को अपने हाथ से हलाक करती हैं कि कहीं ये बच्चे उनके ऐश में ख़लल न डाल दें, शौहर अपनी बीवियों को ख़ुद ग़ैरों की बग़ल में देते हैं ताकि

उनकी बीवियाँ उनकी बग़ल में आएँ, नंगों के क्लब बनाए जाते हैं जिनमें मर्द और औरत जानवरों की तरह नंगे एक-दूसरे के सामने फिरते हैं । अमीर सूद के ज़रिए ग़रीबों का ख़ून चूस लेते हैं और मालदार नादारों से इस तरह काम लेते हैं कि मानो वे उनके ग़ुलाम हैं और सिर्फ़ उनकी सेवा ही के लिए पैदा हुए हैं । ग़रज इस ख़बीस कलिमे से जो पौधा भी जहाँ पैदा हुआ है काँटों से भरा हुआ है और जो भी फल उसमें लगता है कड़वा और ज़हरीला ही होता है ।

अल्लाह तआला इन दोनों मिसालों को बयान करने के बाद आख़िर में फ़रमाता है कि :

يُثَبِّتُ اللّٰهُ الَّذِيْنَ آمَنُوْا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَ فِي الْاٰخِرَةِ ج وَيُضِلُّ اللّٰهُ الظّٰلِمِيْنَ قف

तय्यब कलिमे पर, जो लोग ईमान लाएँगे अल्लाह तआला उनको एक मज़बूत क़ौल के साथ दुनिया और आख़िरत दोनों में सबात और जमाव बख़्शेगा और इनके मुक़ाबिले में वह ज़ालिम लोग जो ख़बीस कलिमे को मानेंगे, अल्लाह उनकी सारी कोशिशों को भटका देगा । वे कभी कोई सीधा काम न करेंगे, जिससे दुनिया या आख़िरत में कोई अच्छा फल पैदा हो । (क़ुरआन, 14:27)

कलिमा पढ़नेवाला अपमानित क्यों ?

भाइयो ! तय्यब कलिमे और ख़बीस कलिमे का फ़र्क़ और दोनों के नतीजे आपने सुन लिए, अब आप यह सवाल ज़रूर करेंगे कि हम तो तय्यब कलिमे के माननेवाले हैं, फिर क्या बात है कि हम न फूलते हैं न फलते हैं और वे लोग जो ख़बीस कलिमे के माननेवाले हैं, क्यों फल-फूल रहे हैं ?

इसका जवाब मेरे ज़िम्मे है और मैं जवाब दूँगा, शर्त यह है कि आपमें से कोई मेरे जवाब पर बुरा न माने, बल्कि अपने दिल से पूछे कि मेरा

जवाब वाक़ई सही है या नहीं ।

अव्वल तो आपका यही कहना ग़लत है कि आप तय्यब कलिमे को मानते हैं और फिर भी न फूलते हैं, न फलते हैं । तय्यब कलिमे को मानने के मानी ज़बान से कलिमा पढ़ने के नहीं हैं । इसके मानी दिल से मानने के हैं और इस तरह मानने के हैं कि इसके ख़िलाफ़ कोई अक़ीदा आपके दिल में न रहे और इसके ख़िलाफ़ कोई काम आपसे न हो सके । मेरे भाइयो ! ख़ुदारा मुझे बताइए क्या आपका हक़ीक़त में यही हाल है ? क्या सैकड़ों ऐसे मुशरिकाना और काफ़िराना ख़यालात आपमें नहीं फैले हुए हैं जो तय्यब कलिमे के बिलकुल ख़िलाफ़ हैं ? क्या मुसलमान का सिर ख़ुदा के सिवा दूसरों के आगे नहीं झुक रहा है ? क्या मुसलमान को दूसरों से ख़ौफ़ नहीं आता ? क्या वह दूसरों की मदद पर भरोसा नहीं करता ? क्या वह दूसरों को रोज़ी देनेवाला (राज़िक़) नहीं समझता ? क्या वह ख़ुदा के क़ानून को छोड़कर दूसरों के क़ानून की ख़ुशी-ख़ुशी पैरवी नहीं करता ? क्या अपने आपको मुसलमान कहलानेवाले अदालतों में जाकर यह साफ़-साफ़ नहीं कहते कि हम शरअ को नहीं मानते, बल्कि रस्मो रिवाज को मानते हैं ? क्या आपमें ऐसे लोग मौजूद नहीं हैं जिनको दुनियवी फ़ायदों के लिए ख़ुदा के क़ानून की किसी दफ़ा को तोड़ने में झिझक नहीं होती ? क्या आपमें ऐसे लोग मौजूद नहीं हैं जिनको काफ़िरों के ग़ज़ब का डर है; मगर ख़ुदा के ग़ज़ब का डर नहीं, जो बद्दीनों को ख़ुश करने के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं, मगर ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करने के लिए कुछ नहीं कर सकते ? जो अधर्मियों की हुकूमत को हुकूमत समझते हैं और ख़ुदा की हुकूमत के मुताल्लिक़ उन्हें कभी याद भी नहीं आता कि वह भी कहीं मौजूद है ? ख़ुदा के लिए सच बताइए क्या यह सच नहीं है ? अगर यह सच है तो फिर किस मुँह से आप कहते हैं कि हम तय्यब कलिमे को माननेवाले हैं और इसके बावजूद हम नहीं फूलते-फलते ? पहले सच्चे दिल से ईमान तो लाइए और तय्यब कलिमे के मुताबिक ज़िन्दगी इख़तियार तो करिए, फिर अगर वह पेड़ न पैदा हो जो ज़मीन में गहरी जड़ों के साथ जमनेवाला और आसमान तक छा जानेवाला है तो, अल्लाह पनाह में रखे, अपने ख़ुदा को झूठा समझ लेना कि उसने आपको ग़लत बात का यक़ीन दिलाया ।

क्या ख़बीस कलिमा के माननेवाले फल-फूल रहे हैं ?

फिर आपका यह कहना भी ग़लत है कि जो ख़बीस कलिमे को मानते हैं वे वाक़ई दुनिया में फल-फूल रहे हैं । ख़बीस कलिमे को माननेवाले न कभी फले-फूले हैं, न आज फल-फूल रहे हैं । आप दौलत का ढेर, ऐशो आराम के सामान और ज़ाहिरी शानो शौकत को देखकर समझते हैं कि वे फल-फूल रहे हैं, मगर उनके दिलों से पूछिए कि कितने हैं जिनके दिलों को इतमीनान हासिल है ? उनके ऊपर ऐश के सामान लदे हुए हैं, मगर उनके दिलों में आग की भट्टियाँ सुलग रही हैं जो उनको किसी वक़्त चैन नहीं लेने देतीं । ख़ुदा के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी ने उनके घरों को दोज़ख़ बना रखा है । अख़बारों में देखिए कि यूरोप और अमरीका में ख़ुदकुशी का कितना ज़ोर है । तलाक़ की कैसी कसरत है, नस्लें किस तरह घट रही हैं और घटाई जा रही हैं, बुरे-बुरे रोगों ने किस तरह लाखों इनसानों की ज़िन्दगियाँ तबाह कर दी हैं । अनेक वर्गों के बीच रोटी के लिए कैसी कशमकश बरपा है । हसद, डाह, कीना और दुशमनी ने किस तरह एक ही जिन्स के आदमियों को आपस में लड़ा रखा है । ऐश पसन्दी ने लोगों के लिए जीवन को कितना कड़वा बना दिया है, और यह बड़े-बड़े अज़ीमुश्शान शहर जिनको दूर से देखकर आदमी रश्के जन्नत समझता है इनके अन्दर लाखों इनसान किस मुसीबत की ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं । क्या इसी को फलना-फूलना कहते हैं ? क्या यही वह जन्नत है जिसपर आप लालच की निगाहें डालते हैं ?

मेरे भाइयो ! याद रखिए, ख़ुदा की बात कभी झूठी नहीं हो सकती । हक़ीक़त में तय्यब कलिमे के सिवा और कोई कलिमा नहीं जिसकी पैरवी करके इनसान को दुनिया में राहत और आख़िरत में कामयाबी हासिल हो सके । आप जिस तरफ़ चाहें नज़र दौड़ाकर देख लें, इसके ख़िलाफ़ आपको कहीं कोई चीज़ न मिल सकेगी ।

तय्यब कलिमे पर ईमान लाने का मक़सद

मुसलमान भाइयो ! इससे पहले दो ख़ुतबों में आपके सामने तय्यब कलिमे का मतलब बयान कर चुका हूँ । आज मैं इस सवाल पर बहस करना चाहता हूँ कि इस कलिमे पर ईमान लाने का फ़ायदा और उसकी ज़रूरत क्या है ?

हर काम का एक मक़सद है

यह तो आप जानते हैं कि आदमी जो काम भी करता है किसी न किसी ग़रज़ और किसी न किसी फ़ायदे के लिए करता है । बेग़रज़, बेफ़ायदा कोई काम नहीं किया करता । आप पानी क्यों पीते हैं ? इसलिए कि प्यास बुझे । मगर पानी पीने के बाद भी आपका वही हाल रहे जो पीने से पहले होता है तो आप हरगिज़ पानी न पिएँ, क्योंकि यह एक बेनतीजा काम होगा । आप खाना क्यों खाते हैं ? इसलिए कि भूख मिटे और आपमें ज़िन्दा रहने की ताक़त पैदा हो । अगर खाना खाने और न खाने का नतीजा एक ही हो तो आप यही कहेंगे कि यह एक बिलकुल फ़ज़ूल काम है । बीमारी में आप दवा क्यों लेते हैं ? इसलिए कि बीमारी दूर हो जाए और तन्दुरुस्ती हासिल हो । अगर दवा लेकर भी बीमारी का वही हाल हो जो दवा लेने से पहले था तो आप यही कहेंगे कि ऐसी दवा लेना बेकार है । आप खेती-बाड़ी में इतनी मेहनत क्यों करते हैं ? इसलिए कि ज़मीन से ग़ल्ला और फल और तरकारियाँ पैदा हों । अगर बीज बोने पर भी ज़मीन से कोई चीज़ न उगती तो आप हल चलाने और बीज बोने और पानी देने में इतनी मेहनत हरगिज़ न करते । गरज़ आप दुनिया में जो काम भी करते हैं उसमें ज़रूर कोई न कोई मक़सद होता है । अगर मक़सद हासिल हो तो आप कहते हैं कि काम ठीक हुआ और अगर मक़सद हासिल न हो तो आप कहते हैं कि काम ठीक नहीं हुआ ।

कलिमा पढ़ने का मक़सद

इस बात को ज़ेहन में रखिए और मेरे एक-एक सवाल का जवाब देते जाइए। सबसे पहला सवाल यह है कि कलिमा क्यों पढ़ा जाता है ? इसका जवाब आप इसके सिवा और कुछ नहीं दे सकते कि कलिमा पढ़ने का मक़सद यह है कि काफ़िर और मुसलमान में फ़र्क़ हो जाए। अब मैं पूछता हूँ कि फ़र्क़ होने का क्या मतलब है ? क्या इसका यह मतलब है कि काफ़िर की दो आँखें होती हैं तो मुसलमान की चार आँखें हो जाएँ या काफ़िर का एक सिर होता है तो मुसलमान के दो सिर हो जाएँ ? आप कहेंगे कि इसका यह मतलब नहीं है। फ़र्क़ होने का मतलब यह है कि काफ़िर के अंजाम और मुसलमान के अंजाम में फ़र्क़ हो। काफ़िर का अंजाम यह है कि आख़िरत में वह ख़ुदा की रहमत से महरूम हो जाए और नाकाम व नामुराद रहे; और मुसलमान का अंजाम यह है कि ख़ुदा की ख़ुशनूदी उसे हासिल हो और आख़िरत में वह कामयाब और बामुराद रहे।

आख़िरत की नाकामी व कामयाबी

मैं कहता हूँ कि यह जवाब आपने बिलकुल ठीक दिया, मगर मुझे यह बताइए कि आख़िरत क्या चीज़ है ? आख़िरत की नाकामी व नामुरादी से क्या मतलब है और वहाँ कामयाब और बामुराद होने का मतलब क्या है ? जब तक मैं इस बात को न समझ लूँ उस वक़्त तक आगे नहीं बढ़ सकता।

इस सवाल का जवाब आपको देने की ज़रूरत नहीं, इसका जवाब पहले ही दिया जा चुका है :

اَلدُّنْيَا مَزْرَعَةُ الْاٰخِرَةِ.

यानी दुनिया और आख़िरत दो अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं, बल्कि एक ही सिलसिला है जिसकी इबतिदा दुनिया है और इनतिहा आख़िरत। इन दोनों में वही जोड़ है जो खेती और फ़सल में होता है। आप ज़मीन में हल जोतते हैं, फिर बीज बोते हैं, फिर पानी देते हैं, फिर खेती की देखभाल करते रहते हैं, यहाँ तक कि फ़सल तैयार हो जाती है और उसको काटकर

आप साल भर तक मज़े से खाते रहते हैं । आप ज़मीन में जिस चीज़ की खेती करेंगे, उसी की फ़सल तैयार होगी । गेहूँ बोएँगे तो गेहूँ पैदा होगा, काँटे बोएँगे तो काँटे ही पैदा होंगे, कुछ न बोएँगे तो कुछ न पैदा होगा । हल चलाने और बीज बोने और पानी देने और ख़ेती की रखवाली करने में जो-जो ग़लतियाँ और कोताहियाँ आपसे होंगी उन सबका बुरा असर आपको फ़सल काटने के मौक़े पर मालूम होगा । और अगर आपने यह सब काम अच्छी तरह किए हैं तो उनका फ़ायदा भी आप फ़सल ही काटने के वक़्त देखेंगे । बिलकुल यही हाल दुनिया और आख़िरत का है । दुनिया एक खेती है । इस खेती में आदमी को इसलिए भेजा गया है कि अपनी मेहनत और अपनी कोशिश से अपने लिए फ़सल तैयार करे । पैदाइश से लेकर मौत तक के लिए आदमी को इस काम की मुहलत दी गई है । इस मुहलत में जैसी फ़सल आदमी ने तैयार की है वैसी ही फ़सल वह मौत के बाद दूसरी-ज़िन्दगी में काटेगा और फिर जो फ़सल वह काटेगा, उसी पर आख़िरत की ज़िन्दगी में उसका गुज़र-बसर होगा । अगर किसी ने उम्र भर दुनिया की खेती में अच्छे फल बोए हैं और उनको ख़ूब पानी दिया है और उनकी ख़ूब रखवाली की है तो आख़िरत की ज़िन्दगी में जब वह क़दम रखेगा तो अपनी मेहनत की कमाई एक हरे-भरे बाग़ की सूरत में तैयार पाएगा और उसे अपनी इस दूसरी ज़िन्दगी में फिर कोई मेहनत नहीं करनी पड़ेगी, बल्कि दुनिया में उम्र भर मेहनत करके जो बाग़ उसने लगाया था उसी बाग़ के फलों पर आराम से ज़िन्दगी बसर करेगा । इसी चीज़ का नाम जन्नत है और आख़िरत में बामुराद होने का यही मतलब है । इसके मुक़ाबिले में जो शख़्स अपनी दुनिया की ज़िन्दगी में काँटे और कड़वे, कसीले, ज़हरीले फल बोता रहा है, उसको आख़िरत की ज़िन्दगी में उन्हीं फलों की फ़सल तैयार मिलेगी । वहाँ फिर उसको दोबारा इतना मौक़ा नहीं मिलेगा कि अपनी इस ग़लती की तलाफ़ी कर सके और इस ख़राब फ़सल को जलाकर दूसरी अच्छी फ़सल तैयार कर सके । फिर तो उसको आख़िरत की सारी ज़िन्दगी उसी फ़सल पर बसर करनी होगी, जिसे वह दुनिया में तैयार कर चुका है । जो काँटे उसने बोए थे उन्हीं के बिस्तर पर उसे लेटना होगा और जो कड़वे, कसीले और ज़हरीले फल उसने लगाए थे वही उसको खाने पड़ेंगे । यही मतलब है आख़िरत में नाकाम व नामुराद

होने का ।

आख़िरत की यह तफ़सील जो मैंने बयान की है, हदीस और क़ुरआन से भी इसकी यही तशरीह साबित है । इससे मालूम हुआ कि आख़िरत की ज़िन्दगी में इनसान का नामुराद या बामुराद होना और उसके अंजाम का अच्छा या बुरा होना दरअसल नतीजा है दुनिया की ज़िन्दगी में उसके इल्म और अमल के सही या ग़लत होने का ।

काफ़िर और मुसलमान के अंजाम में फ़र्क़ क्यों ?

यह बात जब आपने समझ ली तो साथ ही साथ यह बात भी अपने आप समझ में आ जाती है कि मुसलमान और काफ़िर के अंजाम का फ़र्क़ यूँ ही बिला वजह नहीं हो जाता । दरअसल अंजाम का फ़र्क़ शुरू ही के फ़र्क़ का नतीजा है । जब तक दुनिया में मुसलमान और काफ़िर के इल्म और अमल के दरमियान फ़र्क़ न होगा, आख़िरत में भी इन दोनों के अंजाम के दरमियान फ़र्क़ नहीं हो सकता । यह किसी तरह मुमकिन नहीं है कि दुनिया में एक शख़्स का इल्म व अमल वही हो जो काफ़िर का इल्म और अमल है और फिर आख़िरत में वह उस अंजाम से बच जाए जो काफ़िर का अंजाम होता है ।

कलिमा का मक़सद — इल्म व अमल की दुरुस्ती

अब फिर वही सवाल पैदा होता है कि कलिमा पढ़ने का मक़सद क्या है ? पहले आपने इसका जवाब यह दिया था कि कलिमा पढ़ने का मक़सद यह है कि काफ़िर के अंजाम और मुसलमान के अंजाम में फ़र्क़ हो । अब अंजाम और आख़िरत की जो तशरीह आपने सुनी है उसके बाद आपको अपने जवाब पर फिर ग़ौर करना होगा । अब आपको यह कहना पड़ेगा कि कलिमा पढ़ने का मक़सद दुनिया में इनसान के इल्म और अमल को दुरुस्त करना है, ताकि आख़िरत में उसका अंजाम दुरुस्त हो । यह कलिमा इनसान को दुनिया में वह बाग़ लगाना सिखाता है जिसके फल आख़िरत में उसको तोड़ने हैं । अगर आदमी इस कलिमे को नहीं मानता तो उसको बाग़ लगाने का तरीक़ा ही नहीं मालूम हो सकता । फिर वह बाग़ लगाएगा

किस तरह और आख़िरत में फल किस चीज़ के तोड़ेगा ? और अगर आदमी इस कलिमे को ज़बान से पढ़ लेता है, मगर उसका इल्म भी वही रहता है जो न पढ़नेवाले का इल्म था और उसका अमल भी वैसा ही रहता है जैसा काफ़िर का अमल था, तो आपकी अक़्ल ख़ुद कह देगी कि ऐसा कलिमा पढ़ने से कुछ हासिल नहीं । कोई वजह नहीं कि ऐसे शख़्स का अंजाम काफ़िर के अंजाम से मुख़्तलिफ़ हो । ज़बान से कलिमा पढ़कर उसने ख़ुदा पर कोई एहसान नहीं किया कि बाग़ लगाने का तरीक़ा भी वह न सीखे, बाग़ लगाये भी नहीं, सारी उम्र काँटे ही बोता रहे और फिर भी आख़िरत में उसको फलों से लदा हुआ लहलहाता बाग़ मिल जाए, जैसा कि पहले मैं कई मिसालें देकर बयान कर चुका हूँ । जिस काम के करने और न करने का नतीजा एक हो वह काम फ़ज़ूल और बेमानी है । जिस दवा को लेने के बाद भी बीमार का वही हाल रहे जो दवा लेने से पहले था, वह दवा हक़ीक़त में दवा नहीं है । बिलकुल इसी तरह अगर कलिमा पढ़नेवाले आदमी का इल्म और अमल भी वैसा ही रहे जो कलिमा न पढ़नेवाले आदमी का होता है, तो ऐसा कलिमा पढ़ना बिलकुल बेमानी है । जब दुनिया ही में काफ़िर और मुसलिम की ज़िन्दगी में फ़र्क़ न हुआ तो आख़िरत में उनके अंजाम में फ़र्क़ कैसे हो सकता है ?

तय्यब कलिमा कौन-सा इल्म सिखाता है ?

अब यह सवाल सामने आता है कि वह कौन-सा इल्म है जो तय्यब कलिमा इनसान को सिखाता है और उस इल्म को सीखने के बाद मुसलमान के अमल और काफ़िर के अमल में क्या फ़र्क़ हो जाता है ?

(1) अल्लाह की बंदगी

पहली बात जो इस कलिमे से आपको मालूम होती है वह यह है कि आप अल्लाह के बन्दे हैं, और किसी के बन्दे नहीं हैं । यह बात जब आपको मालूम हो गई तो ख़ुद-बख़ुद आपको यह बात भी मालूम हो गई कि आप जिसके बन्दे हैं, दुनिया में आपको उसी की मरज़ी के मुताबिक़ अमल करना चाहिए, क्योंकि उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ अगर आप चलेंगे तो यह अपने मालिक से बग़ावत होगी ।

(2) मुहम्मद (सल्ल०) की पैरवी

इस इल्म के बाद दूसरा इल्म आपको कलिमे से यह हासिल होता है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं । यह बात जब आपको मालूम हो गई तो इसके साथ ही यह बात भी आपको अपने आप मालूम हो गई कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दुनिया की खेती में काँटे और ज़हरीले फलों के बजाए फूलों और मीठे फलों का बाग़ लगाना जिस तरह सिखाया है उसी तरह आपको बाग़ लगाना चाहिए । अगर आप इस तरीक़े की पैरवी करेंगे तो आख़िरत में आपको अच्छी फ़सल मिलेगी और अगर इसके ख़िलाफ़ अमल करेंगे, दुनिया में काँटे बोएँगे तो आख़िरत में काँटे ही पाएँगे ।

इल्म के मुताबिक़ अमल भी हो

यह इल्म हासिल होने के बाद लाज़िम है कि आपका अमल भी इसके मुताबिक़ हो । अगर आपको यक़ीन है कि एक दिन मरना है और मरने के बाद फिर एक दूसरी ज़िन्दगी है और उस ज़िन्दगी में आपको उसी फ़सल पर गुज़र करना होगा जिसे आप इस ज़िन्दगी में तैयार करके जाएँगे, तो फिर यह नामुमकिन है कि आप अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर कोई दूसरा तरीक़ा इख़्तियार कर सकें । दुनिया में आप खेती-बाड़ी क्यों करते हैं ? इसी लिए कि आपको यक़ीन है कि अगर खेती-बाड़ी न की तो ग़ल्ला पैदा न होगा और ग़ल्ला पैदा न हुआ तो भूखे मर जाएँगे । अगर आपको इस बात का यक़ीन न होता और आप समझते कि खेती-बाड़ी के बिना ही ग़ल्ला पैदा हो जाएगा या ग़ल्ले के बिना भी आप भूख से बच जाएँगे तो हरगिज़ आप खेती-बाड़ी में यह मेहनत न करते । बस इसी पर अपने हाल को भी समझ लीजिए । जो आदमी ज़बान से यह कहता है कि मैं ख़ुदा को अपना मालिक और रसूल पाक (सल्ल०) को ख़ुदा का रसूल मानता हूँ और आख़िरत की ज़िन्दगी को भी मानता हूँ, मगर अमल उसका क़ुरआन की तालीम और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत के ख़िलाफ़ है, उसके बारे में यह समझ लीजिए कि दर हक़ीक़त उसका ईमान कमज़ोर है । उसको

जैसा यक़ीन अपनी खेती में काश्त न करने के बुरे अंजाम का है, अगर वैसा ही यक़ीन आख़िरत की फ़सल तैयार न करने के बुरे अंजाम का भी हो तो वह कभी इस काम में ग़फ़लत न करे। कोई आदमी जान-बूझकर अपने हक़ में काँटे नहीं बोता। काँटे वही बोता है जिसे यह यक़ीन नहीं होता कि जो चीज़ वह बो रहा है उससे काँटे पैदा होंगे और वह काँटे उसको तकलीफ़ देंगे। आप जान-बूझकर अपने हाथ में आग का अंगारा नहीं उठाते, क्योंकि आपको यक़ीन है कि यह जला देगा। मगर एक बच्चा आग में हाथ डाल देता है, क्योंकि उसे अच्छी तरह मालूम नहीं है कि इसका अंजाम क्या होगा ?

अध्याय — 2

इस्लाम की हक़ीक़त

- मुसलमान किसे कहते हैं ?
  - ईमान की कसौटी
    - इस्लाम की असली कसौटी
      - इस्लाम की फ़रमाँबरदारी किसलिए?
        - दीन और शरीअत

मुसलमान किसे कहते हैं ?

मुसलमान भाइयो ! आज मैं आपके सामने मुसलमान की सिफ़ात (ख़ूबियाँ) बयान करूँगा, यानी यह बताऊँगा कि मुसलमान होने के लिए कम से कम शर्तें क्या हैं और आदमी को कम से कम क्या होना चाहिए कि वह मुसलमान कहलाए जाने के क़ाबिल हो ।

कुफ़्र क्या है और इस्लाम क्या है ?

इस बात को समझने के लिए सबसे पहले आपको यह जानना चाहिए कि कुफ़्र क्या है और इस्लाम क्या है ? कुफ़्र यह है कि आदमी ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी से इनकार कर दे और इस्लाम यह है कि आदमी सिर्फ़ ख़ुदा का फ़रमाँबरदार हो और हर ऐसे तरीक़े या क़ानून या हुक्म को मानने से इनकार कर दे जो ख़ुदा की भेजी हुई हिदायत के ख़िलाफ़ हो । इस्लाम और कुफ़्र का यह फ़र्क़ क़ुरआन मजीद में साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है। कहा गया—

وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ○

यानी, जो ख़ुदा की उतारी हुई हिदायत के मुताबिक़ फ़ैसला न करें, ऐसे लोग ही दरअसल काफ़िर हैं । (क़ुरआन, 5:44)

फ़ैसला करने से यह मुराद नहीं है कि अदालत में जो मुक़द्दमा जाए बस उसी का फ़ैसला ख़ुदा की किताब के मुताबिक़ हो, बल्कि दरअसल इससे मुराद वह फ़ैसला है जो हर शख़्स अपनी ज़िन्दगी में हर वक़्त किया करता है । हर मौक़े पर आपके सामने यह सवाल आता है कि फ़लाँ काम किया जाए या न किया जाए ? फ़लाँ बात इस तरह की जाए या उस तरह की जाए ? फ़लाँ मामले में यह तरीक़ा अपनाया जाए या वह तरीक़ा अपनाया जाए ? ऐसे तमाम मौक़ों पर एक तरीक़ा ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत बताती है, और दूसरा तरीक़ा इनसान के अपने मन की ख़्वाहिशें या बाप-दादा की रसमें या इनसान के बनाए

हुए क़ानून बताते हैं। अब जो शख़्स ख़ुदा के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर किसी दूसरे तरीक़े के मुताबिक़ काम करने का फ़ैसला करता है, वह दरअसल कुफ़्र का तरीक़ा इख़तियार करता है। अगर उसने अपनी सारी ज़िन्दगी ही के लिए यही ढंग इख़तियार किया है तो वह पूरा काफ़िर है और अगर वह कुछ मामलों में तो ख़ुदा की हिदायत को मानता हो और कुछ में अपने नफ़्स की ख़्वाहिशों को या रस्मो रिवाज को या इनसानों के क़ानून को ख़ुदा के क़ानून पर तरजीह देता हो, तो जितना भी वह ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत करता है उतना ही कुफ़्र में मुब्तला है। कोई आधा काफ़िर है, कोई चौथाई काफ़िर है, किसी में दसवाँ हिस्सा कुफ़्र का है और किसी में बीसवाँ हिस्सा। ग़रज़ जितनी ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत है उतना ही कुफ़्र भी है।

इस्लाम इसके सिवा कुछ नहीं है कि आदमी सिर्फ़ ख़ुदा का बन्दा हो—न नफ़्स का बन्दा, न बाप-दादा का बन्दा, न ख़ानदान और क़बीले का बन्दा, न मौलवी साहब और पीर साहब का बन्दा, न ज़मींदार साहब, तहसीलदार साहब और मजिस्ट्रेट साहब का बन्दा, न ख़ुदा के सिवा किसी और साहब का बन्दा। क़ुरआन मजीद में कहा गया है—

قُلْ يَاَهْلَ الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ اَنْ لاَّ نَعْبُدَ اِلاَّ اللّٰهَ وَلاَ نُشْرِكَ بِهٖ شَيْئًا وَّ لاَيَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ط فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوْا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ○

यानी, ऐ नबी ! किताबवालों से कहो कि आओ हम-तुम एक ऐसी बात पर इत्तिफ़ाक़ कर लें जो हमारे और तुम्हारे बीच एक-सी है (यानी जो तुम्हारे नबी भी बता गए हैं और ख़ुदा का नबी होने की हैसियत से मैं भी वही बातें कहता हूँ)। वह बात यह है कि एक तो हम अल्लाह के सिवा किसी के बन्दे बनकर न रहें, दूसरे यह कि ख़ुदाई में किसी को शरीक न करें और तीसरी बात यह है कि कोई इनसान किसी इनसान को अपना मालिक और अपना आक़ा न बनाए। ये तीन बातें अगर वे नहीं मानते तो उनसे कह

दो कि गवाह रहो, हम तो मुसलमान हैं, यानी इन तीनों बातों को मानते हैं। (क़ुरआन, 3:64)

फिर फ़रमाया—

اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ اَسْلَمَ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّاِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ۝

यानी, क्या वे ख़ुदा की इताअत के सिवा किसी और की इताअत चाहते हैं ? हालाँकि ज़मीन और आसमान की हर चीज़ चाहे न चाहे ख़ुदा की इताअत कर रही है और सबको उसी की तरफ़ पलटना है। (क़ुरआन, 3:83)

इन दोनों आयतों में एक ही बात बयान की गई है। यानी यह कि असली दीन ख़ुदा की इताअत और फ़रमाँबरदारी है। ख़ुदा की इबादत के मानी ये नहीं हैं कि बस पाँच वक़्त उसके आगे सजदा कर लो। बल्कि उसकी इबादत के मानी ये हैं कि रात-दिन में हर वक़्त उसके हुक्म की इताअत करो, जिस चीज़ से उसने रोका है उससे रुक जाओ, जिस चीज़ का उसने हुक्म दिया है उसपर अमल करो। हर मामले में यह देखो कि ख़ुदा का हुक्म क्या है, यह न देखो कि तुम्हारा अपना दिल क्या कहता है, तुम्हारी अक़्ल क्या कहती है, बाप-दादा क्या कर गए हैं, ख़ानदान और बिरादरी की क्या मरज़ी है, जनाब मौलवी साहब क़िबला और जनाब पीर साहब क़िबला क्या फ़रमाते हैं और फ़लाँ साहब का क्या हुक्म है और फ़लाँ साहब की क्या मरज़ी है ? अगर आपने ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर किसी की भी बात मानी तो मानो ख़ुदा की ख़ुदाई में उसको शरीक किया; उसको वह दर्जा दिया जो सिर्फ़ ख़ुदा का दर्जा है। हुक्म देनेवाला तो सिर्फ़ ख़ुदा है। क़ुरआन में है—

اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ۝

हुक्म बस अल्लाह का है। (क़ुरआन, 6:57)

बन्दगी के लायक़ तो सिर्फ़ वह है जिसने आपको पैदा किया और जिसके बलबूते पर आप ज़िन्दा हैं। ज़मीन और आसमान की हर चीज़ उसी का

हुक्म मान रही है। कोई पत्थर किसी पत्थर की इताअत नहीं करता, कोई पेड़ किसी पेड़ की इताअत नहीं करता, कोई जानवर किसी जानवर की इताअत नहीं करता। फिर क्या आप जानवरों और पेड़ों और पत्थरों से भी गए-गुज़रे हो गए कि वे तो सिर्फ़ ख़ुदा की इताअत करें और आप ख़ुदा को छोड़कर इनसानों की इताअत करें ? —यह है वह बात जो क़ुरआन की इन दोनों आयतों में बयान की गई है।

गुमराही के तीन रास्ते

अब मैं आपको बताना चाहता हूँ कि कुफ़्र और गुमराही दरअसल निकलती कहाँ से है। क़ुरआन पाक हमको बताता है कि इस कमबख़्त बला के आने के तीन रास्ते हैं।

(1) नफ़्स की बंदगी

पहला रास्ता इनसान के अपने नफ़्स की ख़्वाहिशें और मन की इच्छाएँ हैं। क़ुरआन का फ़रमान है—

وَمَنْ اَضَلُّ مِمَّنِ اتَّبَعَ هَوٰهُ بِغَيْرِ هُدًى مِّنَ اللّٰهِ ط اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۝ع

> यानी, उससे बढ़कर गुमराह कौन होगा, जिसने ख़ुदा की हिदायत के बजाए अपने नफ़्स की ख़्वाहिश की पैरवी की, ऐसे ज़ालिम लोगों को ख़ुदा हिदायत नहीं देता। (क़ुरआन, 28:50)

मतलब यह है कि इनसान को सबसे बढ़कर गुमराह करनेवाली चीज़ इनसान के अपने नफ़्स की ख़्वाहिशें हैं। जो शख़्स ख़्वाहिशों का बन्दा बन गया उसके लिए ख़ुदा का बन्दा बनना मुमकिन ही नहीं। वह तो हर वक़्त यह देखेगा कि मुझे रुपया किस काम में मिलता है, मेरी इज़्ज़त और शोहरत किस काम में होती है, मुझे लज़्ज़त और लुत्फ़ किस काम में हासिल होता है, मुझे आराम और सुख-चैन किस काम में मिलता है। बस ये चीज़ें जिस काम में होंगी उसी को वह इख़्तियार करेगा, चाहे ख़ुदा उससे मना करे; और ये चीज़ें जिस काम में न हों उसको वह हरगिज़ न करेगा,

चाहे ख़ुदा उसका हुक्म दे । तो ऐसे शख़्स का ख़ुदा, अल्लाह तबारक व तआला न हुआ, उसका अपना मन और नफ़्स ही उसका ख़ुदा हो गया । उसको हिदायत कैसे मिल सकती है ? इसी बात को दूसरी जगह क़ुरआन में यूँ बयान किया गया है—

اَرَأَيْتَ مَنِ اتَّخَذَ إِلٰهَهٗ هَوٰهُ ؕ اَفَاَنْتَ تَكُوْنُ عَلَيْهِ وَكِيْلًا ۙ اَمْ تَحْسَبُ أَنَّ اَكْثَرَهُمْ يَسْمَعُوْنَ اَوْ يَعْقِلُوْنَ ؕ إِنْ هُمْ إِلَّا كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ اَضَلُّ سَبِيْلًا ۟

> यानी, ऐ नबी ! तुमने उस शख़्स के हाल पर ग़ौर भी किया जिसने अपने नफ़्स की ख़्वाहिश को अपना ख़ुदा बना लिया है ? क्या आप ऐसे शख़्स की निगरानी कर सकते हैं ? क्या आप समझते हैं कि उनमें से बहुत-से लोग सुनते और समझते हैं ? हरगिज़ नहीं, ये तो जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी गए-गुज़रे ।
>
> (क़ुरआन, 25:43–44)

नफ़्स के बन्दे का जानवरों से बदतर होना ऐसी बात है जिसमें किसी शक की गुंजाइश ही नहीं है । कोई जानवर आपको ऐसा न मिलेगा जो ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई हद से आगे बढ़ता हो । हर जानवर वही चीज़ खाता है जो ख़ुदा ने उसके लिए मुक़र्रर की है; उसी तरह खाता है जिस तरह उसके लिए मुक़र्रर की है । और जितने काम जिस जानवर के लिए मुक़र्रर हैं, बस उतने ही करता है । मगर यह इनसान ऐसा जानवर है कि जब यह अपनी ख़्वाहिश का बन्दा बनता है तो ऐसी-ऐसी हरकतें कर गुज़रता है जिनसे शैतान भी पनाह माँगे । यह तो गुमराही के आने का पहला रास्ता है ।

(2) बाप-दादा की अंधी पैरवी

गुमराही के आने का दूसरा रास्ता यह है कि बाप-दादा से जो रस्म व रिवाज, जो अक़ीदे और ख़यालात, जो रंग-ढंग चले आ रहे हों आदमी उनका ग़ुलाम बन जाए और ख़ुदा के हुक्म से बढ़कर उनको समझे और अगर उसके ख़िलाफ़ ख़ुदा का हुक्म उसके सामने पेश किया जाए तो कहे

कि मैं तो वही करूँगा, जो मेरे बाप-दादा करते थे और जो मेरे ख़ानदान और क़बीले का रिवाज है । जो शख़्स इस मर्ज़ में फँसा है वह ख़ुदा का बन्दा कब हुआ ? उसके ख़ुदा तो उसके बाप-दादा, उसके ख़ानदान और क़बीले के लोग हैं । उसको यह झूठा दावा करने का क्या हक़ है कि मैं मुसलमान हूँ ? क़ुरआन करीम में इसपर भी बड़ी सख़्ती के साथ तंबीह की गई है—

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَآ اَلْفَيْنَا عَلَيْهِ آبَائَنَا ط
اَوَلَوْ كَانَ آبَائُهُمْ لاَ يَعْقِلُوْنَ شَيْئًا وَّلاَ يَهْتَدُوْنَ○

यानी, और जब कभी उनसे कहा गया कि जो हुक्म ख़ुदा ने भेजा है उसकी पैरवी करो, तो उन्होंने यही कहा कि हम तो उस बात की पैरवी करेंगे जो हमें बाप-दादा से मिली है । अगर उनके बाप-दादा किसी बात को न समझते हों और वे सीधी राह पर न हों तो क्या ये फिर भी उन्हीं की पैरवी किए चले जाएँगे ?
(क़ुरआन, 2:170)

और दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया—

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ تَعَالَوْا اِلٰى مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَ اِلَى الرَّسُوْلِ قَالُوْا حَسْبُنَا
مَاوَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا ط اَوَلَوْ كَانَ اٰبَآؤُهُمْ لاَيَعْلَمُوْنَ شَيْئًا وَّلاَ يَهْتَدُوْنَ
يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا عَلَيْكُمْ اَنْفُسَكُمْ ج لاَيَضُرُّكُمْ مَّنْ ضَلَّ اِذَا اهْتَدَيْتُمْ ط
اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ○

और जब उनसे कहा गया कि आओ उस फ़रमान की तरफ़ जो ख़ुदा ने भेजा है और आओ रसूल के तरीक़े की तरफ़, तो उन्होंने कहा कि हमारे लिए तो बस वही तरीक़ा काफ़ी है जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। क्या ये बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाएँगे चाहे उनको किसी बात का इल्म न हो

और वे सीधे रास्ते पर न हों ? ऐ ईमान लानेवालो ! तुमको अपनी फ़िक्र होनी चाहिए। अगर आप सीधे रास्ते पर लग जाओ तो किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हें कोई नुक़सान न होगा। फिर आख़िरकार तुम सबको ख़ुदा की तरफ़ वापिस जाना है। उस वक़्त ख़ुदा तुमको तुम्हारे आमाल का भला-बुरा सब कुछ बता देगा।
(क़ुरआन, 5:104–105)

यह ऐसी गुमराही है जिसमें लगभग हर ज़माने के जाहिल लोग फँसे रहे हैं और हमेशा ख़ुदा के रसूलों की हिदायत को मानने से यही चीज़ इनसान को रोकती रही है। हज़रत मूसा (अलै०) ने जब लोगों को ख़ुदा की शरीअत की तरफ़ बुलाया था, उस वक़्त भी लोगों ने यही कहा था—

اَجِئْتَنَا لِتَلْفِتَنَا عَمَّا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا.

क्या तू हमें उस रास्ते से हटाना चाहता है, जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है ? (क़ुरआन, 10:78)

हज़रत इबराहीम (अलै०) ने जब अपने क़बीलेवालों को शिर्क से रोका तो उन्होंने भी यही कहा था—

وَجَدْنَا اٰبَآءَنَا لَهَا عَابِدِيْنَ۝

हमने तो अपने बाप-दादा को इन्हीं ख़ुदाओं की बन्दगी करते हुए पाया है। (क़ुरआन, 21:53)

ग़रज़ इसी तरह हर नबी के मुक़ाबले में लोगों ने यही दलील पेश की है कि आप जो कहते हैं यह हमारे बाप-दादा के तरीक़े के ख़िलाफ़ है। इसलिए हम इसे नहीं मानते। अतः क़ुरआन में आया है—

وَكَذٰلِكَ مَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ فِىْ قَرْيَةٍ مِّنْ نَّذِيْرٍ اِلاَّ قَالَ مُتْرَفُوْهَآ اِنَّا وَجَدْنَا اٰبَآءَنَا عَلٰٓى اُمَّةٍ وَّ اِنَّا عَلٰٓى اٰثَارِهِمْ مُّقْتَدُوْنَ قٰلَ اَوَلَوْ جِئْتُكُمْ بِاَهْدٰى مِمَّا وَجَدْتُّمْ عَلَيْهِ اٰبَآءَكُمْ ط قَالُوْٓا اِنَّا بِمَآ اُرْسِلْتُمْ بِهٖ كٰفِرُوْنَ۝

فَانْتَقَمْنَا مِنْهُمْ فَانْظُرْ كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُكَذِّبِيْنَ○

यानी, ऐसा ही होता रहा है कि जब कभी हमने किसी बस्ती में किसी डरानेवाले यानी पैग़म्बर को भेजा तो उस बस्ती के खाते-पीते लोगों ने यही कहा कि हमने अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया है और हम उन्हीं के क़दम-ब-क़दम चल रहे हैं। पैग़म्बर ने उनसे कहा कि अगर मैं उससे बेहतर बात बताऊँ जिसपर तुमने अपने बाप-दादा को पाया है तो क्या फिर भी आप बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाओगे ? उन्होंने जवाब दिया कि हम उस बात को नहीं मानते जो आप लेकर आए हो। इस तरह उन्होंने यह जवाब दिया तो हमने भी उनको ख़ूब सज़ा दी और अब देख लो कि हमारे हुक्मों के झुठलानेवालों का क्या अंजाम हुआ है।

(क़ुरआन, 43:23-25)

यह सब कुछ बयान करने के बाद अल्लाह तआला फ़रमाता है कि या तो बाप-दादा ही की पैरवी कर लो, या फिर हमारे ही हुक्म की पैरवी करो। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। मुसलमान होना चाहते हो तो सबको छोड़कर सिर्फ़ उस बात को मानो जो हमने बताई है—

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَا وَجَدْنَا عَلَيْهِ اٰبَآءَنَا ط اَوَلَوْ كَانَ الشَّيْطٰنُ يَدْعُوْهُمْ اِلٰى عَذَابِ السَّعِيْرِ○وَمَنْ يُّسْلِمْ وَجْهَهٗۤ اِلَى اللّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ط وَاِلَى اللّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ○وَمَنْ كَفَرَ فَلَا يَحْزُنْكَ كُفْرُهٗ ط اِلَيْنَا مَرْجِعُهُمْ فَنُنَبِّئُهُمْ بِمَا عَمِلُوْا ـ

यानी, और जब उनसे कहा गया कि उस हुक्म की पैरवी करो जो ख़ुदा ने भेजा है तो उन्होंने कहा कि नहीं, हम तो उस बात की पैरवी करेंगे जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। क्या वे अपने बाप-दादा की पैरवी करेंगे चाहे शैतान उनको जहन्नम

के अज़ाब ही की तरफ़ क्यों न बुलाता रहा हो ? जो कोई अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के सुपुर्द कर दे और नेकी करनेवाला हो उसने तो मज़बूत रस्सी थाम ली और आख़िरकार तमाम मामले ख़ुदा के हाथ में हैं। और जिसने उससे इनकार किया तो ऐ नबी, तुमको उसके इनकार से रंजीदा होने की ज़रूरत नहीं । वे सब हमारी तरफ़ वापिस आनेवाले हैं । फिर हम उन्हें उनके करतूतों का अंजाम दिखा देंगे । (क़ुरआन, 31:21–23)

(3) ग़ैरुल्लाह की इताअत

यह गुमराही के आने का दूसरा रास्ता था । तीसरा रास्ता क़ुरआन ने यह बताया है कि इनसान जब ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर दूसरे लोगों के हुक्म मानने लगता है और यह ख़याल करता है कि फ़लाँ शख़्स बड़ा आदमी है, उसकी बात पक्की होगी, या फ़लाँ शख़्स के हाथ में मेरी रोटी है, इसलिए उसकी बात माननी चाहिए, या फ़लाँ शख़्स बड़ा इख़तियारवाला है, इसलिए उसकी फ़रमाँबरदारी करनी चाहिए, या फ़लाँ साहब अपनी बद्दुआ से मुझे तबाह कर देंगे या अपने साथ जन्नत में ले जाएँगे, इसलिए जो वे कहें वही सही है, या फ़लाँ क़ौम बड़ी तरक़्क़ी कर रही है, उसके तरीक़े इख़तियार करने चाहिएँ, तो ऐसे शख़्स पर ख़ुदा की हिदायत का रास्ता बन्द हो जाता है । क़ुरआन में है—

وَإِنْ تُطِعْ أَكْثَرَ مَنْ فِي الْأَرْضِ يُضِلُّوكَ عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ

अगर तुमने उन बहुत-से लोगों की पैरवी की जो ज़मीन में रहते हैं तो वे तुमको ख़ुदा के रास्ते से भटका देंगे । (क़ुरआन, 6:116)

यानी आदमी सीधे रास्ते पर उस वक़्त हो सकता है जब उसका एक ख़ुदा हो। सैकड़ों-हज़ारों ख़ुदा जिसने बना लिए हों, और जो कभी इस ख़ुदा के कहे पर और कभी उस ख़ुदा के कहे पर चलता हो, वह रास्ता कहाँ पा सकता है ?

अब आपको मालूम हो गया होगा कि गुमराही के तीन बड़े-बड़े सबब हैं—

एक, नफ़्स और मन की बन्दगी,

दूसरे, बाप-दादा और ख़ानदान और क़बीले के रिवाजों की बन्दगी ।

तीसरे, आम तौर पर दुनिया के लोगों की बन्दगी, जिनमें दौलतमन्द और वक़्त के हाकिम लोग, बनावटी पेशवा और गुमराह क़ौमें, सब ही शामिल हैं ।

ये तीन बड़े-बड़े बुत हैं जो ख़ुदाई के दावेदार बने हुए हैं । जो शख़्स मुसलमान बनना चाहता हो उसको सबसे पहले इन तीनों बुतों को तोड़ना चाहिए । फिर वह हक़ीक़त में मुसलमान हो जाएगा । वरना जिसने ये तीनों बुत अपने दिल में बिठा रखे हों उसका ख़ुदा का बन्दा होना मुशकिल है । वह दिन में पचास वक़्त की नमाज़ें पढ़कर और दिखावे के रोज़े रखकर और मुसलमानों जैसी शक्ल बनाकर इनसानों को धोखा दे सकता है, ख़ुद अपने आपको भी धोखा दे सकता है कि मैं पक्का मुसलमान हूँ, मगर ख़ुदा को धोखा नहीं दे सकता ।

मुसलमानों की हालत

भाइयो ! आज मैंने आपके सामने जिन तीन बुतों का ज़िक्र किया है उनकी बन्दगी असली शिर्क है । आपने पत्थर के बुत छोड़ दिए, ईंट और चूने से बने हुए बुतख़ाने ख़त्म कर दिए, मगर सीनों में जो बुतख़ाने बने हुए हैं उनकी तरफ़ कम ध्यान दिया । सबसे ज़्यादा ज़रूरी, बल्कि मुसलमान होने के लिए पहली शर्त इन बुतों को छोड़ना है । यक़ीन कीजिए कि सारी दुनिया और ख़ुद इस हिन्दुस्तान में मुसलमान जिस क़द्र नुक़सान उठा रहे हैं, वह इन्हीं तीन बुतों की पूजा का नतीजा है । आपकी तबाही, आपकी ज़िल्लत और मुसीबत की जड़ यही तीन चीज़ें हैं जो आपने अभी मुझसे सुनी हैं । दुनिया में मुसलमानों की तादाद बे हद व हिसाब है, मगर शायद ही इन्हें कोई इज़्ज़त व इख़तियार हासिल है । इस हिन्दुस्तान में भी आप की तादाद अच्छी-ख़ासी है, मगर यहाँ आपका कोई वज़न नहीं । कुछ छोटी-छोटी क़ौमों का वज़न आपसे बढ़कर है। इसकी वजह पर भी आपने कभी ग़ौर किया ? इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि नफ़्स की बन्दगी, ख़ानदानी रिवाजों की बन्दगी और ख़ुदा के सिवा दूसरे इनसानों की बन्दगी ने आपकी ताक़त को अन्दर से खोखला कर दिया है ।

ज़ात-पात का फ़र्क़

आपमें राजपूत हैं, मुग़ल हैं, जाट हैं, अफ़गान हैं और बहुत-सी क़ौमें हैं। इस्लाम ने इन सब क़ौमों को एक क़ौम, एक-दूसरे का भाई, एक पक्की दीवार बनने के लिए कहा था, जिसकी ईंट से ईंट जुड़ी हुई हो। मगर आप अब भी वही पुराने जाहिली ख़यालात लिए हुए बैठे हैं। जिस तरह यहाँ के ग़ैर मुसलिमों में अलग-अलग गोत्र हैं। उसी तरह आपमें भी अब तक क़बीले-क़बीले अलग हैं। आपस में मुसलमानों की तरह शादी-ब्याह नहीं, एक-दूसरे से बिरादरी और भाईचारा नहीं। ज़बान से आप एक-दूसरे को मुसलमान भाई कहते हैं, मगर हक़ीक़त में आपके बीच वही सब भेद-भाव हैं, जो इस्लाम से पहले थे। इस भेद-भाव ने आपको एक मज़बूत दीवार नहीं बनने दिया, आपकी एक-एक ईंट अलग है। आप न मिलकर उठ सकते हैं और न मिलकर किसी मुसीबत का सामना कर सकते हैं। अगर इस्लाम की तालीम के मुताबिक़ आपसे कहा जाए कि तोड़ो इस भेद-भाव को और आपस में एक हो जाओ, तो आप क्या कहेंगे ? बस वही एक बात, यानी हमारे बाप-दादा से जो रिवाज चले आ रहे हैं उनको हम नहीं तोड़ सकते। इसका जवाब ख़ुदा की तरफ़ से क्या मिलता है ? बस यही कि आप न तोड़ो इन रिवाजों को, न छोड़ो जाहिलाना रस्मों की पैरवी को, हम भी तुमको टुकड़े-टुकड़े कर देंगे और तुम्हारी तादाद बहुत बड़ी होने के बावजूद तुमको रुसवा और बेइज़्ज़त करके दिखाएँगे।

विरासत में हक़-तलफ़ी

अल्लाह ने आपको हुक्म दिया था कि तुम्हारी विरासत में लड़के और लड़कियाँ सब शरीक हैं। आप इसका जवाब क्या देते हैं ? यह कि हमारे बाप-दादा के क़ानून में लड़के और लड़कियाँ शरीक नहीं हैं और यह कि हम ख़ुदा के क़ानून के बजाए बाप-दादा का क़ानून मानते हैं। ख़ुदा के लिए मुझे बताइए क्या इस्लाम इसी का नाम है ? आपसे कहा जाता है कि इस ख़ानदानी क़ानून को तोड़िए। आपमें से हर शख़्स कहता है कि जब सब तोड़ेंगे तो मैं भी तोड़ दूँगा, वरना अगर दूसरों ने लड़की को हिस्सा

न दिया और मैंने दे दिया तो मेरे घर की दौलत तो दूसरों के पास चली जाएगी, मगर दूसरे के घर की दौलत मेरे घर में न आएगी। ग़ौर कीजिए कि इस जवाब के क्या मानी हैं ? क्या ख़ुदा के क़ानून की इताअत इसी शर्त से की जाएगी कि दूसरे इताअत करें तो आप भी करेंगे ? कल आप कहेंगे कि दूसरे ज़िना करेंगे तो मैं भी करूँगा, दूसरे चोरी करेंगे तो मैं भी करूँगा। ग़रज़ दूसरे जब तक सब गुनाह न छोड़ेंगे मैं भी उस वक़्त तक सब गुनाह करता रहूँगा। बात यह है कि इस मामले में तीनों बुतों की इबादत हो रही है। नफ़्स की बन्दगी भी है, बाप-दादा की बन्दगी भी और मुशरिक क़ौमों की बन्दगी भी, और इन तीनों के साथ इस्लाम का दावा भी है।

यह सिर्फ़ दो मिसालें हैं, वरना आँखें खोलकर देखा जाए तो बेशुमार इसी क़िस्म के रोग आपके अन्दर फैले हुए दिखाई देंगे और इन सबमें आप यही देखेंगे कि कहीं एक बुत की इबादत है, कहीं दो बुतों की और कहीं तीनों बुतों की। जब ये बुत पूजे जा रहे हों और इनके साथ इस्लाम का दावा भी हो तो आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आपपर उन रहमतों की बारिश होगी, जिनका वायदा सच्चे मुसलमानों से किया गया है ?

ईमान की कसौटी

मुसलमान भाइयो! पिछले जुमे के ख़ुतबे में मैंने आपको बताया था कि क़ुरआन के अनुसार इनसान की गुमराही के तीन सबब हैं—एक यह कि वह ख़ुदा के क़ानून को छोड़कर अपने मन की ख़्वाहिशों का ग़ुलाम बन जाए। दूसरा यह कि ख़ुदाई क़ानून के मुक़ाबिले में अपने ख़ानदान के रस्म-रिवाज और बाप-दादा के तौर-तरीक़ों को तरजीह और प्राथमिकता दे। तीसरा यह कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) ने जो तरीक़ा बताया है उसको छोड़कर इनसानों की पैरवी करने लगे, चाहे वे इनसान ख़ुद उसकी अपनी क़ौम के बड़े लोग हों या ग़ैर क़ौमों के लोग।

मुसलमान की असली पहचान

मुसलमान की असली पहचान यह है कि वह इन तीनों बीमारियों से पाक हो। मुसलमान कहते ही उसको हैं जो ख़ुदा के सिवा किसी का बन्दा और रसूल (सल्ल०) के सिवा किसी का अनुयायी न हो। मुसलमान वह है जो सच्चे दिल से इस बात पर यक़ीन रखता हो कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) की तालीम सरासर हक़ है। इसके ख़िलाफ़ जो कुछ है वह बातिल है और इनसान के लिए दीन व दुनिया की भलाई जो कुछ भी है सिर्फ़ ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) की तालीम में है। इस बात पर पूरा यक़ीन जिस शख़्स को होगा वह अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में सिर्फ़ यह देखेगा कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का क्या हुक्म है, और जब उसे हुक्म मालूम हो जाएगा तो वह सीधी तरह से उसके आगे सिर झुका देगा। फिर चाहे उसका दिल कितना ही तिलमिलाए और ख़ानदान के लोग कितनी ही बातें बनाएँ और दुनियावाले कितनी ही मुख़ालिफ़त करें, वह उनमें से किसी की परवाह न करेगा, क्योंकि हर एक के लिए उसका साफ़ जवाब यही होगा कि मैं ख़ुदा का बन्दा हूँ, तुम्हारा बन्दा नहीं हूँ और मैं रसूल (सल्ल०) पर ईमान लाया हूँ, तुमपर ईमान नहीं लाया हूँ।

निफ़ाक़ की अलामतें

(1) नफ़्स की बंदगी

इसके बरख़िलाफ़ अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल का हुक्म यह है तो हुआ करे, मेरा दिल तो इसको नहीं मानता, मुझे तो इसमें नुक़सान नज़र आता है, इसलिए मैं ख़ुदा और रसूल की बात को छोड़कर अपनी राय पर चलूँगा, तो ऐसे शख़्स का दिल ईमान से ख़ाली होगा। वह मोमिन नहीं बल्कि मुनाफ़िक़ है कि ज़बान से तो कहता है कि मैं ख़ुदा का बन्दा और रसूल का अनुयायी हूँ, मग़र हक़ीक़त में अपने नफ़्स का बन्दा और अपनी राय का अनुयायी बना हुआ है।

(2) रस्म व रिवाज की पाबंदी

इसी तरह अगर कोई शख़्स यह कहता है कि ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) का हुक्म कुछ भी हो, मगर फ़लाँ बात तो बाप-दादा से होती चली आ रही है, उसको कैसे छोड़ा जा सकता है, या फ़लाँ क़ायदा तो मेरे ख़ानदान या बिरादरी में मुक़र्रर है, उसे कैसे तोड़ा जा सकता है, तो ऐसे शख़्स का शुमार भी मुनाफ़िक़ों में होगा, चाहे नमाज़ें पढ़ते-पढ़ते उसकी पेशानी पर कितना ही बड़ा गट्टा पड़ गया हो और ज़ाहिर में उसने कितनी ही दीनी सूरत बना रखी हो। इसलिए कि दीन की असल हक़ीक़त उसके दिल में उतरी ही नहीं। दीन रुकू और सजदे व रोज़े और हज का नाम नहीं है और न दीन इनसान की सूरत और उसके लिबास में होता है, बल्कि असल में दीन नाम है ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी का। जो शख़्स अपने मामले में ख़ुदा और रसूल की फ़रमाँबरदारी से इनकार करता है, उसका दिल हक़ीक़त में दीन से ख़ाली है। उसकी नमाज़ और उसका रोज़ा और उसकी शरअी और दीनी सूरत एक धोखे के सिवा कुछ नहीं।

(3). दूसरी क़ौमों की नक़्क़ाली

इसी तरह अगर कोई शख़्स ख़ुदा की किताब और उसके रसूल की हिदायत से बेपरवाह होकर कहता है कि फ़लाँ बात इसलिए अपनाई जाए कि वह अंग्रेज़ों में राएज है, और फ़लाँ बात इसलिए क़बूल की जाए कि फ़लाँ क़ौम उसकी वजह से तरक़्क़ी कर रही है, और फ़लाँ बात इसलिए मानी जाए कि फ़लाँ बड़ा आदमी ऐसा कहता है तो ऐसे शख़्स को भी

अपने ईमान की ख़ैर मनानी चाहिए। ये बातें ईमान के साथ जमा नहीं हो सकतीं। मुसलमान होना और मुसलमान रहना चाहते हो तो हर उस बात को उठाकर दीवार पर दे मारो जो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) की बात के ख़िलाफ़ हो। अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो इस्लाम का दावा तुम्हें शोभा नहीं देता। ज़बान से कहना कि हम ख़ुदा और रसूल को मानते हैं मगर अपनी ज़िन्दगी के मामलों में हर वक़्त दूसरों की बात के मुक़ाबिले में ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) की बात को रद्द करते रहना, न ईमान है, न इस्लाम; बल्कि इसका नाम मुनाफ़िक़त और कपट है।

क़ुरआन पाक के अठारहवें पारे में अल्लाह तआला ने साफ़-साफ़ लफ़्ज़ों में फ़रमा दिया है—

لَقَدْ اَنْزَلْنَا اٰیٰتٍ مُّبَیِّنٰتٍ ؕ وَاللّٰهُ یَهْدِیْ مَنْ یَّشَآءُ اِلٰی صِرَاطٍ مُّسْتَقِیْمٍ○ وَیَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالرَّسُوْلِ وَاَطَعْنَا ثُمَّ یَتَوَلّٰی فَرِیْقٌ مِّنْهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ؕ وَمَآ اُولٰٓئِكَ بِالْمُؤْمِنِیْنَ○ وَاِذَا دُعُوْٓا اِلَی اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ لِیَحْكُمَ بَیْنَهُمْ اِذَا فَرِیْقٌ مِّنْهُمْ مُّعْرِضُوْنَ○ وَاِنْ یَّكُنْ لَّهُمُ الْحَقُّ یَاْتُوْٓا اِلَیْهِ مُذْعِنِیْنَ ؕ اَفِیْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ اَمِ ارْتَابُوْٓا اَمْ یَخَافُوْنَ اَنْ یَّحِیْفَ اللّٰهُ عَلَیْهِمْ وَرَسُوْلُهٗ ؕ بَلْ اُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ○ اِنَّمَا كَانَ قَوْلَ الْمُؤْمِنِیْنَ اِذَا دُعُوْٓا اِلَی اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ لِیَحْكُمَ بَیْنَهُمْ اَنْ یَّقُوْلُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ○ وَمَنْ یُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَیَخْشَ اللّٰهَ وَیَتَّقْهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفَآئِزُوْنَ○

यानी, हमने खोल-खोलकर हक़ और बातिल का फ़र्क़ बतानेवाली आयतें उतार दी हैं। अल्लाह जिसको चाहता है इन आयतों के ज़रिए से सीधा रास्ता दिखा देता है। लोग कहते हैं कि हम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाए और हमने इताअत क़बूल की,

फिर इसके बाद इनमें से कुछ लोग इताअत से मुँह मोड़ जाते हैं, ऐसे लोग ईमानवाले नहीं हैं। और जब इनको अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाया जाता है; ताकि रसूल इनके मामलों में (ख़ुदा के क़ानून के मुताबिक़) फ़ैसला करे, तो इनमें से कुछ लोग मुँह मोड़ जाते हैं; अलबत्ता जब बात इनके मतलब की हो तो उसे मान लेते हैं। क्या इन लोगों के दिल में बीमारी है? या क्या ये शक में पड़े हुए हैं? या इनको यह डर है कि अल्लाह और उसका रसूल इनका हक़ मारेगा? बहरहाल वजह कुछ भी हो, ये लोग ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म करनेवाले हैं। हक़ीक़त में जो ईमानवाले हैं उनका तरीक़ा तो यह है कि जब उन्हें अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाया जाए, ताकि रसूल उनके मामलों का फ़ैसला करे तो वे कहें : हमने सुना और माना। ऐसे ही लोग कामयाबी पानेवाले हैं और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की पैरवी करेगा और अल्लाह से डरता रहेगा और उसकी नाफ़रमानी से बचेगा, बस वही कामयाब होगा। (क़ुरआन, 24:46–52)

इन आयतों में ईमान की जो तशरीह की गई है, उसपर ग़ौर कीजिए। असली ईमान यह है कि अपने आपको ख़ुदा की किताब और उसके रसूल (सल्ल०) की हिदायत के सुपुर्द कर दें। जो हुक्म वहाँ से मिले, उसके आगे सिर झुका दें और उसके मुक़ाबले में किसी की न सुनें—न अपने दिल की, न ख़ानदानवालों की और न दुनियावालों की। यह कैफ़ियत जिसमें पैदा हो जाए वही मोमिन और मुसलिम है और जो इससे ख़ाली हो उसकी हैसियत मुनाफ़िक़ से ज़्यादा नहीं।

अल्लाह की इताअत की कुछ मिसालें

(1) शराब का त्याग

आपने सुना होगा कि अरब में शराब पीने का कितना ज़ोर था। औरत और मर्द, जवान और बूढ़े सब शराब के रसिया थे, उनको दरअसल शराब से इश्क़-सा था। इसकी तारीफ़ों के गीत गाते थे और इसपर जानें देते थे। यह भी आपको मालूम होगा कि शराब की लत लग जाने के बाद इसका

छूटना कितना मुशकिल होता है। आदमी जान देना क़बूल कर लेता है मगर शराब छोड़ना क़बूल नहीं कर सकता। अगर शराबी को शराब न मिले तो उसकी हालत बीमार से बदतर हो जाती है, लेकिन आपने कभी सुना है कि जब क़ुरआन पाक में शराब हराम होने का हुक्म आया तो क्या हुआ? वही अरब जो शराब पर जान देते थे, इस हुक्म के सुनते ही उन्होंने अपने हाथ से शराब के मटके तोड़ डाले, मदीने की गलियों में शराब इस तरह बह रही थी जैसे बारिश का पानी बहता है। एक जगह कुछ लोग बैठे शराब पी रहे थे, जिस वक़्त उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर से एलान करनेवाले की आवाज़ सुनी कि शराब हराम कर दी गई तो जिस शख़्स का हाथ जहाँ था वहीं का वहीं रुक गया। जिसके मुँह से प्याला लगा हुआ था, उसने फ़ौरन उसको हटा लिया और फिर एक बूँद हलक़ में न जाने दी—यह है ईमान की शान। इसको कहते हैं ख़ुदा और रसूल की इताअत।

(2) इक़रारे जुर्म

आपको मालूम है कि इस्लाम में ज़िना की सज़ा कितनी सख़्त रखी गई है? नंगी पीठ पर सौ कोड़े। जिनकी कल्पना ही से आदमी के रोंगटे खड़े हो जाएँ... मगर आपने यह भी सुना है कि जिनके दिल में ईमान था उनकी क्या कैफ़ियत थी? एक शख़्स ज़िना कर बैठा। कोई गवाह न था, कोई अदालत तक पकड़कर ले जानेवाला न था, कोई पुलिस को ख़बर करनेवाला न था, सिर्फ़ दिल में ईमान था जिसने उस आदमी से कहा कि जब तूने ख़ुदा के क़ानून के ख़िलाफ़ अपने नफ़्स की ख़्वाहिश पूरी की है तो अब जो सज़ा ख़ुदा ने इस जुर्म के लिए मुक़र्रर की है उसको भुगतने के लिए तैयार हो जा। चुनाँचे वह शख़्स ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर होता है और अर्ज़ करता है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने ज़िना किया है, मुझे सज़ा दीजिए। आप मुँह फेर लेते हैं; तो फिर दूसरी तरफ़ आकर यही बात कहता है, आप फिर मुँह फेर लेते हैं तो फिर सामने आकर सज़ा की दरख़्वास्त करता है कि जो मैंने किया है उसकी सज़ा मुझे दी जाए—यह है ईमान। जिसके दिल में ईमान मौजूद है, उसके लिए नंगी पीठ पर सौ कोड़े खाना बल्कि संगसार तक कर दिया जाना आसान है; मगर नाफ़रमान बनकर ख़ुदा के सामने हाज़िर होना मुशकिल।

(3) ताल्लुक़ ख़त्म कर लेना

आपको यह भी मालूम है कि इनसान के लिए दुनिया में अपने रिश्तेदारों से बढ़कर कोई प्यारा नहीं होता, ख़ासकर बाप, भाई, बेटे तो इतने प्यारे होते हैं कि उनपर सब कुछ क़ुरबान कर देना आदमी गवारा कर लेता है। मगर आप ज़रा बद्र और उहुद की लड़ाइयों पर ग़ौर कीजिए कि इनमें कौन किसके ख़िलाफ़ लड़ने गया था? बाप मुसलमानों की फ़ौज में है तो बेटा काफ़िरों की फ़ौज में, या बेटा इस तरफ़ है तो बाप उस तरफ़, एक भाई इधर तो दूसरा भाई उधर। क़रीब से क़रीब रिश्तेदार एक-दूसरे के मुक़ाबिले में आए हैं और इस तरह लड़े हैं कि गोया ये एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं और यह जोश इनमें कुछ रुपये-पैसे या ज़मीन के लिए नहीं भड़का था, न कोई निजी बैर था, बल्कि सिर्फ़ इस वजह से वे अपने ख़ून और अपने गोश्त-पोस्त के ख़िलाफ़ लड़ गए कि वे ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) पर बाप, बेटे, भाई और सारे ख़ानदान को क़ुरबान कर देने की ताक़त रखते थे।

(4) पुराने रस्मो रिवाज से तौबा

आपको यह भी मालूम है कि अरब में जितने पुराने रस्म-रिवाज थे, इस्लाम ने क़रीब-क़रीब उन सभी को तोड़ डाला था। सबसे बड़ी चीज़ तो बुतपरस्ती थी जिसका रिवाज सैकड़ों वर्ष से चला आ रहा था। इस्लाम ने कहा कि इन बुतों को छोड़ दो। शराब, ज़िना, जुआ, चोरी और डाका अरब में मामूली बात थी, इस्लाम ने कहा कि इन सबको छोड़ दो। औरतें अरब में खुली फिरती थीं। इस्लाम ने हुक्म दिया कि परदा करो। औरतों को विरासत में कोई हिस्सा न दिया जाता था। इस्लाम ने कहा कि इनका भी विरासत में हिस्सा है। लैपालक को वही हैसियत दी जाती थी जो सगी औलाद की होती है। इस्लाम ने कहा कि वह सगी औलाद की तरह नहीं है। बल्कि लैपालक अगर अपनी बीवी को छोड़ दे तो उससे निकाह किया जा सकता है। ग़रज़ कि कौन-सी पुरानी रस्म ऐसी थी जिसको तोड़ने का हुक्म इस्लाम ने न दिया हो। मगर आपको मालूम है कि जो लोग ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाए थे उनका क्या तर्ज़े अमल था? सदियों से जिन बुतों को वे और उनके बाप-दादा सज्दा करते और नज़रें चढ़ाया करते थे, उनको इन ईमानवालों ने अपने हाथों से तोड़ा। सैकड़ों साल से जो ख़ानदानी

रस्में चली आ रही थीं उन सबको उन्होंने मिटाकर रख दिया। जिन चीज़ों को वे पाक समझते थे, ख़ुदा का हुक्म पाकर उन्हें पाँवों तले रौंद डाला। जिन चीज़ों को वे नाजायज़ समझते थे, ख़ुदा का हुक्म आते ही उनको जायज़ समझने लगे। जो चीज़ें सदियों से पाक समझी जाती थीं वे एकदम नापाक हो गईं। और जो सदियों से नापाक ख़याल की जाती थीं, वे यकायक पाक हो गईं। कुफ़्र के जिन तरीक़ों में लज़्ज़त और फ़ायदे के सामान थे, ख़ुदा का हुक्म पाते ही उनको छोड़ दिया गया और इस्लाम के जिन हुक्मों की पाबन्दी इनसान पर मुशकिल गुज़रती है उन सबको ख़ुशी-ख़ुशी क़बूल कर लिया गया। इसका नाम है ईमान और इसको कहते हैं इस्लाम। अगर अरब के लोग उस वक़्त कहते कि फ़लाँ बात हम इसलिए नहीं मानते कि हमारा इसमें नुक़सान है और फ़लाँ बात को हम इसलिए नहीं छोड़ते कि इसमें हमारा फ़ायदा है, और फ़लाँ काम को तो हम ज़रूर करेंगे क्योंकि बाप-दादा से यही होता चला आया है, और फ़लाँ बातें रूमियों की हमें पसन्द हैं और फ़लाँ ईरानियों की हमें अच्छी लगती हैं। ग़रज़ अरब के लोग इसी तरह इस्लाम की एक-एक बात को रद्द कर देते, तो आप समझ सकते हैं कि आज दुनिया में कोई मुसलमान न होता।

ख़ुदा की ख़ुशनूदी का रास्ता

भाइयो! क़ुरआन में आया है—

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ○

यानी, नेकी का मर्तबा तुमको नहीं मिल सकता जब तक कि तुम अल्लाह की राह में वे चीज़ें ख़र्च न करो, जो तुमको प्यारी हैं।
(क़ुरआन, 3:92)

बस यही आयत इस्लाम और ईमान की जान है। इस्लाम की असल शान यही है कि जो चीज़ें आपको प्यारी हैं, उनको ख़ुदा की ख़ुशी पर क़ुरबान कर दें। ज़िन्दगी के सारे मामलों में आप देखते हैं कि ख़ुदा का हुक्म एक तरफ़ बुलाता है और नफ़्स की ख़्वाहिशें दूसरी तरफ़ बुलाती हैं। ख़ुदा एक काम का हुक्म देता है, नफ़्स कहता है कि इसमें तो तकलीफ़

है या नुक़सान। ख़ुदा एक बात से रोकता है, नफ़्स कहता है कि यह तो बड़ी मज़ेदार चीज़ है, यह तो बड़े फ़ायदे की चीज़ है। एक तरफ़ ख़ुदा की ख़ुशनूदी होती है और दूसरी तरफ़ एक दुनिया की दुनिया खड़ी होती है। ग़रज़ ज़िन्दगी में हर-हर क़दम पर इनसान को दो रास्ते मिलते हैं। एक रास्ता इस्लाम का है और दूसरा कुफ़्र और निफ़ाक़ का। जिसने दुनिया की हर चीज़ को ठुकरा कर ख़ुदा के हुक्म के आगे सिर झुका दिया उसने इस्लाम का रास्ता इख़्तियार किया और जिसने ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर अपने दिल की या दुनिया की ख़ुशी पूरी की, उसने कुफ़्र या निफ़ाक़ का रास्ता इख़्तियार किया।

आज का मुसलमान

आज लोगों का हाल यह है कि इस्लाम की जो बात आसान है उसे तो बड़ी ख़ुशी के साथ क़बूल करते हैं, मगर जहाँ कुफ़्र और इस्लाम का असली मुक़ाबिला होता है वहीं से रुख़ बदल देते हैं, इस्लाम के बड़े-बड़े दावेदारों में भी यह कमज़ोरी मौजूद है। वे इस्लाम-इस्लाम बहुत पुकारेंगे, उसकी तारीफ़ करते-करते उनकी ज़बान ख़ुश्क हो जाएगी, उसके लिए कुछ दिखावे के काम भी कर देंगे। मगर उनसे कहिए कि यह इस्लाम जिसकी आप इतनी तारीफ़ कर रहे हैं, आइए ज़रा इसके क़ानून को हम-आप ख़ुद अपने ऊपर लागू करें तो वे फ़ौरन कहेंगे कि इसमें फ़लाँ मुशकिल है और फ़लाँ कठिनाई है और इस वक़्त तो इसको बस रहने ही दीजिए। मतलब यह कि इस्लाम एक ख़ूबसूरत खिलौना है, इसको बस ताक़ पर रखिए और दूर से बैठकर इसकी तारीफ़ें किए जाइए, मगर इसे ख़ुद अपनी ज़ात पर और अपने घरवालों और रिश्तेदारों पर और अपने कारोबार और मामलों पर एक क़ानून की हैसियत से लागू करने का नाम तक न लीजिए। यह हमारे आजकल के दीनदारों का हाल है। अब दुनियादारों का तो ज़िक्र ही बेकार है। इसी का नतीजा है कि न अब नमाज़ों में वह असर है जो कभी था, न रोज़ों में है, न क़ुरआन पढ़ने में और न शरीअत की ज़ाहिरी पाबंदियों में। इसलिए कि जब रूह ही मौजूद नहीं तो निरा बेजान जिस्म क्या करामत दिखाएगा?

इस्लाम की असली कसौटी

'मुसलमान भाइयो! अल्लाह तआला अपनी किताब पाक में फ़रमाता है—

قُلْ إِنَّ صَلَوتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلَّهِ رَبِّ الْعَلَمِينَ ۝ لَا شَرِيكَ لَهُ ۚ وَبِذَلِكَ أُمِرْتُ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُسْلِمِينَ ۝

> यानी, (ऐ मुहम्मद सल्ल०) कहो, मेरी नमाज़ और मेरी इबादत के सारे तरीक़े और मेरा जीना और मेरा मरना सब कुछ अल्लाह के लिए है जो सारी कायनात का मालिक है, उसका कोई शरीक नहीं और इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और सबसे पहले मैं उसकी फ़रमाँबरदारी में सिर झुकानेवाला हूँ।
>
> (क़ुरआन, 6:162–163)

इस आयत की तशरीह नबी (सल्ल०) के इस इरशाद से होती है—

مَنْ اَحَبَّ لِلّٰهِ وَاَبْغَضَ لِلّٰهِ وَاَعْطٰی لِلّٰهِ وَمَنَعَ لِلّٰهِ فَقَدِ اسْتَكْمَلَ الْإِيْمَانَ.

> जिसने किसी से दोस्ती व मुहब्बत की तो अल्लाह के लिए, और दुशमनी की तो अल्लाह के लिए, और किसी को दिया तो अल्लाह के लिए और किसी से रोका तो अल्लाह के लिए, उसने अपने ईमान को पूरा कर लिया, यानी वह पूरा मोमिन हो गया।

अब जो आयत मैंने आपके सामने पेश की है, उससे मालूम होता है कि इस्लाम का तक़ाज़ा यह है कि इनसान अपनी बन्दगी और अपने जीने और मरने को सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ालिस कर ले और अल्लाह के सिवा किसी को इसमें शरीक न करे यानी न उसकी बन्दगी अल्लाह के सिवा किसी और के लिए हो और न उसका जीना और मरना।

इसकी जो तशरीह नबी (सल्ल०) की ज़बान से मैंने आपको सुनाई है,

उससे मालूम होता है कि आदमी की मुहब्बत और दुशमनी और अपनी दुनियवी ज़िन्दगी के मामलों में उसका लेन-देन सिर्फ़ ख़ुदा के लिए होना ईमान का ऐन तक़ाज़ा है। इसके बग़ैर ईमान ही पूरा नहीं हुआ, ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खुल सकना तो दूर की बात है। जितनी कमी इस मामले में होगी, उतनी ही कमी आदमी के ईमान में होगी और जब इस हैसियत से आदमी पूरे तौर पर अल्लाह का हो जाए तब कहीं उसका ईमान मुकम्मल होता है।

कुछ लोग यह समझते हैं कि इस क़िस्म की चीज़ें सिर्फ़ ऊँचे-ऊँचे रुतबों का दरवाज़ा खोलती हैं, वरना ईमान और इस्लाम के लिए इनसान के अन्दर यह कैफ़ियत पैदा होना शर्त नहीं है। यानी दूसरे लफ़्ज़ों में इस कैफ़ियत के बिना भी इनसान मोमिन व मुसलिम हो सकता है, मगर यह एक ग़लतफ़हमी है और इस ग़लतफ़हमी के पैदा होने की वजह यह है कि आम तौर पर लोग फ़िक़्ही और क़ानूनी इस्लाम और उस हक़ीक़ी इस्लाम में जो अल्लाह के यहाँ मोतबर है, फ़र्क़ नहीं करते।

क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़

क़ानूनी इस्लाम

फ़िक़्ही और क़ानूनी इस्लाम में आदमी के दिल का हाल नहीं देखा जाता और न ही देखा जा सकता, बल्कि सिर्फ़ उसके ज़बानी इक़रार को और इस चीज़ को देखा जाता है कि वह अपने अन्दर उन ज़रूरी निशानियों को ज़ाहिर करता है या नहीं, जो ज़बानी इक़रार की पुख़्तगी के लिए ज़रूरी हैं। अगर किसी शख़्स ने ज़बान से अल्लाह और रसूल और क़ुरआन और आख़िरत और ईमान की दूसरी बातों को मानने का इक़रार कर लिया और इसके बाद ज़रूरी शर्तें भी पूरी कर दीं, जिनसे उसके मानने का सबूत मिलता है, तो वह इस्लाम के दायरे में शामिल कर लिया जाएगा और सारे मामले उसके साथ मुसलमान समझकर किए जाएँगे, लेकिन यह चीज़ सिर्फ़ दुनिया के लिए है और दुनियवी हैसियत से वह क़ानूनी और तमद्दुनी बुनियाद जुटाती है जिसपर मुसलिम सोसाइटी की तामीर की गई है। इसका हासिल इसके सिवा कुछ नहीं है कि ऐसे इक़रार के साथ जितने लोग मुसलिम

सोसाइटी में दाख़िल हों, वे सब मुसलमान माने जाएँ, इनमें से किसी को काफ़िर न ठहराया जाए, इनको एक-दूसरे पर शरई, क़ानूनी, अख़लाक़ी और समाजी हक़ हासिल हों, उनके बीच शादी-ब्याह के ताल्लुक़ात क़ायम हों, जायदाद तक़सीम हो और दूसरे तमद्दुनी रवाबित वुजूद में आएँ।

हक़ीक़ी इस्लाम

लेकिन आख़िरत में इनसान की नजात और उसका मुसलिम व मोमिन क़रार दिया जाना और अल्लाह के मक़बूल बन्दों में गिना जाना इस क़ानूनी इक़रार पर मुनहसर नहीं है, बल्कि वहाँ असल चीज़ आदमी का क़ल्बी इक़रार, उसके दिल का झुकाव और उसका राज़ी-ख़ुशी अपने आपको पूरे तौर पर ख़ुदा के हवाले कर देना है। दुनिया में जो ज़बानी इक़रार किया जाता है, वह तो सिर्फ़ शरई क़ाज़ी के लिए और आम इनसानों और मुसलमानों के लिए है, क्योंकि वे सिर्फ़ ज़ाहिर ही को देख सकते हैं। मगर अल्लाह आदमी के दिल को और उसके बातिन को देखता है और उसके ईमान को नापता है। उसके यहाँ आदमी को जिस हैसियत से जाँचा जाएगा, वह यह है कि क्या उसका जीना और मरना और उसकी वफ़ादारियाँ और उसकी फ़रमाँबरदारी व बन्दगी और उसकी ज़िन्दगी का पूरा कारनामा अल्लाह के लिए था या किसी और के लिए? अगर अल्लाह के लिए था तो वह मुसलिम और मोमिन क़रार पाएगा, और अगर किसी और के लिए था तो न वह मुसलिम होगा, न मोमिन। इस हैसियत से जो जितना कच्चा निकलेगा, उतना ही उसका ईमान और इस्लाम कच्चा होगा, भले ही दुनिया में उसकी गिनती बड़े से बड़े मुसलमानों में होती रही हो और उसे कितने ही बड़े दर्जे दिए गए हों। अल्लाह के यहाँ क़द्र सिर्फ़ इस चीज़ की है कि जो कुछ उसने आपको दिया है, वह सब कुछ आपने उसकी राह में लगा दिया या नहीं। अगर आपने ऐसा कर दिया तो आपको वही हक़ दिया जाएगा जो वफ़ादारों और बन्दगी के हक़ अदा करनेवालों को दिया जाता है। और अगर आपने किसी चीज़ को अल्लाह की बन्दगी से अलग करके रखा तो आपका यह इक़रार कि आप मुसलिम हुए यानी यह कि आपने अपने आपको बिलकुल ख़ुदा के हवाले कर दिया, सिर्फ़ एक झूठा इक़रार होगा जिससे दुनिया के लोग धोखा खा सकते हैं, जिससे धोखा खाकर

मुसलिम सोसायटी आपको अपने अन्दर जगह दे सकती है, जिससे दुनिया में आपको मुसलमानों के से सारे हुक़ूक़ मिल सकते हैं, लेकिन इससे धोखा खाकर अल्लाह अपने यहाँ आपको वफ़ादारों में जगह नहीं दे सकता।

यह क़ानूनी और हक़ीक़ी इस्लाम का फ़र्क़ जो मैंने आपके सामने बयान किया है, अगर आप इसपर ग़ौर करें तो आपको मालूम होगा कि इसके नतीजे सिर्फ़ आख़िरत ही में अलग-अलग नहीं होंगे, बल्कि दुनिया में भी एक बड़ी हद तक अलग-अलग हैं। दुनिया में जो मुसलमान पाए गए हैं या आज पाए जाते हैं, इन सबको दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है—

मुसलमानों की दो क़िस्में

(1) जुज़वी (आंशिक) मुसलमान

एक क़िस्म के मुसलमान वे जो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) का इक़रार करके इस्लाम को अपना मज़हब समझकर मान लें, मगर अपने इस मज़हब को अपनी कुल ज़िन्दगी का सिर्फ़ एक हिस्सा और एक शोबा ही बनाकर रखें। इस ख़ास हिस्से और शोबे में इस्लाम के साथ अक़ीदत हो, इबादत गुज़ारियाँ हों, तसबीह व मुसल्ला हो, ख़ुदा का ज़िक्र हो, खाने-पीने और कुछ समाजी मामलों में परहेज़गारियाँ हों और वह सब कुछ हो जिसे मज़हबी काम और तरीक़ा कहा जाता है, मगर इस शोबे के सिवा उनकी ज़िन्दगी के तमाम दूसरे पहलू उनके मुसलिम होने की हैसियत से अलग हों। वे मुहब्बत करें तो अपने नफ़्स या अपने मफ़ाद या अपने मुल्क व क़ौम या किसी और की ख़ातिर करें। वे दुशमनी करें और किसी से जंग करें तो वह भी ऐसे ही किसी दुनियवी या नफ़्सानी ताल्लुक़ की बिना पर करें। उनके कारोबार, उनके लेन-देन, उनके मामले और ताल्लुक़ात, उनका अपने बाल-बच्चों, अपने ख़ानदान, अपनी सोसायटी और अपने मामला करनेवाले लोगों के साथ बरताव सबका सब एक बड़ी हद तक दीन से आज़ाद और दुनियवी हैसियतों पर आधारित हो। एक ज़मींदार की हैसियत से, एक व्यापारी की हैसियत से, एक हुक्मराँ की हैसियत से, एक सिपाही की हैसियत से, एक पेशेवर की हैसियत से उनकी अपनी एक मुस्तक़िल हैसियत हो, जिसका उनके मुसलमान होने की हैसियत से कोई ताल्लुक़

न हो। फिर इस क़िस्म के लोग मिलकर इजतिमाई तौर पर जो तमद्दुनी, तालीमी और सियासी इदारे क़ायम करें, वे भी उनके मुसलमान होने की हैसियत से चाहे बहुत कम मुतास्सिर हों या जुड़े हों, लेकिन सच तो यह है कि उनको इस्लाम से कोई ताल्लुक़ न हो।

(2) पूरे मुसलमान

दूसरी क़िस्म के मुसलमान वे हैं जो अपनी पूरी शख़सियत को और अपने सारे वुजूद को इस्लाम के अन्दर पूरी तरह दे दें। उनकी सारी हैसियतें उनके मुसलमान होने की हैसियत में गुम हो जाएँ। वे बाप हों तो मुसलमान की हैसियत से, बेटे हों तो मुसलमान होने की हैसियत से, शौहर या बीवी हों तो मुसलमान की हैसियत से, व्यापारी, ज़मींदार, मज़दूर, मुलाज़िम या पेशेवर हों तो मुसलमान की हैसियत से। उनके जज़बे, उनकी ख़्वाहिशें, उनके नज़रियात, उनके ख़यालात उनकी राएँ, उनकी नफ़रत और मुहब्बत, उनकी पसन्द और नापसन्द सब कुछ इस्लाम के ताबे हो। उनके दिल व दिमाग़ पर, उनकी आँखों और कानों पर, उनके पेट और उनकी शर्मगाहों पर और उनके हाथ-पाँव और उनके जिस्म व जान पर इस्लाम का पूरा क़बज़ा हो। न उनकी मुहब्बत इस्लाम से आज़ाद हो, न दुशमनी। जिससे मिलें तो इस्लाम के लिए मिलें और जिससे लड़ें तो इस्लाम के लिए लड़ें। किसी को दें तो इसलिए दें कि इस्लाम का तक़ाज़ा यही है कि उसे दिया जाए और किसी से रोकें तो इसलिए रोकें कि इस्लाम यही कहता है कि उससे रोका जाए और उनका यह तरीक़ा सिर्फ़ उनकी निजी और इनफ़िरादी ज़िन्दगी तक ही न हों, बल्कि उनका सामूहिक और इजतिमाई जीवन भी सरासर इस्लाम की बुनियाद ही पर क़ायम हो। एक जमाअत की हैसियत से उनकी हस्ती सिर्फ़ इस्लाम के लिए क़ायम हो और उनका सारा सामूहिक बरताव इस्लाम के उसूलों पर ही मबनी हो।

ख़ुदा का मतलूब मुसलमान

ये दो क़िस्म के मुसलमान, हक़ीक़त में बिलकुल एक-दूसरे से अलग हैं, चाहे क़ानूनी हैसियत से दोनों एक ही उम्मत में शामिल हों और दोनों के लिए मुसलमान लफ़्ज़ समान रूप से इस्तेमाल किया जाता हो। पहली

क़िस्म के मुसलमानों का कोई कारनामा इस्लामी तारीख़ में ज़िक्र के क़ाबिल या फ़ख़्र के क़ाबिल नहीं है। उन्होंने हक़ीक़त में कोई ऐसा काम नहीं किया है, जिसने दुनिया की तारीख़ पर कोई इस्लामी नक़्श छोड़ा हो। ज़मीन ने ऐसे मुसलमानों का बोझ कभी महसूस नहीं किया है। इस्लाम का अगर पतन हुआ है तो ऐसे ही लोगों की बदौलत हुआ है। ऐसे ही मुसलमानों की ज़्यादती मुसलिम सोसायटी में हो जाने का नतीजा इस शक्ल में निकला कि दुनिया के निज़ामे ज़िन्दगी की बागें कुफ़्र के क़बज़े में चली गईं और मुसलमान उसके मातहत रहकर सिर्फ़ एक महदूद मज़हबी ज़िन्दगी की आज़ादी ही को काफ़ी समझने लगे। अल्लाह को ऐसे मुसलमान हरगिज़ नहीं चाहिए थे। उसने अपने नबियों को दुनिया में इसलिए नहीं भेजा था, न अपनी किताबें इसलिए उतारी थीं कि सिर्फ़ इस तरीक़े के मुसलमान दुनिया में बना डाले जाएँ। दुनिया में ऐसे मुसलमानों के न होने से किसी हक़ीक़ी क़द्र व क़ीमत रखनेवाली चीज़ की कमी न थी, जिसे पूरा करने के लिए वह्य व नुबुव्वत के सिलसिले को जारी करने की ज़रूरत पेश आती। हक़ीक़त में अल्लाह को जिस तरह के मुसलमान चाहिएँ, जिन्हें तैयार करने के लिए नबी भेजे गए और किताबें उतरी हैं और जिन्होंने इस्लामी नुक़्तए नज़र से भी कोई क़ाबिले क़द्र काम किया है या आज कर सकते हैं, वे सिर्फ़ दूसरी ही क़िस्म के मुसलमान हैं।

हक़ीक़ी पैरवी ग़लबे का सबब है

यह चीज़ सिर्फ़ इस्लाम ही के लिए ख़ास नहीं है, बल्कि दुनिया में किसी मसलक का झण्डा भी ऐसी पैरवी करनेवालों के हाथों कभी बुलंद नहीं हुआ है, जिन्होंने अपने मसलक के इक़रार और उसके उसूलों की पाबन्दी को अपनी कुल ज़िन्दगी के साथ सिर्फ़ ज़मीमा (परिशिष्ट) बनाकर रखा हो और जिनका जीना और मरना अपने मसलक के सिवा किसी और चीज़ के लिए हो। आज भी आप देख सकते हैं कि एक मसलक के हक़ीक़ी और सच्ची पैरवी करनेवाले सिर्फ़ वही लोग होते हैं जो दिल व जान से उसके वफ़ादार हैं, जिन्होंने अपनी पूरी शख़सियत को उसमें गुम कर दिया है और जो अपनी किसी चीज़ को, यहाँ तक कि अपनी जान और अपनी

औलाद तक को, उसके मुक़ाबिले में अज़ीज़ नहीं रखते। दुनिया का हर मसलक ऐसे ही पैरवी करनेवालों को माँगता है और अगर किसी मसलक को ग़लबा नसीब हो सकता है, तो वह सिर्फ़ ऐसी पैरवी करनेवालों की बदौलत हो सकता है।

मुसलमान ख़ालिस अल्लाह का वफ़ादार

अलबत्ता इस्लाम में और दूसरे मसलकों में फ़र्क़ यह है कि दूसरे मसलक अगर इनसानों से इस तरह की फ़नाइयत और फ़िदाइयत और वफ़ादारी माँगते हैं, तो यह हक़ीक़त में इनसान पर उनका हक़ नहीं है, बल्कि यह उनका इनसान से एक बेजा मुतालबा है। इसके ख़िलाफ़ इस्लाम अगर इनसान से इसकी माँग करता है तो यह उसका ऐन हक़ है। वे जिन चीज़ों के लिए इनसान से कहे कि तू अपने आपको और अपनी ज़िन्दगी को और अपनी पूरी शख़सियत को उनपर तज दे, उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जिसका हक़ीक़त में इनसान पर यह हक़ हो कि उसकी ख़ातिर इनसान अपनी किसी चीज़ को क़ुरबान करे। लेकिन इस्लाम जिस ख़ुदा के लिए इनसान से यह क़ुरबानी माँगता है, वह हक़ीक़त में इसका हक़ रखता है कि उसपर सब कुछ क़ुरबान कर दिया जाए। आसमान और ज़मीन में जो कुछ है, अल्लाह का है। इनसान ख़ुद अल्लाह का है, जो कुछ इनसान के पास है, जो कुछ इनसान के अन्दर है, सब अल्लाह का है और जिन चीज़ों से इनसान दुनिया में काम लेता है, वे सब भी अल्लाह की हैं। इसलिए इनसाफ़ का यही तक़ाज़ा है और अक़्ल का भी यही तक़ाज़ा है कि जो कुछ अल्लाह का है, वह अल्लाह ही के लिए हो, दूसरों के लिए या ख़ुद अपने फ़ायदे और अपने नफ़्स की पसन्द के लिए इनसान जो क़ुरबानी भी करता है, वह दरअसल एक ख़ियानत है, अलावा इसके कि वह ख़ुदा की इजाज़त से हो, और ख़ुदा के लिए जो क़ुरबानी करता है, हक़ीक़त में वह हक़ का अदा करना है।

लेकिन इस पहलू से हटकर भी मुसलमानों के लिए उन लोगों के तरीक़ों में एक बड़ा सबक़ है जो अपने झूठे मसलकों के लिए और अपने नफ़्स के झूठे माबूदों के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान कर रहे हैं और उस इसतिक़ामत

का सबूत दे रहे हैं, जिसकी नज़ीर मुशकिल ही से इनसानी तरीख़ों में मिलती है। कितनी अजीब बात होगी अगर बातिल के लिए इनसानों से ऐसी कुछ फ़िदाइयत और फ़नाइयत ज़हूर में आए और हक़ के लिए उसका हज़ारवाँ हिस्सा भी न हो सके।

नफ़्स की जाँच

ईमान व इस्लाम की यह कसौटी जो इस आयत और इस हदीस में बयान हुई है, मैं चाहता हूँ कि हम सब अपने आपको इसपर परखकर देखें और इसकी रौशनी में अपने को जाँचें। अगर आप कहते हैं कि आपने इस्लाम क़बूल किया और ईमान ले आए तो देखिए कि क्या सचमुच में आपका जीना और मरना ख़ुदा के लिए है? क्या आप इसी लिए जी रहे हैं और आपके दिल व दिमाग़ की सारी क़ाबिलियतें, आपके जिस्म और जान की सारी ताक़तें, आपका वक़्त और आपकी मेहनतें क्या इसी कोशिश में लग रही हैं कि ख़ुदा की मरज़ी आपके हाथों पूरी हो और आपके ज़रिए से वह काम अंजाम पाए जो ख़ुदा अपनी मुसलिम उम्मत से लेना चाहता है? फिर क्या आपने अपनी इताअत और बन्दगी को ख़ुदा ही के लिए ख़ास कर दिया है? क्या नफ़्स की बन्दगी, ख़ानदान की, बिरादरी की, दोस्तों की, सोसायटी की और हुकूमत की बन्दगी, आपकी ज़िन्दगी से बिलकुल ख़ारिज हो चुकी है? क्या आपने अपनी पसन्द और नापसन्द को पूरी तरह अल्लाह की ख़ुशी के अधीन कर दिया है? फिर देखिए कि आप वाक़ई जिससे मुहब्बत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? जिससे नफ़रत करते हैं, अल्लाह के लिए करते हैं? और इस नफ़रत और मुहब्बत में आपकी नफ़्सानियत का कोई हिस्सा शामिल नहीं है? फिर क्या आपका देना और रोकना भी ख़ुदा के लिए हो चुका है? अपने पेट और अपने नफ़्स समेत दुनिया में आप जिसको जो कुछ दे रहे हैं क्या इसलिए दे रहे हैं कि अल्लाह ने उसका हक़ मुक़र्रर किया है और उसको देने से सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी आपको मतलूब है? और इसी तरह जिससे आप जो कुछ रोक रहे हैं, वह भी इसी लिए रोक रहे हैं कि अल्लाह ने उसे रोकने का हुक्म दिया है और उसके रोकने में आपको अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल होने की तमन्ना है? अगर आप यह कैफ़ियत अपने अन्दर पाते हैं तो अल्लाह का

शुक्र अदा कीजिए कि उसने आप पर ईमान की नेमत पूरी कर दी, और अगर इस हैसियत से आप अपने अन्दर कमी महसूस करते हैं तो सारी फ़िक्रें छोड़कर बस इसी कमी को पूरा करने की फ़िक्र कीजिए और तमाम कोशिशों और मेहनतों को इसी पर केन्द्रित कर दीजिए, क्योंकि इसी कमी के पूरा होने पर दुनिया में आपकी भलाई और आख़िरत में आपकी निजात का दारोमदार है। आप दुनिया में चाहे कुछ भी हासिल कर लें, उसके हुसूल से उस नुक़सान की तलाफ़ी नहीं हो सकती जो इस कमी की बदौलत आपको पहुँचेगा। लेकिन अगर यह कमी आप ने पूरी कर ली तो चाहे आपको दुनिया में कुछ हासिल न हो, फिर भी आप घाटे में न रहेंगे।

यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए नहीं है कि इसपर आप दूसरों को परखें और उनके मोमिन या मुनाफ़िक़ और मुसलिम या काफ़िर होने का फ़ैसला करें। बल्कि यह कसौटी इस ग़रज़ के लिए है कि आप उसपर ख़ुद अपने आपको परखें और आख़िरत की अदालत में जाने से पहले अपना खोट मालूम करके यहीं उसे दूर करने की फ़िक्र करें। आपको फ़िक्र इस बात की न होनी चाहिए कि दुनिया में मुफ़ती और क़ाज़ी आपको क्या क़रार देते हैं, बल्कि इसकी होनी चाहिए कि 'अह्कमुल हाकिमीन' और 'आलिमुल ग़ैबि वश्शहादति' आपको क्या क़रार देगा। आप इसपर मुतमइन न हों कि यहाँ आपका नाम मुसलमानों के रजिस्टर में लिखा है, फ़िक्र इस बात की कीजिए कि अल्लाह के दफ़्तर में आप क्या लिखे जाते हैं? सारी दुनिया भी आपको इस्लाम और ईमान की सनद दे दे तो कुछ हासिल नहीं। फ़ैसला जिस ख़ुदा के हाथ में है उसके यहाँ मुनाफ़िक़ के बजाए मोमिन, नाफ़रमान के बजाए फ़रमाँबरदार और बेवफ़ा की जगह वफ़ादार क़रार पाना असल कामयाबी है।

ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी किसलिए ?

मुसलमान भाइयो! पिछले कई ख़ुतबों से मैं आपके सामने बार-बार एक ही बात बयान कर रहा हूँ कि इस्लाम अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी का नाम है और आदमी मुसलमान बन ही नहीं सकता, जब तक कि वह अपनी ख़्वाहिशों की, रस्म-रिवाज की, दुनिया के लोगों की, ग़रज़ हर एक की फ़रमाँबरदारी छोड़कर अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी न करे।

आज मैं आपके सामने यह बयान करना चाहता हूँ कि अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी पर इस क़द्र ज़ोर आख़िर क्यों दिया जाता है। कोई आदमी पूछ सकता है कि क्या ख़ुदा हमारी इताअत का मोहताज है, ख़ुदा की पनाह कि वह हमसे इस तरह अपनी और अपने रसूल (सल्ल०) की फ़रमाँबरदारी की माँग करता है? अल्लाह पनाह में रखे, क्या ख़ुदा दुनिया के हाकिमों की तरह अपनी हुकूमत चलाने की हवस रखता है कि जैसे दुनिया के हाकिम कहते हैं कि हमारी फ़रमाँबरदारी करो उसी तरह, ख़ुदा भी कहता है कि मेरी फ़रमाँबरदारी करो? आज मैं इसी का जवाब देना चाहता हूँ।

अल्लाह की इताअत में ही इनसान की फ़लाह है

असल बात यह है कि अल्लाह तआला जो इनसान से फ़रमाँबरदारी की माँग करता है वह इनसान ही की भलाई के लिए करता है, वह दुनिया के हाकिमों की तरह नहीं है। दुनिया के हाकिम अपने फ़ायदे के लिए लोगों को अपनी मरज़ी का ग़ुलाम बनाना चाहते हैं, मगर अल्लाह तमाम फ़ायदों से बेनियाज़ है, उसको आपसे टैक्स लेने की ज़रूरत नहीं है, उसे कोठियाँ बनाने और मोटरें ख़रीदने और आपकी कमाई से अपने ऐश के सामान इकट्ठा करने की ज़रूरत नहीं है। वह पाक है, किसी का मुहताज नहीं। दुनिया में सब कुछ उसी का है, सारे ख़ज़ानों का वही मालिक है। वह

आपसे सिर्फ़ इसलिए फ़रमाँबरदारी की माँग करता है कि उसे आप ही की भलाई मंज़ूर है। वह नहीं चाहता कि जिस मख़लूक़ को उसने सारी मख़लूक़ में अफ़ज़ल बनाया है वह शैतान की ग़ुलाम बनकर रहे, या किसी इनसान की ग़ुलाम हो, या तुच्छ हसतियों के सामने सिर झुकाए। वह नहीं चाहता कि जिस मख़लूक़ को उसने ज़मीन पर अपनी ख़िलाफ़त दी है वह जिहालत के अँधेरों में भटकती फिरे और जानवरों की तरह अपनी ख़्वाहिशों की बन्दगी करके जहन्नम के सबसे नीचे तबक़े में जा गिरे। इसलिए वह फ़रमाता है कि तुम हमारी फ़रमाँबरदारी करो, हमने अपने रसूलों के ज़रिए से जो रौशनी भेजी है उसको लेकर चलो, फिर तुमको सीधा रास्ता मिल जाएगा और तुम उस रास्ते पर चलकर दुनिया में भी इज़्ज़त हासिल कर सकोगे और आख़िरत में भी। क़ुरआन में है—

لَاۤ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ قف لا قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ ج فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْۢ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ق لَا انْفِصَامَ لَهَا ج وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ط اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ آمَنُوْا ط يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمَاتِ اِلَى النُّوْرِ ط وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْاۤ اَوْلِيَآؤُهُمُ الطَّاغُوْتُ لا يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ اِلَى الظُّلُمٰتِ ط اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ج هُمْ فِيْهَا خَالِدُوْنَ ۝

यानी, दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं है, हिदायत का सीधा रास्ता जिहालत के टेढ़े रास्तों से अलग करके साफ़-साफ़ दिखा दिया गया है। अब तुम में से जो कोई झूठे ख़ुदाओं और गुमराह करनेवाले आक़ाओं को छोड़कर एक अल्लाह पर ईमान ले आया, उसने ऐसी मज़बूत रस्सी थाम ली जो टूटनेवाली नहीं है और अल्लाह सब कुछ सुनने और जाननेवाला है। जो लोग ईमान लाएँ उनका निगहबान अल्लाह है, वह उनको अँधेरों से निकालकर रौशनी में ले जाता है और जो लोग कुफ़्र का तरीक़ा अपनाएँ उनके निगहबान उनके झूठे ख़ुदा और गुमराह करनेवाले आक़ा हैं, वह उनको रौशनी से निकाल कर अँधेरों में ले जाते हैं। वे दोज़ख़ में जानेवाले हैं

जहाँ वे हमेशा रहेंगे। (क़ुरआन, 2:256-257)

ग़ैरुल्लाह की इताअत — गुमराही

अब देखिए कि अल्लाह तआला के सिवा दूसरों की इताअत से आदमी अँधेरे में क्यों चला जाता है और इसकी क्या वजह है कि रौशनी सिर्फ़ अल्लाह ही की फ़रमाँबरदारी से मिल सकती है।

आप देखते हैं कि इस दुनिया में आपकी ज़िन्दगी बेशुमार रिश्तों से जकड़ी हुई है। सबसे पहला रिश्ता तो आपका अपने जिस्म के साथ है। ये हाथ, ये पाँव, ये आँखें, ये कान, यह ज़बान, यह दिल व दिमाग़, यह पेट सब आपकी सेवा के लिए अल्लाह ने आपको दिए हैं। आपको यह फ़ैसला करना है कि इनसे किस तरह काम लें, पेट को क्या खिलाएँ और क्या न खिलाएँ? हाथों से क्या काम लें और क्या न लें? पाँवों को किस रास्ते पर चलाएँ और किस रास्ते पर न चलाएँ? आँख और कान से किस तरह के काम लें और किस तरह के न लें? ज़बान को किन बातों के लिए इस्तेमाल करें? दिल में कैसे ख़यालात रखें? दिमाग़ से कैसी बातें सोचें? इन सब ख़ादिमों से आप अच्छे काम भी ले सकते हैं और बुरे भी। यह आपको ऊँचे दर्जे का इनसान भी बना सकते हैं और जानवरों से बदतर दर्जे में भी पहुँचा सकते हैं।

फिर आपका रिश्ता अपने घर के लोगों से भी है। बाप, माँ, बहन, भाई, बीवी, औलाद और दूसरे रिश्तेदार हैं, जिनसे आपका रात-दिन का वास्ता है। यहाँ आपको यह फ़ैसला करना है कि इनसे आप किस तरह का बरताव करें? उनपर आपके क्या हक़ हैं और आप पर उनके क्या हक़ हैं? उनके साथ ठीक-ठीक बरताव करने ही पर दुनिया और आख़िरत में आपकी राहत, ख़ुशी और कामयाबी का दारोमदार है। अगर आप ग़लत बरताव करेंगे तो दुनिया को अपने लिए जहन्नम बना लेंगे और दुनिया ही में नहीं, बल्कि आख़िरत में भी ख़ुदा के सामने सख़्त जवाबदेही आपको करनी होगी।

फिर आपके ताल्लुक़ात दुनिया के बेशुमार लोगों से हैं, कुछ लोग आपके पड़ोसी हैं, कुछ आपके दोस्त हैं, कुछ आपके दुशमन हैं, बहुत-से वे लोग

भी हैं जो आपकी ख़िदमत करते हैं और बहुत-से वे लोग भी हैं जिनकी आप ख़िदमत करते हैं, किसी से आपको कुछ लेना है और किसी को कुछ देना, कोई आपपर भरोसा करके अपने काम आपके सुपुर्द करता है, किसी पर आप ख़ुद भरोसा करके अपने काम उसके सुपुर्द करते हैं। कोई आपका हाकिम है और किसी के आप हाकिम हैं। ग़रज़ इतने आदमियों के साथ आपको रात-दिन किसी न किसी क़िस्म का मामला पेश आता है, जिनका आप शुमार नहीं कर सकते, दुनिया में आपकी ख़ुशी, आपकी कामयाबी, आपकी इज़्ज़त और नेकनामी का सारा दारोमदार इसपर है कि वे सारे ताल्लुक़ात जो मैंने आपके सामने बयान किए हैं सही और दुरुस्त हों। इसी तरह आख़िरत में ख़ुदा के यहाँ भी आप सिर्फ़ उसी वक़्त कामयाब हो सकते हैं कि जब अपने मालिक के सामने आप हाज़िर हों तो इस हाल में न जाएँ कि किसी का हक़ आपने मार रखा हो, किसी पर ज़ुल्म किया हो, कोई आपके ख़िलाफ़ वहाँ नालिश करे, किसी की ज़िन्दगी ख़राब करने का वबाल आपके सिर पर हो, किसी की इज़्ज़त या जान या माल को आपने नाजायज़ तौर पर नुक़सान पहुँचाया हो। अतः आपको यह फ़ैसला करने की भी ज़रूरत है कि इन बेशुमार ताल्लुक़ात को दुरुस्त किस तरह रखा जाए और इनको ख़राब करनेवाले तरीक़े कौन-से हैं, जिनसे बचा जाए।

अब आप ग़ौर कीजिए कि अपने जिस्म से, अपने घरवालों से और दूसरे तमाम लोगों से सही ताल्लुक़ रखने के लिए आपको हर-हर क़दम पर इल्म की रौशनी दरकार है, क़दम-क़दम पर आपको यह मालूम होने की ज़रूरत है कि सही क्या है और ग़लत क्या है? हक़ क्या है और बातिल क्या है? इनसाफ़ क्या है और ज़ुल्म क्या? किसका हक़ आपपर कितना है और किसपर आपका हक़ कितना है? किस चीज़ में हक़ीक़ी फ़ायदा है और किस चीज़ में हक़ीक़ी नुक़सान है? यह इल्म अगर आप ख़ुद अपने नफ़्स के पास तलाश करेंगे तो वहाँ यह न मिलेगा। इसलिए कि नफ़्स तो ख़ुद जाहिल है, उसके पास ख़्वाहिशों के सिवा धरा क्या है? वह तो कहेगा कि शराब पियो, ज़िना करो, हराम खाओ, क्योंकि इनमें बड़ा मज़ा है। वह तो कहेगा कि सबका हक़ मार खाओ और किसी का हक़ अदा न करो, क्योंकि इसमें फ़ायदा ही फ़ायदा है, ले लिया सब कुछ और दिया कुछ नहीं। वह तो कहेगा कि सबसे अपना मतलब निकालो और किसी

के कुछ काम न आओ, क्योंकि इसमें फ़ायदा भी है और आराम भी। ऐसे जाहिल के हाथ में जब आप अपने आपको देंगे तो वह आपको नीचे की तरफ़ ले जाएगा, यहाँ तक कि आप इनतिहा दरजे के ख़ुदग़रज़, बदनफ़्स और बदकार हो जाएँगे और आपकी दुनिया और दीन दोनों ख़राब होंगे।

दूसरी सूरत यह है कि आप अपने नफ़्स के बजाए अपने ही जैसे दूसरे इनसानों पर भरोसा करें और अपनी लगाम उनके हाथ में दे दें कि जिधर वे चाहें उधर ले जाएँ। इस सूरत में यह ख़तरा है कि एक ख़ुदग़रज़ आदमी कहीं आपको ख़ुद ही अपनी ख़्वाहिश का ग़ुलाम न बना ले, या एक जाहिल आदमी ख़ुद भी गुमराह हो और आपको भी गुमराह कर दे, या एक ज़ालिम आपको अपना हथियार बनाए और दूसरों पर ज़ुल्म करने के लिए आपसे काम ले। ग़रज़ यहाँ भी आपको इल्म की वह रौशनी नहीं मिल सकती जो आपको सही और ग़लत में फ़र्क़ बता सकती हो और दुनिया की इस ज़िन्दगी में ठीक-ठीक रास्ते पर चला सके।

हक़ीक़ी हिदायत — सिर्फ़ अल्लाह की तरफ़ से

इसके बाद सिर्फ़ एक पाक ख़ुदा की वह ज़ात रह जाती है जहाँ से यह रौशनी आपको मिल सकती है। ख़ुदा जाननेवाला और देखनेवाला है, वह हर चीज़ की हक़ीक़त को जानता है, वही ठीक-ठीक बता सकता है कि आपका हक़ीक़ी फ़ायदा किस चीज़ में है और हक़ीक़ी नुक़सान किस चीज़ में। आपके लिए कौन-सा काम हक़ीक़त में सही है और कौन-सा ग़लत। फिर ख़ुदावन्द तआला बेनियाज़ भी है, उसकी अपनी कोई ग़रज़ है ही नहीं। उसे इसकी ज़रूरत ही नहीं है कि, अल्लाह की पनाह कि आपको धोखा देकर कुछ फ़ायदा हासिल करे। इसलिए वह पाक बेनियाज़ मालिक जो कुछ भी हिदायत देगा बेग़रज़ देगा और सिर्फ़ आपके फ़ायदे के लिए देगा। फिर ख़ुदावन्द तआला इनसाफ़ करनेवाला भी है, ज़ुल्म का उसकी पाक-ज़ात में एक अंश भी नहीं है। इसलिए वह सरासर हक़ की बिना पर हुक्म देगा। उसके हुक्म पर चलने में इस बात का कोई ख़तरा नहीं है कि आप ख़ुद अपने ऊपर या दूसरे लोगों पर किसी क़िस्म का ज़ुल्म कर जाएँ।

अल्लाह की हिदायत से फ़ायदा कैसे उठाएँ ?

यह रौशनी जो अल्लाह तआला की तरफ़ से मिलती है, इससे फ़ायदा उठाने के लिए दो बातों की ज़रूरत है, एक यह कि आप अल्लाह पर और उसके रसूल (सल्ल०) पर जिसके वास्ते से यह रौशनी आ रही है, सच्चे दिल से ईमान लाएँ, यानी आपको पूरा यक़ीन हो कि ख़ुदा की तरफ़ से उसके पाक रसूल (सल्ल०) ने जो कुछ हिदायत दी है, वह बिलकुल हक़ है, चाहे उसकी मसलेहत आपकी समझ में आए या न आए। दूसरे यह कि ईमान लाने के बाद आप उसके हुक्म पर चलें, इसलिए कि हुक्म पर चले बिना कोई नतीजा हासिल नहीं हो सकता। मान लीजिए कि एक शख़्स आपसे कहता है कि फ़लाँ चीज़ ज़हर है, मार डालनेवाली चीज़ है, उसे न खाओ। आप कहते हैं कि बेशक तुमने सच कहा, यह ज़हर ही है, मार डालनेवाली चीज़ है। मगर यह जानने और मानने के बावजूद आप उस चीज़ को खा जाते हैं। ज़ाहिर है कि इसका नतीजा वही होगा जो न जानते हुए खाने का होता। ऐसे जानने और मानने से क्या हासिल ? असली फ़ायदा तो उसी वक़्त हासिल हो सकता है जब आप ईमान लाने के साथ उसकी फ़रमाँबरदारी भी करें। जिस बात का हुक्म दिया गया है उसपर सिर्फ़ ज़बान ही से यह न कहें कि हम ईमान लाए और हमने सच माना, बल्कि उसपर अमल भी करें और जिस बात से रोका गया है उससे बचने का सिर्फ़ ज़बानी इक़रार ही न करें, बल्कि अपने आमाल में उससे परहेज़ भी करें। इसी लिए अल्लाह बार-बार फ़रमाता है—

اَطِيْعُوْا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْا الرَّسُوْلَ.

हुक्म मानो मेरा और मेरे रसूल का। (क़ुरआन, 4:59)

وَمَنْ تُطِيْعُوْهُ تَهْتَدُوْا.

अगर मेरे रसूल की पैरवी करोगे तब ही तुमको हिदायत मिलेगी। (क़ुरआन, 24:54)

فَلْيَحْذَرِ الَّذِيْنَ يُخَالِفُوْنَ عَنْ اَمْرِهٖٓ اَنْ تُصِيْبَهُمْ فِتْنَةٌ.

वह लोग जो हमारे रसूल के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करते हैं, उनको डरना चाहिए कि कहीं वे किसी आफ़त में न पड़ जाएँ।

(क़ुरआन, 24:63)

अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की इताअत का मतलब

मुसलमान भाइयो! यह जो बार-बार मैं आपसे कहता हूँ कि सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की पैरवी करनी चाहिए, इसका मतलब आप यह न समझ लें कि आपको किसी आदमी की बात माननी ही नहीं चाहिए। नहीं, असल में इसका मतलब यह है कि आप आँखें बन्द करके किसी के पीछे न चलें, बल्कि हमेशा यह देखते रहें कि जो शख़्स आपसे किसी काम को कहता है, वह ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) के हुक्म के मुताबिक़ कहता है या उसके ख़िलाफ़। अगर वह ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ कहता है तो उसकी बात ज़रूर माननी चाहिए। क्योंकि इस सूरत में आप उसकी पैरवी कब कर रहे हैं? यह तो असल में अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) ही की पैरवी है। और अगर वह ख़ुदा और रसूल के हुक्म के ख़िलाफ़ कहता है तो उसकी बात उसके मुँह पर दे मारिए, चाहे वह कोई हो, क्योंकि आपके लिए सिवाय ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) के किसी के हुक्म की पैरवी जायज़ नहीं है।

यह बात आप समझ सकते हैं कि अल्लाह तआला ख़ुद तो आपके सामने आकर हुक्म देने से रहा! उसको जो हुक्म देने थे वह उसने अपने रसूल (सल्ल०) के ज़रिए से भेज दिए। अब रहे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०), तो आप भी चौदह सौ साल पहले वफ़ात पा चुके हैं। आपके ज़रिए से जो हुक्म ख़ुदा ने दिए थे, वे क़ुरआन और हदीस में हैं। लेकिन क़ुरआन और हदीस ख़ुद भी चलने-फिरने और बोलने और हुक्म देनेवाली चीज़ें नहीं हैं कि आपके सामने आएँ और आकर किसी बात का हुक्म दें और किसी बात से रोकें। क़ुरआन और हदीस के हुक्मों के मुताबिक़ आपको

चलानेवाले बहरहाल इनसान ही होंगे। इसलिए इनसानों की पैरवी के बग़ैर तो चारा ही नहीं, अलबत्ता ज़रूरत जिस बात की है वह यह है कि आप इनसानों के पीछे आँखे बन्द करके न चलें, बल्कि जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा, यह देखते रहें कि वह क़ुरआन और हदीस के मुताबिक़ चला रहे हैं या नहीं। अगर क़ुरआन व हदीस के मुताबिक़ चलाएँ तो उनका हुक्म मानना और पैरवी करना आपपर फ़र्ज़ है; और अगर इसके ख़िलाफ़ चलाएँ तो उनका हुक्म मानना या उनकी पैरवी करना हराम है।

दीन और शरीअत

मुसलमान भाइयो! मज़हब की बातों में आप अकसर दो लफ़्ज़ सुना करते हैं और बोलते भी हैं—एक दीन, दूसरा शरीअत—लेकिन आपमें बहुत कम आदमी हैं जिनको यह मालूम होगा कि दीन के क्या मानी हैं और शरीअत का क्या मतलब है। अनपढ़ तो ख़ैर मजबूर हैं, अच्छे ख़ासे पढ़े-लिखे लोग, बल्कि बहुत-से मौलवी भी यह नहीं जानते कि इन दोनों लफ़्ज़ों का ठीक-ठीक मतलब क्या है और इन दोनों में फ़र्क़ क्या है? इस नावाक़फ़ियत की वजह से अकसर दीन को शरीअत से और शरीअत को दीन से गडमड कर दिया जाता है और इससे बड़ी ख़राबियाँ पैदा होती हैं। आज मैं बहुत सादे अलफ़ाज़ में आपको इनका मतलब समझाता हूँ।

दीन के मानी

दीन के कई मानी हैं। एक मानी इज़्ज़त, हुकूमत, सल्तनत, बादशाही और फ़रमांरवाई के हैं। दूसरे मानी इसके बिलकुल उलटे हैं, यानी मातहती, इताअत, ग़ुलामी, ताबेदारी और बन्दगी। तीसरे मानी हिसाब करने और फ़ैसला करने और आमाल की जज़ा व सज़ा के हैं। क़ुरआन शरीफ़ में लफ़्ज़ 'दीन' इन्हीं तीनों मानों में आया है।

फ़रमाया—

إِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْإِسْلَامُ ۝

यानी, अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम है। (क़ुरआन, 3:19)

यानी, ख़ुदा के नज़दीक दीन बस वही है जिसमें इनसान सिर्फ़ अल्लाह को इज़्ज़तवाला माने और उसके सिवा किसी के आगे अपने आपको ज़लील न करे। सिर्फ़ अल्लाह को आक़ा और मालिक और सुलतान समझे और उसके सिवा किसी का ग़ुलाम, फ़रमाँबरदार और ताबेदार बनकर न रहे। सिर्फ़ अल्लाह को हिसाब करने और जज़ा व सज़ा देनेवाला समझे और

उसके सिवा किसी के हिसाब से न डरे, किसी की जज़ा का लालच न करे और किसी की सज़ा का ख़ौफ़ न खाए। इसी दीन का नाम 'इस्लाम' है। अगर इसको छोड़कर आदमी ने किसी और को असली इज़्ज़तवाला, असली हाकिम, असली बादशाह और मालिक, असल जज़ा व सज़ा देनेवाला समझा और उसके सामने ज़िल्लत से सिर झुकाया, उसकी बन्दगी और ग़ुलामी की, उसका हुक्म माना और उसकी जज़ा का लालच और सज़ा का ख़ौफ़ खाया तो यह झूठा दीन होगा। अल्लाह ऐसे दीन को हरगिज़ क़बूल नहीं करता, क्योंकि यह हक़ीक़त के बिलकुल ख़िलाफ़ है। ख़ुदा के सिवा कोई दूसरी हस्ती इस पूरी कायनात में असली इज़्ज़तवाली नहीं है, न किसी और की सल्तनत और बादशाही है, न और की ग़ुलामी और बन्दगी के लिए इनसान पैदा किया गया है, न उस असली मालिक के सिवा कोई जज़ा व सज़ा देनेवाला है। यही बात दूसरी आयतों में इस तरह बयान की गई है—

وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ ۝

यानी, जो शख़्स ख़ुदा की सुलतानी और बादशाही को छोड़कर किसी और को अपना मालिक और हाकिम मानेगा और उसकी बन्दगी और ग़ुलामी इख़तियार करेगा और उसको जज़ा व सज़ा देनेवाला समझेगा, उसके दीन को ख़ुदा हरगिज़ क़बूल करनेवाला नहीं है। (क़ुरआन, 3:85)

इसलिए कि—

وَمَآ اُمِرُوْٓا اِلَّا لِيَعْبُدُوا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ حُنَفَآءَ ۝

यानी, उन्हें हुक्म दिया गया मगर इस बात का कि अल्लाह ही की बन्दगी करें उसके लिए इताअत को ख़ालिस करके।

(क़ुरआन, 98:5)

इनसानों को तो ख़ुदा ने अपना बन्दा बनाया है और अपने सिवा किसी और की बन्दगी करने का उन्हें हुक्म ही नहीं दिया है। उनका तो फ़र्ज़ यह है कि सब तरफ़ से मुँह मोड़कर सिर्फ़ अल्लाह के लिए अपने दीन

यानी अपनी इताअत और ग़ुलामी को मख़सूस कर दें और यकसू होकर सिर्फ़ उसी की बन्दगी करें और उसी के हिसाब और पूछ-गछ से डरें। क़ुरआन में है—

اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ اَسْلَمَ مَنْ فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّ إِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ۝

यानी, क्या इनसान ख़ुदा के सिवा किसी और की ग़ुलामी और फ़रमाँबरदारी करना चाहता है? हालाँकि ज़मीन और आसमान की सारी चीज़ें सिर्फ़ ख़ुदा की ग़ुलाम और फ़रमाँबरदार हैं और इन सारी चीज़ों को अपने हिसाब-किताब के लिए ख़ुदा के सिवा किसी और की तरफ़ नहीं जाना है। क्या इनसान ज़मीन और आसमान की सारी कायनात के ख़िलाफ़ एक निराला रास्ता अपने लिए निकालना चाहता है? (क़ुरआन, 3:85)

هُوَ الَّذِيْٓ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ كُلِّهٖ وَلَوْ كَرِهَ الْمُشْرِكُوْنَ۝

यानी, अल्लाह ने अपने रसूल को सच्चे दीन का इल्म देकर इसी लिए भेजा है कि वह सारे झूठे ख़ुदाओं की ख़ुदाई ख़त्म कर दे और इनसान को ऐसा आज़ाद कर दे कि वह ख़ुदावन्दे आलम के सिवा किसी का बन्दा बनकर न रहे, चाहे काफ़िर और मुशरिक इसपर अपनी जिहालत से कितना ही वावैला मचाएँ और कितनी ही नाक-भौं चढ़ाएँ। (क़ुरआन, 61:9)

وَقَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ۝

यानी, तुम जंग करो, इसलिए कि दुनिया से ग़ैर-अल्लाह की फ़रमाँरवाई का फ़ितना मिट जाए और दुनिया में बस ख़ुदा ही का क़ानून चले, ख़ुदा ही की बादशाही तसलीम की जाए और इनसान सिर्फ़ ख़ुदा की बन्दगी करे। (क़ुरआन, 8:39)

इस तशरीह से आपको मालूम हो गया कि दीन के क्या मानी हैं—

☆ ख़ुदा को आक़ा और मालिक और हाकिम मानना।

☆ ख़ुदा ही की ग़ुलामी, बन्दगी और ताबेदारी करना। और,

☆ ख़ुदा के हिसाब से डरना, उसकी सज़ा का ख़ौफ़ खाना और उसी की जज़ा का लालच करना।

फिर चूँकि ख़ुदा का हुक्म इनसानों को उसकी किताब और उसके रसूल (सल्ल०) के ज़रिए ही से पहुँचता है, इसलिए रसूल (सल्ल०) को ख़ुदा का रसूल और किताब को ख़ुदा की किताब मानना और उसकी इताअत व पैरवी करना भी दीन में दाख़िल है। जैसा कि फ़रमाया—

يَابَنِيْٓ اٰدَمَ اِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ رُسُلٌ مِّنْكُمْ يَقُصُّوْنَ عَلَيْكُمْ اٰيٰتِيْ فَمَنِ اتَّقٰى وَاَصْلَحَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ○

> यानी, ऐ आदम की औलाद अगर तुम्हारे पास तुम्हीं में से ऐसे रसूल आएँ, जो तुम्हें मेरी आयतें सुना रहे हों, तो जो शख़्स तुममें से उन हुक्मों को मानकर परहेज़गारी इख़्तियार करेगा और उनके मुताबिक़ अपने अमल सही करेगा, उसके लिए डर और रंज की कोई बात नहीं है।
>
> (क़ुरआन, 7:35)

इससे मालूम हुआ कि अल्लाह तआला बराहेरास्त हर इनसान के पास अपने हुक्म नहीं भेजता, बल्कि अपने रसूलों के वास्ते से भेजता है, इसलिए जो शख़्स अल्लाह को हाकिम मानता हो, वह उसकी फ़रमाँबरदारी सिर्फ़ इसी तरह कर सकता है कि उसके रसूलों की फ़रमाँबरदारी करे, और रसूल के ज़रिए से जो हुक्म आएँ, उनकी इताअत करे। इसी का नाम दीन है।

शरीअत क्या है ?

अब मैं आपको बताऊँगा कि शरीअत किसे कहते हैं। शरीअत के मानी 'तरीक़े और रास्ते' के हैं। जब तुमने ख़ुदा को हाकिम मान लिया और

उसकी बन्दगी क़बूल कर ली और यह तसलीम कर लिया कि रसूल (सल्ल०) उसी की तरफ़ से हुक्म देनेवाले हैं और किताब उसी की तरफ़ से है, तो तुम दीन में दाख़िल हो गए। इसके बाद तुमको जिस तरीक़े से ख़ुदा की बन्दगी करनी है और उसकी फ़रमाँबरदारी में जिस रास्ते पर चलना है उसका नाम शरीअत है। यह तरीक़ा और रास्ता भी ख़ुदा अपने रसूल (सल्ल०) ही के ज़रिए से बताता है। वही यह सिखाता है कि अपने मालिक की इबादत इस तरह करो, तहारत और पाकीज़गी का यह तरीक़ा है, नेकी और तक़वा का यह रास्ता है, हुक़ूक़ इस तरह अदा करने चाहिएँ, मामले यूँ अंजाम देने चाहिएँ और ज़िन्दगी इस तरह बसर करनी चाहिए। लेकिन फ़र्क़ यह है कि दीन हमेशा से एक था, एक ही रहा और अब भी एक ही है, मगर शरीअतें बहुत-सी आईं, बहुत-सी मंसूख़ हुईं, बहुत-सी बदल गईं। मगर कभी उनके बदलने से दीन नहीं बदला। हज़रत नूह (अलै०) का दीन भी वही था, जो हज़रत इबराहीम (अलै०) का था, हज़रत मूसा और ईसा (अलै०) का था, हज़रत शुऐब और हज़रत सालेह और हज़रत हूद (अलै०) का था और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का है। मगर शरीअतें उन सबकी कुछ न कुछ मुख़्तलिफ़ रही हैं। नमाज़ और रोज़े के तरीक़े किसी में कुछ थे और किसी में कुछ। हराम और हलाल के हुक्म, तहारत के क़ायदे, निकाह और तलाक़ और विरासत के क़ानून हर शरीअत में दूसरी शरीअत से कुछ न कुछ मुख़्तलिफ़ रहे हैं। इनके बावजूद सब मुसलमान थे। हज़रत नूह (अलै०) के पैरौ भी, हज़रत इबराहीम (अलै०) के पैरौ भी, हज़रत मूसा (अलै०) के पैरौ भी और हम भी। इसलिए कि दीन सबका एक है। इससे मालूम हुआ कि शरीअत के हुक्मों में फ़र्क़ होने से दीन में कोई फ़र्क़ नहीं होता। दीन एक ही रहता है, चाहे इसपर अमल करने के तरीक़े मुख़्तलिफ़ हों।

शरीअत के फ़र्क़ की नौईयत

इस फ़र्क़ को यूँ समझो कि एक आक़ा के बहुत-से नौकर हैं। जो शख़्स उसको आक़ा ही नहीं मानता और उसके हुक्म को पूरा करना अपने लिए ज़रूरी ही नहीं समझता, वह तो नाफ़रमान है और नौकरी के दायरे ही से बाहर है, और जो लोग उसको आक़ा मानते हैं, उसके हुक्म को मानना

अपना फ़र्ज़ जानते हैं और उसकी नाफ़रमानी से डरते हैं, वे सब नौकरों के ज़ुमरे में दाख़िल हैं। नौकरी बजा लाने और ख़िदमत करने के तरीक़े मुख़्तलिफ़ हों तो इससे उनके नौकर होने में कोई फ़र्क़ नहीं होता। अगर आक़ा ने किसी को नौकरी का एक तरीक़ा बताया है और दूसरे को दूसरा तरीक़ा, तो एक नौकर को यह कहने का हक़ नहीं कि मैं नौकर हूँ और वह नौकर नहीं है। इसी तरह अगर आक़ा का हुक्म सुनकर एक नौकर उसका मंशा और मतलब कुछ समझता है और दूसरा कुछ और। फिर दोनों अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ इस हुक्म की तामील करते हैं, तो नौकरी में दोनों बराबर हैं। यह हो सकता है कि एक ने मतलब समझने में ग़लती की हो और दूसरे ने सही मतलब समझा हो, लेकिन जब तक इताअत से किसी ने इनकार न किया हो तो किसी को किसी से यह कहने का हक़ नहीं कि तू नाफ़रमान है या तुझे आक़ा की नौकरी से निकाल दिया गया है।

इस मिसाल से आप दीन और शरीअत के फ़र्क़ को बड़ी अच्छी तरह समझ सकते हैं। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पहले अल्लाह तआला मुख़्तलिफ़ रसूलों के जरिए से मुख़्तलिफ़ शरीअतें भेजता रहा। किसी को नौकरी का एक तरीक़ा बताया और किसी को दूसरा तरीक़ा। इन सब तरीक़ों के मुताबिक़ जिन-जिन लोगों ने मालिक की इताअत की वे सब मुसलमान थे, जबकि उनकी नौकरी के तरीक़े मुख़्तलिफ़ थे। फिर जब नबी करीम (सल्ल०) तशरीफ़ लाए तो आक़ा ने हुक्म दिया कि अब पिछले तरीक़ों को हम रद्द करते हैं, आइन्दा से जिसको हमारी नौकरी करनी हो वह इस तरीक़े पर नौकरी करे जो अब हम अपने आख़िरी पैग़म्बर (सल्ल०) के ज़रिए से बताते हैं। इसके बाद किसी नौकर को पिछले तरीक़ों पर नौकरी करने का हक़ बाक़ी नहीं रहा, क्योंकि अब अगर वह नए तरीक़ों को नहीं मानता और पुराने तरीक़ों पर चल रहा है तो वह दरअसल आक़ा का हुक्म नहीं मानता, बल्कि अपने दिल का कहा मान रहा है; इसलिए वह नौकरी से ख़ारिज है, यानी मज़हब की ज़बान में काफ़िर हो गया है।

फ़िक़्ही मसलकों के फ़र्क़ की नौईयत

यह तो पिछले नबियों के माननेवालों के लिए है। रहे अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल०) के पैरौ, तो इनपर इस मिसाल का दूसरा हिस्सा ठीक बैठता है। अल्लाह ने जो शरीअत आप (सल्ल०) के ज़रिए से हमको भेजी है, उसको ख़ुदा की शरीअत माननेवाले और उसपर चलने को ज़रूरी समझनेवाले सब के सब मुसलमान हैं। अब अगर इस शरीअत के हुक्मों को एक शख़्स किसी तरह समझता है और दूसरा किसी और तरह, और दोनों अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ उसपर अमल करते हैं, तो चाहे उनके अमल में कितना ही फ़र्क़ हो, उनमें कोई भी नौकरी से ख़ारिज न होगा। इसलिए कि इनमें से हर एक जिस तरीक़े पर चल रहा है यही समझकर तो चल रहा है कि यह आक़ा का हुक्म है। फिर एक नौकर को यह कहने का क्या हक़ है कि मैं तो नौकर हूँ और फ़लाँ शख़्स नौकर नहीं है। ज़्यादा से ज़्यादा बस वह यही कह सकता है कि मैंने आक़ा के हुक्म का सही मतलब समझा और उसने सही मतलब नहीं समझा। मगर वह उसको नौकरी से ख़ारिज कर देने का हक़दार कैसे हो गया? जो शख़्स ऐसी हिम्मत करता है वह गोया ख़ुद आक़ा का मनसब इख़तियार करता है। वह मानो यह कहता है कि तू जिस तरह आक़ा के हुक्म को मानने पर मजबूर है उसी तरह मेरी समझ को भी मानने पर मजबूर है। अगर तू मेरी समझ को न मानेगा तो मैं अपने इख़तियार से तुझको आक़ा की नौकरी से ख़ारिज कर दूँगा। ग़ौर कीजिए यह कितनी बड़ी बात है! इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि "जो शख़्स किसी मुसलमान को नाहक़ काफ़िर कहेगा उसका क़ौल ख़ुद उसी पर पलट जाएगा।" क्योंकि मुसलमान को तो ख़ुदा ने अपने हुक्म का ग़ुलाम बनाया है, मगर यह शख़्स कहता है कि नहीं, तुम मेरी समझ और मेरी राय की भी ग़ुलामी करो। यानी सिर्फ़ ख़ुदा ही तुम्हारा ख़ुदा नहीं है, बल्कि मैं भी छोटा ख़ुदा हूँ और मेरा हुक्म न मानोगे तो मैं अपने इख़तियार से तुमको ख़ुदा की बन्दगी से ख़ारिज कर दूँगा चाहे ख़ुदा ख़ारिज करे या न करे। ऐसी बड़ी बात जो शख़्स कहता है उसके कहने से चाहे दूसरा मुसलमान काफ़िर हो या न हो, मगर वह ख़ुद अपने आपको कुफ़्र के ख़तरे में डाल ही देता है।

भाइयो! आपने दीन और शरीअत का फ़र्क़ अच्छी तरह समझ लिया होगा और यह भी आपने जान लिया होगा कि बन्दगी के तरीक़ों में इख़तिलाफ़ हो जाने से दीन में इख़तिलाफ़ नहीं होता बशर्ते कि आदमी जिस तरीक़े पर अमल करे नेक नीयती के साथ यह समझकर अमल करे कि ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) ने वही तरीक़ा बताया है जिसपर वह अमल कर रहा है और उसके पास अपने इस तर्ज़ेअमल के लिए ख़ुदा की किताब या उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत से कोई सनद मौजूद हो।

दीन और शरीअत का फ़र्क़ न समझने की ख़राबियाँ

अब मैं आपको बताना चाहता हूँ कि दीन और शरीअत के इस फ़र्क़ को न समझने से आपकी जमाअत में कितनी ख़राबियाँ पैदा हो रही हैं।

मुसलमानों में नमाज़ पढ़ने के मुख़्तलिफ़ तरीक़े हैं। एक शख़्स सीने पर हाथ बाँधता है और दूसरा नाफ़ पर बाँधता है। एक शख़्स इमाम के पीछे सूरा फ़ातिहा पढ़ता है और दूसरा नहीं पढ़ता। एक शख़्स आमीन ज़ोर से कहता है दूसरा आहिस्ता से कहता है। इनमें से हर शख़्स जिस तरीक़े पर चल रहा है, यही समझकर चल रहा है कि यह नबी अकरम (सल्ल०) का तरीक़ा है और इसके लिए वह अपनी सनद पेश करता है। इसलिए नमाज़ की सूरतें मुख़्तलिफ़ होने के बावजूद दोनों हुज़ूर (सल्ल०) ही के पैरौ हैं। मगर जिन ज़ालिमों ने शरीअत के इन मसाइल को दीन समझ रखा है, उन्होंने महज़ इन्हीं तरीक़ों के इख़तिलाफ़ को दीन का इख़तिलाफ़ समझ लिया, अपनी जमाअतें अलग कर लीं, अपनी मसजिदें अलग कर लीं, एक ने दूसरे को गालिया दीं, मसजिदों से मार-मारकर निकाल दिया, मुक़दमेबाज़ियाँ कीं और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की उम्मत को टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

इससे भी लड़ने और लड़ानेवालों के दिल ठंडे न हुए तो छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे को काफ़िर और फ़ासिक़ और गुमराह कहना शुरू कर दिया। एक शख़्स क़ुरआन से या हदीस से एक बात अपनी समझ के मुताबिक़ निकालता है तो वह उसको काफ़ी नहीं समझता कि जो कुछ उसने समझा है उसपर अमल करे; बल्कि यह भी ज़रूरी समझता है कि दूसरों से भी

अपनी समझ ज़बरदस्ती तसलीम कराए और अगर वह उसे तसलीम न करे तो उनको ख़ुदा के दीन से ख़ारिज कर दे।

आप मुसलमानों में हनफ़ी, शाफ़ई, अह्ले हदीस वग़ैरह जो मुख़्तलिफ़ मज़हब देख रहे हैं। यह सब क़ुरआन व हदीस को आख़िरी सनद मानते हैं और अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ वहीं से अहकाम निकालते हैं। हो सकता है कि एक की समझ सही हो और दूसरे की ग़लत हो। मैं भी एक तरीक़ेकार का पैरौ हूँ और उसको सही समझता हूँ और उसके ख़िलाफ़ जो लोग हैं उनसे बहस भी करता हूँ, ताकि जो-जो बात मेरे नजदीक सही है वह उनको समझाऊँ और जिस बात को मैं ग़लत समझता हूँ उसे ग़लत साबित कर दूँ, लेकिन किसी शख़्स की समझ का ग़लत होना और बात है और उसका दीन से ख़ारिज हो जाना दूसरी बात। अपनी-अपनी समझ के मुताबिक़ शरीअत पर अमल करने का हर मुसलमान को हक़ है। अगर दस मुसलमान दस मुख़्तलिफ़ तरीक़ों पर अमल करें तो जब तक वे शरीअत को मानते हैं, वे सब मुसलमान ही हैं, एक ही उम्मत हैं, उनकी जमाअत अलग होने की कोई वजह नहीं। मगर जो लोग इस चीज़ को नहीं समझते वे इन्हीं छोटी-छोटी बातों पर फ़िरक़े बनाते हैं, एक-दूसरे से कट जाते हैं, अपनी नमाज़ें और मसजिदें अलग कर लेते हैं, एक-दूसरे से शादी-ब्याह, मेल-जोल और रब्त व ज़ब्त बन्द कर देते हैं और अपने-अपने हम-मज़हबों के जत्थे इस तरह बना लेते हैं कि गोया हर जत्था एक अलग उम्मत है।

फ़िरक़ाबंदी के नुक़सानात

आप अन्दाज़ा नहीं कर सकते कि इस फ़िरक़ाबन्दी से मुसलमानों को कितना नुक़सान पहुँचा है। कहने को मुसलमान एक उम्मत है, हिन्दुस्तान में इनकी करोड़ों की तादाद है। इतनी बड़ी जमाअत अगर वाक़ई एक हो और पूरे इत्तिफ़ाक़ के साथ ख़ुदा का कलिमा बुलंद करने के लिए काम करे तो दुनिया में कौन इतना दम रखता है जो इसको नीचा दिखा सके। मगर हक़ीक़त में इस फ़िरक़ाबन्दी की बदौलत इस उम्मत के सैकड़ों टुकड़े हो गए हैं। उनके दिल एक-दूसरे से फटे हुए हैं। ये सख़्त से सख़्त मुसीबत के वक़्त में भी मिलकर नहीं खड़े हो सकते। एक फ़िरक़े का मुसलमान

दूसरे फ़िरक़ेवालों से उतना ही तास्सुब और बैर रखता है जितना एक यहूदी एक ईसाई से रखता है, बल्कि इससे भी कुछ बढ़कर। ऐसे वाक़िआत देखने में आए हैं कि एक फ़िरक़ेवाले ने दूसरे फ़िरक़ेवाले को नीचा दिखाने के लिए कुफ़्फ़ार का साथ दिया है। ऐसी हालत में अगर मुसलमानों को आप ज़लील व रुसवा देख रहे हैं तो ताज्जुब न कीजिए। यह उनके अपने हाथों की कमाई है। उनपर वह अज़ाब नाज़िल हुआ है जिसको अल्लाह तआला ने अपनी किताब 'क़ुरआन पाक' में इस तरह बयान किया है—

اَوْ يَلْبِسَكُمْ شِيَعًا وَّيُذِيقَ بَعْضَكُمْ بَأْسَ بَعْضٍ ۗ

> यानी, अल्लाह के अज़ाब की एक सूरत यह भी है कि वह तुमको मुख़्तलिफ़ फ़िरक़ों में तक़सीम कर दे और तुम आपस में ही कट मरो। (क़ुरआन, 6:65)

भाइयो! यह अज़ाब जिसमें सारे हिन्दुस्तान के मुसलमान मुब्तिला हैं, इससे नजात उस वक़्त तक मुमकिन नहीं जब तक कि इस फ़िरक़ाबन्दी को हम ख़त्म न कर दें। अगर आप अपनी ख़ैर चाहते हैं तो देर किए बिना इन जत्थों को तोड़ डालिए, एक-दूसरे के भाई बनकर रहिए और एक उम्मत बन जाइए। ख़ुदा की शरीअत में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसकी बिना पर अहले हदीस, हनफ़ी, देवबन्दी, बरेलवी, शीआ, सुन्नी वग़ैरह अलग-अलग उम्मतें बन सकें, ये उम्मतें जिहालत की पैदा की हुई हैं। अल्लाह ने सिर्फ़ एक उम्मत 'उम्मते मुसलिमा' बनाई थी।

अध्याय — 3

रोज़ा और नमाज़ की हक़ीक़त

- इबादत
    - नमाज़
        - नमाज़ में आप क्या पढ़ते हैं?
            - नमाज़ जमाअत के साथ
                - नमाज़ें बेअसर क्यों हो गईं?
                    - रोज़ा
                        - रोज़े का असल मक़सद

इबादत

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में मैंने आपको दीन और शरीअत का मतलब समझाया था। आज मैं आपके सामने एक और लफ़्ज़ की तशरीह करूँगा जिसे मुसलमान आम तौर पर बोलते हैं, मगर बहुत कम आदमी इसका सही मतलब जानते हैं। यह 'इबादत' का लफ़्ज़ है।

अल्लाह तआला ने अपनी पाक किताब में बयान किया है—

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلاَّ لِيَعْبُدُوْنَ○

यानी, मैंने जिन्न और इनसान को इसके सिवा और किसी ग़रज़ के लिए पैदा नहीं किया कि वे मेरी इबादत करें।

(क़ुरआन, 51:56)

इस आयत से मालूम हुआ कि आपकी पैदाइश और आपकी ज़िन्दगी का मक़सद अल्लाह की इबादत के सिवा और कुछ नहीं है। अब आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि इबादत का मतलब जानना आपके लिए कितना ज़रूरी है। अगर आप इसके सही मानी से नावाक़िफ़ होंगे तो मानो उस मक़सद ही को पूरा न कर सकेंगे, जिसके लिए आपको पैदा किया गया है और जो चीज़ अपने मक़सद को पूरा नहीं करती, वह नाकाम होती है। डॉक्टर अगर मरीज़ को अच्छा न कर सके तो कहते हैं कि वह इलाज में नाकाम हुआ। किसान अगर फ़सल पैदा न कर सके तो कहते हैं कि वह खेती में नाकाम हुआ। इसी प्रकार अगर आप अपनी ज़िन्दगी के असल मक़सद यानी 'इबादत' को पूरा न कर सके तो कहना चाहिए कि आपकी सारी ज़िन्दगी ही नाकाम हो गई। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप पूरे ध्यान से इबादत का मतलब सुनें और समझें और उसे अपने दिल में जगह दें, क्योंकि इसी पर आपकी ज़िन्दगी के कामयाब या नाकाम होने का दारोमदार है।

इबादत का मतलब

इबादत का लफ़्ज़ 'अब्द' से निकला है। अब्द के मानी बन्दे और ग़ुलाम

के हैं। इसलिए इबादत के मानी 'बन्दगी और ग़ुलामी' के हुए। जो शख़्स किसी का बन्दा हो, अगर वह उसकी ख़िदमत में बन्दा बनकर रहे और उसके साथ इस तरह पेश आए जिस तरह मालिक के साथ पेश आना चाहिए, तो यह बन्दगी और इबादत है। इसके ख़िलाफ़ जो शख़्स किसी का बन्दा हो और मालिक से तनख़्वाह भी पूरी-पूरी वुसूल करता हो मगर मालिक के सामने बन्दों की तरह काम न करे तो इसे नाफ़रमानी और सरकशी कहा जाता है। बल्कि ज़्यादा सही लफ़्ज़ों में इसे नमकहरामी कहते हैं।

अब ग़ौर कीजिए कि मालिक के मुक़ाबिले में बन्दों का-सा तरीक़ा इख़तियार करने की सूरत क्या है?

बन्दे का पहला काम यह है कि मालिक ही को मालिक समझे और यह ख़याल करे कि जो मेरा मालिक है, जो मुझे रोज़ी देता है, जो मेरी हिफ़ाज़त और निगहबानी करता है, उसी की वफ़ादारी मुझपर फ़र्ज़ है। उसके सिवा और कोई इसका हक़ नहीं रखता कि मैं उसकी वफ़ादारी करूँ।

बन्दे का दूसरा काम यह है कि हर वक़्त मालिक का कहा माने, उसके हुक्मों को पूरा करे, कभी उसकी ख़िदमत से मुँह न मोड़े और मालिक की मरज़ी के ख़िलाफ़ न ख़ुद अपने दिल से कोई बात करे, न किसी दूसरे शख़्स की बात माने। ग़ुलाम हर वक़्त, हर हाल में ग़ुलाम है। उसे यह कहने का हक़ ही नहीं कि मालिक की फ़लाँ बात मानूँगा और फ़लाँ बात न मानूँगा या इतनी देर के लिए मैं मालिक व आक़ा का ग़ुलाम हूँ और बाक़ी वक़्त में उसकी ग़ुलामी से आज़ाद हूँ।

बन्दे का तीसरा काम यह है कि मालिक का अदब और उसकी इज़्ज़त करे। जो तरीक़ा अदब और इज़्ज़त करने का मालिक ने मुक़र्रर किया हो उसकी पैरवी करे, जो वक़्त सलामी के लिए हाज़िर होने का मालिक ने मुक़र्रर किया हो, उस वक़्त ज़रूर हाज़िर हो और इस बात का सबूत दे कि वह उसकी वफ़ादारी और इताअत में साबित क़दम है।

बस यही तीन चीज़ें हैं जिनसे मिलकर इबादत बनती है। एक मालिक की वफ़ादारी, दूसरी मालिक की इताअत और तीसरी उसका अदब और उसकी ताज़ीम। अल्लाह तआला ने जो यह फ़रमाया कि :

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُوْنَ○

और मैंने जिन्न और इनसानों को इसलिए पैदा किया कि वे मेरी इबादत करें। (क़ुरआन, 51:56)

तो इसका मतलब दरअसल यह है कि अल्लाह तआला ने जिनों और इनसानों को इसलिए पैदा किया है कि वे सिर्फ़ अल्लाह के ही वफ़ादार हों, उसके ख़िलाफ़ किसी और के वफ़ादार न हों। सिर्फ़ अल्लाह के हुक्मों की इताअत करें, उसके ख़िलाफ़ किसी और का हुक्म न मानें और सिर्फ़ उसके आगे अदब और ताज़ीम से सिर झुकाएँ, किसी दूसरे के आगे सिर न झुकाएँ। इन्हीं तीन चीज़ों को अल्लाह ने 'इबादत' के जामेअ लफ़्ज़ में बयान किया है। यही मतलब उन तमाम आयतों का है जिनमें अल्लाह ने अपनी इबादत का हुक्म दिया है। हमारे प्यारे नबी (सल्ल०) और आपसे पहले जितने नबी (अलै०) ख़ुदा की तरफ़ से आए हैं, उन सबकी तालीम का सारा निचोड़ यही है—

أَلاَّ تَعْبُدُوْا إِلاَّ إِيَّاهُ.

अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करो। (क़ुरआन, 17:23)

यानी सिर्फ़ एक बादशाह है जिसका तुम्हें वफ़ादार होना चाहिए, और वह बादशाह 'अल्लाह' है। सिर्फ़ एक क़ानून है जिसकी तुम्हें पैरवी करनी चाहिए, और वह क़ानून 'अल्लाह का क़ानून' है और सिर्फ़ एक ही हस्ती ऐसी है जिसकी तुम्हें पूजा और बन्दगी करनी चाहिए और वह हस्ती अल्लाह की है।

इबादत के ग़लत मफ़हूम के नतीजे

इबादत का यह मतलब अपने दिमाग़ में रखिए और फिर ज़रा मेरे सवालों का जवाब देते जाइए।

आप उस नौकर के बारे में क्या कहेंगे जो मालिक की मुक़र्रर की हुई ड्यूटी पर जाने के बजाए हर वक़्त बस उसके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहे और लाखों बार उसका नाम जपता चला जाए? मालिक उससे कहता है कि जाकर फ़लाँ-फ़लाँ लोगों के हक़ अदा कर, मगर वह जाता नहीं, बल्कि वहीं खड़े-खड़े मालिक को झुक-झुककर दस सलाम करता है और फिर हाथ बाँधकर खड़ा हो जाता है। मालिक उसे हुक्म देता है कि जा फ़लाँ-फ़लाँ

ख़राबियों को मिटा दे, मगर वह एक इंच वहाँ से नहीं हटता और सजदे पर सजदे किए चला जाता है। मालिक हुक्म देता है कि चोर का हाथ काट दे। यह हुक्म सुनकर बस वहीं खड़े-खड़े बहुत सुरीली आवाज़ से 'चोर का हाथ काट दे', 'चोर का हाथ काट दे' बीसियों बार पढ़ता रहता है, मगर एक बार भी ऐसी हुकूमत क़ायम करने की कोशिश नहीं करता जिसमें चोर का हाथ काटा जा सके। क्या आप कह सकते हैं कि यह आदमी वाक़ई मालिक की बन्दगी कर रहा है? अगर आपका कोई नौकर यह तरीक़ा अपनाए तो मैं जानता हूँ कि आप उसे क्या कहेंगे। मगर हैरत है आपपर कि ख़ुदा का जो नौकर ऐसा करता है आप उसे बड़ा इबादतगुज़ार कहते हैं! यह ज़ालिम सुबह से शाम तक ख़ुदा जाने कितनी बार क़ुरआन शरीफ़ में ख़ुदा के हुक्मों को पढ़ता है, मगर उन हुक्मों को पूरा करने के लिए अपनी जगह से हिलता तक नहीं, बल्कि नफ़्ल-पर-नफ़्ल पढ़े जाता है, हज़ार दाना तसबीह पर ख़ुदा का नाम जपता है और सुरीली आवाज़ में क़ुरआन की तिलावत करता रहता है। आप उसकी ये हरकतें देखते हैं और कहते हैं कि कैसा ज़ाहिद, आबिद बन्दा है! यह ग़लतफ़हमी सिर्फ़ इसलिए है कि आप इबादत का सही मतलब नहीं जानते।

एक और नौकर है जो रात-दिन ड्यूटी तो दूसरों की अंजाम देता है, हुक्म दूसरों का सुनता और मानता है, दूसरों के क़ानून पर चलता है और अपने असल मालिक के फ़रमान की हर वक़्त ख़िलाफ़वर्ज़ी किया करता है, मगर सलामी के वक़्त मालिक के सामने हाज़िर हो जाता है और ज़बान से मालिक का ही नाम जपता रहता है। अगर आपमें से किसी शख़्स का नौकर यह तरीक़ा अपनाए तो आप क्या करेंगे? क्या आप उसकी सलामी को उसके मुँह पर न मार देंगे? जब वह ज़बान से आपको आक़ा और मालिक कहेगा तो क्या आप फ़ौरन यह जवाब न देंगे कि तू परले दर्जे का झूठा और बेईमान है। तनख़्वाह मुझसे लेता है और नौकरी दूसरों की करता है। ज़बान से मुझे मालिक कहता है और हक़ीक़त में ग़ैरों की ख़िदमत करता फिरता है? यह तो एक मामूली अक़्ल की बात है जिसे आप में से हर शख़्स समझ सकता है। मगर कैसी हैरत की बात है कि जो लोग रात-दिन ख़ुदा के क़ानून को तोड़ते हैं, काफ़िरों और मुशरिकों के कहने पर चलते हैं और अपनी ज़िन्दगी के मामलों में ख़ुदा के हुक्म की कोई

परवाह नहीं करते! उनकी नमाज़ और रोज़े और तसबीह और तिलावते कुरआन व हज और ज़कात को आप ख़ुदा की इबादत समझते हैं। यह ग़लतफ़हमी भी इसी वजह से है कि आप इबादत के असल मतलब को नहीं जानते हैं।

एक और नौकर की मिसाल लीजिए। मालिक ने अपने नौकरों के लिए जो वर्दी मुक़र्रर की है, नौकर ठीक उसी नाप-तौल के साथ उस वर्दी को पहनता है, बड़े अदब और ताज़ीम के साथ मालिक की ख़िदमत में हाज़िर होता है, हर हुक्म को सुनकर इस तरह झुककर 'सिर आँखों पर' कहता है कि मानो उससे बढ़कर हुक्म माननेवाला नौकर कोई नहीं। सलामी के वक़्त सबसे आगे जाकर खड़ा होता है और मालिक का नाम जपने में तमाम नौकरों से बाज़ी ले जाता है। मगर दूसरी तरफ़ वही नौकर मालिक के दुश्मनों और बाग़ियों की ख़िदमत बजा लाता है, मालिक के ख़िलाफ़ उनकी साज़िशों में हिस्सा लेता है और मालिक के नाम को दुनिया से मिटाने में जो कोशिश भी वे करते हैं उसमें यह कमबख़्त उनका साथ देता है। रात के अँधेरे में तो मालिक के घर में सेंध लगाता है और सुबह बड़े वफ़ादार नौकरों की तरह हाथ बाँधकर मालिक की सेवा में हाज़िर हो जाता है। ऐसे नौकर के बारे में आप क्या कहेंगे? यही ना कि वह मुनाफ़िक़ है, बाग़ी है, नमकहराम है। मगर ख़ुदा के जो नौकर ऐसे हैं उनको आप क्या कहा करते हैं? किसी को 'पीर साहब' और किसी को 'हज़रत मौलाना' और किसी को 'दीनदार', 'मुत्तक़ी' और 'इबादतगुज़ार'। यह सिर्फ़ इसलिए कि आप उनके मुँह पर पूरे नाप की दाढ़ियाँ देखकर, उनके टखनों से दो-दो इंच ऊँचे पाजामे देखकर, उनके माथों पर नमाज़ के घट्टे देखकर और उनकी लम्बी-लम्बी नमाज़ें और मोटी-मोटी तसबीहें देखकर समझते हैं कि बड़े दीनदार और इबादतगुज़ार हैं। यह ग़लतफ़हमी भी इसी वजह से है कि आपने इबादत और दीनदारी का मतलब ही ग़लत समझा है।

आप समझते हैं कि हाथ बाँधकर क़िबले की तरफ़ मुँह करके खड़ा होना, घुटनों पर हाथ रखकर झुकना, ज़मीन पर हाथ टेककर सजदा करना और कुछ मुक़र्रर लफ़्ज़ ज़बान से अदा करना बस यही थोड़े-से काम और हरकात ही इबादत हैं। आप समझते हैं कि रमज़ान की पहली तारीख़ से शव्वाल का चाँद निकलने तक रोज़ाना सुबह से शाम तक भूखे-प्यासे रहने

का नाम इबादत है, आप समझते हैं कि क़ुरआन के कुछ रुकू ज़बान से पढ़ देने का नाम इबादत है; आप समझते हैं कि मक्का शरीफ़ जाकर काबे के गिर्द तवाफ़ करने का नाम इबादत है। ग़रज़ आपने कुछ कामों की ज़ाहिरी शक्लों का नाम इबादत रख छोड़ा है और जब कोई शख़्स इन शक्लों के साथ इन कामों को पूरा कर लेता है तो आप ख़याल करते हैं कि उसने ख़ुदा की इबादत कर ली और

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالإِنْسَ إِلاَّ لِيَعْبُدُوْنِ○

'व मा ख़लक़्तुल् जिन-न वल् इन्-स इल्ला लि यअ्बुदून'

मैंने जिन्न और इनसानों को इसके सिवा किसी और ग़रज़ के लिए पैदा नहीं किया कि वे मेरी इबादत करें।

का मक़सद पूरा हो गया। अब वह अपनी ज़िन्दगी में आज़ाद है कि जो चाहे करे।

इबादत — पूरी ज़िन्दगी में बन्दगी

लेकिन असल हक़ीक़त यह है कि अल्लाह ने जिस इबादत के लिए आपको पैदा किया है और जिसका आपको हुक्म दिया है वह कुछ और ही चीज़ है। वह इबादत यह है कि आप अपनी ज़िन्दगी में हर वक़्त, हर हाल में ख़ुदा के क़ानून पर चलें और हर उस क़ानून की पाबन्दी से आज़ाद हो जाएँ जो अल्लाह के क़ानून के ख़िलाफ़ हो। आपकी हर सरगर्मी उस हद के अन्दर हो जो ख़ुदा ने आपके लिए मुक़र्रर की है। आपका हर काम उस तरीक़े के मुताबिक़ हो जो ख़ुदा ने बता दिया है। इस ढंग से जो ज़िन्दगी आप बिताएँगे, वह पूरी की पूरी इबादत होगी। ऐसी ज़िन्दगी में आपका सोना भी इबादत है और जागना भी, खाना भी इबादत है और पीना भी, चलना-फिरना भी इबादत है और बात करना भी, यहाँ तक कि बीवी के पास जाना और अपने बच्चों को प्यार करना भी इबादत है। जिन कामों को आप बिलकुल दुनियादारी कहते हैं वे सब दीनदारी और इबादत हैं। अगर आप इनको अंजाम देने में ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई हदों का लिहाज़ करें और ज़िन्दगी में हर-हर क़दम पर यह देखकर चलें कि ख़ुदा के नज़दीक जायज़ क्या है और नाजायज़ क्या, हलाल क्या है और हराम क्या, फ़र्ज़

क्या चीज़ की गई है और मना किस चीज़ से किया गया है, किस चीज़ से ख़ुदा ख़ुश होता है और किस चीज़ से नाराज़ होता है? मसलन आप रोज़ी कमाने के लिए निकलते हैं, इस काम में बहुत-से मौक़े ऐसे भी आते हैं जिनमें हराम का माल काफ़ी आसानी के साथ आपको मिल सकता है। अगर आपने ख़ुदा से डरकर वह माल न लिया और सिर्फ़ हलाल की रोटी कमाकर लाए, तो यह जितना वक़्त आपने रोटी कमाने में ख़र्च किया, यह सब इबादत था और यह रोटी घर लाकर जो आपने ख़ुद खाई और बीवी, बच्चों और ख़ुदा के बताए हुए दूसरे हक़दारों को खिलाई, इस सबपर आप अज्र व सवाब के हक़दार हो गए। आपने अगर रास्ता चलने में कोई पत्थर या काँटा हटा दिया, इस ख़याल से कि ख़ुदा के बन्दों को तकलीफ़ न पहुँचे, तो यह भी इबादत है। आपने अगर बीमार की ख़िदमत की या किसी अंधे को रास्ता चलाया या किसी मुसीबत के मारे हुए की मदद की तो यह भी इबादत है। आपने अगर बातचीत करने में झूठ से, ग़ीबत से, गाली बकने और दिल दुखाने से परहेज़ किया और ख़ुदा से डरकर सिर्फ़ हक़ बात की, तो जितना वक़्त आपने बातचीत में गुज़ारा, वह सब इबादत में लगा।

इसलिए ख़ुदा की असली इबादत यह है कि होश सँभालने के बाद से मरते दम तक आप ख़ुदा के क़ानून पर चलें और उसके हुक्म के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारें। इस इबादत के लिए कोई वक़्त मुक़र्रर नहीं है। यह इबादत हर वक़्त होनी चाहिए। इस इबादत के लिए कोई एक शक्ल नहीं है, हर काम और हर शक्ल में उसी की इबादत होनी चाहिए। जब आप यह नहीं कह सकते कि मैं फ़लाँ वक़्त ख़ुदा का बन्दा हूँ और फ़लाँ वक़्त उसका बन्दा नहीं हूँ, तो आप यह भी नहीं कह सकते कि फ़लाँ वक़्त उसकी बन्दगी और इबादत के लिए है और फ़लाँ वक़्त उसकी इबादत और बन्दगी के लिए नहीं है।

भाइयो! आपको इबादत का मतलब मालूम हो गया और यह भी मालूम हो गया कि ज़िन्दगी में हर वक़्त और हर हाल में ख़ुदा की बन्दगी और उसके हुक्म पर चलने का नाम ही 'इबादत' है। अब आप पूछेंगे कि यह नमाज़, रोज़ा और हज वग़ैरह क्या चीज़ें हैं? इसका जवाब यह है कि दरअसल ये इबादतें जो अल्लाह ने आपपर फ़र्ज़ की हैं, उनका मक़सद आपको उस

बड़ी इबादत के लिए तैयार करना है जो आपको ज़िन्दगी में हर वक़्त हर हाल में अदा करनी चाहिए। नमाज़ आपको दिन में पाँच वक़्त याद दिलाती है कि तुम अल्लाह के बन्दे हो, उसी की बन्दगी तुम्हें करनी चाहिए। रोज़ा साल में एक बार और पूरे एक महीने तक आपको इसी बन्दगी के लिए तैयार करता है। ज़कात आपको बार-बार ध्यान दिलाती है कि यह माल जो तुमने कमाया है, वह ख़ुदा की देन है। इसको सिर्फ़ अपने मन की ख़्वाहिशों पर ख़र्च न कर दो, बल्कि अपने मालिक का हक़ अदा करो। हज दिल पर ख़ुदा की मुहब्बत और उसकी बड़ाई का ऐसा नक़्श बिठाता है कि एक बार अगर वह बैठ जाए तो सारी ज़िन्दगी इसका असर दिल से दूर नहीं हो सकता। इन सब इबादतों को अदा करने के बाद अगर आप इस लायक़ हो गए कि आपकी सारी ज़िन्दगी ख़ुदा की इबादत बन जाए तो बेशक आपकी नमाज़, नमाज़ है और रोज़ा, रोज़ा है; ज़कात, ज़कात है और हज, हज है। लेकिन अगर यह मक़सद पूरा न हुआ तो सिर्फ़ रुकूअ् और सज्दा करने और भूख-प्यास के साथ दिन गुज़ारने और हज की रस्में अदा करने और ज़कात की रक़म निकाल देने से कुछ हासिल नहीं। इन ज़ाहिरी तरीक़ों की मिसाल तो ऐसी है जैसे एक जिस्म कि अगर उसमें जान है, वह चलता-फिरता है और काम करता है तो बेशक एक ज़िन्दा इनसान है, लेकिन अगर उसमें जान ही नहीं तो वह एक मुर्दा-लाश है। मुर्दे के हाथ, पाँव, आँख, नाक सब कुछ होते हैं मगर उसमें जान ही नहीं होती, इसलिए आप उसे मिट्टी में दबा देते हैं। इसी तरह अगर नमाज़ के अरकान पूरे अदा हों या रोज़े की शर्तें पूरी अदा कर दी जाएँ, मगर ख़ुदा का डर, उसकी मुहब्बत और उसकी वफ़ादारी व इताअत न हो, जिसके लिए नमाज़ और रोज़ा फ़र्ज़ किया गया है, तो वह भी एक बेजान चीज़ होगी।

अगले ख़ुतबों में मैं आपको तफ़सील के साथ बताऊँगा कि जो इबादतें फ़र्ज़ की गई हैं, उनमें से हर एक किस तरह उस बड़ी इबादत के लिए इनसान को तैयार करती हैं, और अगर इन इबादतों को आप समझकर अदा करें और उनका असल मक़सद पूरा करने की कोशिश करें तो इससे आपकी ज़िन्दगी पर क्या असर पड़ सकता है?

नमाज़

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में मैंने आपके सामने इबादत का असल मतलब बयान किया था और यह वादा किया था कि इस्लाम में जो इबादतें फ़र्ज़ की गई हैं उनके बारे में आपको बताऊँगा कि ये इबादतें किस तरह आदमी को उस बड़ी और असली इबादत के लिए तैयार करती हैं जिसके लिए अल्लाह ने जिन्न और इनसान को पैदा किया है। इस सिलसिले में सबसे बड़ी और सबसे अहम चीज़ नमाज़ है और आज के ख़ुतबे में सिर्फ़ इसी के बारे में आपसे कुछ बयान करूँगा।

इबादत का अस्ल मफ़हूम

यह तो आपको मालूम हो चुका है कि इबादत असल में बन्दगी को कहते हैं। और जब आप ख़ुदा के बन्दे ही पैदा हुए हैं तो आप किसी वक़्त, किसी हाल में भी उसकी बन्दगी से आज़ाद नहीं हो सकते। जिस तरह आप यह नहीं कह सकते कि मैं इतने घण्टे या इतने मिनटों के लिए ख़ुदा का बन्दा हूँ और बाक़ी वक़्त में मैं उसका बन्दा नहीं हूँ, इसी तरह आप यह भी नहीं कह सकते कि मैं इतना वक़्त ख़ुदा की इबादत में सर्फ़ करूँगा और बाक़ी वक़्तों में मुझे आज़ादी है कि जो चाहूँ करूँ। आप तो ख़ुदा के पैदाइशी ग़ुलाम हैं। उसने आपको बन्दगी ही के लिए पैदा किया है। इसलिए आपकी सारी ज़िन्दगी उसकी बन्दगी में सर्फ़ होनी चाहिए और कभी एक लम्हे के लिए आपको उसकी इबादत से ग़ाफ़िल नहीं होना चाहिए।

यह भी मैं आपको बता चुका हूँ कि इबादत के मानी दुनिया के काम-काज से अलग होकर एक कोने में बैठ जाने और अल्लाह-अल्लाह करने के नहीं हैं, बल्कि हक़ीक़त में इबादत के मानी यह हैं कि इस दुनिया में आप जो कुछ भी करें, ख़ुदा के क़ानून के मुताबिक़ करें। आपका सोना और जागना, आपका खाना और पीना, आपका चलना और फिरना, ग़रज़ कि सब कुछ ख़ुदा के क़ानून की पाबन्दी में हो। आप जब अपने घर

में बीवी-बच्चों, भाई-बहनों और रिश्तेदारों के पास हों तो उनके साथ इस तरह पेश आएँ, जिस तरह ख़ुदा ने हुक्म दिया है। जब अपने दोस्तों में हँसें और बोलें, उस वक़्त भी आपको ख़याल रहे कि हम ख़ुदा की बन्दगी से आज़ाद नहीं हैं। जब आप रोज़ी कमाने के लिए निकलें और लोगों से लेन-देन करें, उस वक़्त भी एक-एक बात और एक-एक काम में ख़ुदा के हुक्मों का ख़याल रखें और कभी उस हद से न बढ़ें जो ख़ुदा ने मुक़र्रर कर दी है। जब आप रात के अँधेरे में हों और कोई गुनाह इस तरह कर सकते हों कि दुनिया में कोई आपको देखनेवाला न हो, उस वक़्त भी आपको याद रहे कि ख़ुदा आपको देख रहा है और हक़ीक़त में डर उसी का होना चाहिए न कि दुनिया के लोगों का। जब आप जंगल में अकेले जा रहे हों और वहाँ कोई जुर्म इस तरह कर सकते हों कि किसी पुलिसमैन और किसी गवाह का खटका न हो तो उस वक़्त भी आप ख़ुदा को याद करके डर जाएँ और जुर्म से हाथ खींच लें। जब आप झूठ, बेईमानी और ज़ुल्म से बहुत-सा नफ़ा कमा सकते हों और कोई आपको रोकनेवाला न हो तो उस वक़्त भी आप ख़ुदा से डरें और उस फ़ायदे को इसलिए छोड़ दें कि ख़ुदा इससे नाराज़ होगा। और जब सच्चाई और ईमानदारी में आपको सरासर नुक़सान पहुँच रहा हो, उस वक़्त भी आप नुक़सान उठाना पसन्द कर लें, सिर्फ़ इसलिए कि ख़ुदा इससे ख़ुश होगा। इस तरह सिर्फ़ दुनिया को छोड़कर कोनों और गोशों में जा बैठना और तसबीह हिलाना इबादत नहीं है, बल्कि दुनिया के धंधों में फँसकर ख़ुदा के क़ानून की पाबन्दी करना इबादत है। अल्लाह के ज़िक्र का मतलब यह नहीं है कि ज़बान पर अल्लाह-अल्लाह जारी हो, बल्कि असल अल्लाह का ज़िक्र यह है कि दुनिया के झगड़ों और बखेड़ों में फँसकर भी आपको हर वक़्त ख़ुदा याद रहे, जो चीज़ें ख़ुदा से ग़ाफ़िल करनेवाली हैं उनमें मशगूल हों और फिर ख़ुदा से ग़ाफ़िल न हों। दुनिया की ज़िन्दगी में जहाँ ख़ुदाई क़ानून को तोड़ने के बहुत-से मौक़े बड़े-बड़े फ़ायदों के लालच और नुक़सान का डर लिए हुए आते हैं, वहाँ आप ख़ुदा को याद करें और उसके क़ानून की पैरवी पर क़ायम रहें। यह है ख़ुदा की असली याद। इसका नाम है ज़िक्रे इलाही और इसी ज़िक्र की तरफ़ क़ुरआन मजीद में इशारा किया गया है—

فَاِذَا قُضِيَتِ الصَّلٰوةُ فَانْتَشِرُوْا فِى الْاَرْضِ وَابْتَغُوْا مِنْ فَضْلِ اللّٰهِ وَ اذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ○

यानी, जब नमाज़ हो चुके तो ज़मीन में फैल जाओ, ख़ुदा के फ़ज़्ल यानी हलाल रोज़ी की खोज में दौड़-धूप करो और (इस दौड़-धूप में) ख़ुदा को ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करो, ताकि तुम्हें कामयाबी नसीब हो। (क़ुरआन, 62:10)

नमाज़ के फ़ायदे

इबादत का यह मतलब दिमाग़ में रखिए और ग़ौर कीजिए कि इतनी बड़ी इबादत अंजाम देने के लिए किन-किन चीज़ों की ज़रूरत है और नमाज़ किस तरह ये सब चीज़ें इनसान में पैदा करती है?

बन्दगी का एहसास

सबसे पहले तो इस बात की ज़रूरत है कि आपको बार-बार यह याद दिलाया जाता रहे कि आप ख़ुदा के बन्दे हैं और उसी की बन्दगी आपको हर वक़्त, हर काम में करनी है। यह याद दिलाने की ज़रूरत इसलिए है कि एक शैतान, आदमी के नफ़्स में बैठा हुआ है जो हर वक़्त कहता रहता है कि तू मेरा बन्दा है। और लाखों-करोड़ों शैतान हर तरफ़ दुनिया में फैले हुए हैं और उनमें से हर एक यही कह रहा है कि तू मेरा बन्दा है। इन शैतानों का जादू उस वक़्त तक नहीं उतर सकता जब तक इनसान को दिन में कई-कई बार यह याद न दिलाया जाए कि तू किसी का बन्दा नहीं, सिर्फ़ ख़ुदा का बन्दा है। यही काम नमाज़ करती है। सुबह उठते ही सब कामों से पहले वह आपको यही बात याद दिलाती है। फिर जब आप दिन में काम-काज में लगे रहते हैं, उस वक़्त फिर तीन बार उसी याद को ताज़ा करती है और जब आप रात को सोने के लिए जाते हैं तो आख़िरी बार फिर उसी को दोहराती है। यह नमाज़ का पहला फ़ायदा है और क़ुरआन में इसी वजह से नमाज़ को ज़िक्र कहा गया है, यानी यह ख़ुदा की याद है।

फ़र्ज़-शनासी

फिर चूँकि आपको इस ज़िन्दगी में हर क़दम पर ख़ुदा के हुक्मों को पूरा करना है, इसलिए यह भी ज़रूरी है कि आपमें अपना फ़र्ज़ पहचानने की ख़ूबी पैदा हो और इसके साथ आपको अपना फ़र्ज़ मुस्तैदी से अंजाम देने की आदत भी हो। जो शख़्स यह जानता ही न हो कि फ़र्ज़ का मतलब क्या है, वह तो कभी हुक्मों को पूरा कर ही नहीं सकता और जो शख़्स फ़र्ज़ के माने तो जानता हो, मगर उसकी तरबियत इतनी ख़राब हो कि फ़र्ज़ को फ़र्ज़ जानने के बावजूद वह उसे अदा करने की परवाह न करे, उससे कभी यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि रात-दिन के चौबीस घंटों में जो हज़ारों हुक्म उसे दिए जाएँगे, उनको मुस्तैदी के साथ अंजाम देगा।

इताअत की मश्क़

जिन लोगों को फ़ौज या पुलिस में नौकरी करने का मौक़ा मिला है वे जानते हैं कि इन दोनों नौकरियों में ड्यूटी को समझने और उसे अदा करने की मश्क़ (Excercise) किस तरह कराई जाती है। रात-दिन में कई-कई बार बिगुल बजाया जाता है। सिपाहियों को एक जगह हाज़िर होने का हुक्म दिया जाता है और उनसे परेड कराई जाती है। यह सब इसलिए है कि उनको हुक्म बजा लाने की आदत हो, और उनमें से जो लोग ऐसे सुस्त और नालायक़ हों कि बिगुल की आवाज़ सुनकर भी घर में बैठे रहें या परेड में हुक्म के मुताबिक़ हरकत न करें, उन्हें पहले ही नाकारा समझकर नौकरी से अलग कर दिया जाए।

ठीक इसी तरह नमाज़ भी दिन में पाँच वक़्त बिगुल बजाती है, ताकि अल्लाह के सिपाही उसको सुनकर हर तरफ़ से दौड़े चले आएँ और साबित करें कि वे अल्लाह के हुक्मों को मानने के लिए तैयार हैं। जो मुसलमान इस बिगुल को सुनकर भी बैठा रहता है और अपनी जगह से नहीं हिलता वह असल में यह साबित करता है कि वह या तो फ़र्ज़ को पहचानता ही नहीं या अगर पहचानता है तो वह इतना नालायक़ और नाकारा है कि ख़ुदा की फ़ौज में रहने के क़ाबिल नहीं।

इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो लोग अज़ान की आवाज़

सुनकर अपने घरों से नहीं निकलते, मेरा जी चाहता है कि जाकर उनके घरों में आग लगा दूँ। और यही वजह है कि हदीस में नमाज़ को कुफ़्र और इस्लाम के बीच फ़र्क़ करनेवाली बताया गया है। नबी (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) के ज़माने में कोई ऐसा शख़्स मुसलमान ही नहीं समझा जाता था जो नमाज़ के लिए जमाअत में हाज़िर न होता हो, यहाँ तक कि मुनाफ़िक़ लोग भी, जिन्हें इस बात की ज़रूरत होती थी कि उनको मुसलमान समझा जाए, ऐसा करने पर मजबूर होते थे कि जमाअत से नमाज़ पढ़ें। यही वजह है कि क़ुरआन में जिस चीज़ पर मुनाफ़िक़ों को मलामत की गई है वह यह नहीं है कि वे नमाज़ नहीं पढ़ते, बल्कि यह है कि हारे हुए जी से, बड़ी बददिली के साथ नमाज़ के लिए उठते हैं—

وَإِذَا قَامُوْا إِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۝

और जब वे नमाज़ के लिए उठते हैं तो कसमसाते हुए उठते हैं।
(क़ुरआन, 4:142)

इससे मालूम हुआ कि इस्लाम में किसी ऐसे शख़्स के मुसलमान समझे जाने की गुंजाइश नहीं है जो नमाज़ न पढ़ता हो, इसलिए कि इस्लाम सिर्फ़ अक़ीदा रखनेवाली चीज़ नहीं है, बल्कि अमली चीज़ है और अमली चीज़ भी ऐसी कि ज़िन्दगी में हर वक़्त, हर पल एक मुसलमान को इस्लाम पर अमल करने और कुफ़्र व फ़िस्क़ से लड़ने की ज़रूरत है। ऐसी ज़बरदस्त अमली ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी है कि मुसलमान ख़ुदा के हुक्मों को पूरा करने के लिए हर वक़्त मुस्तैद हों। जो शख़्स इस क़िस्म की मुस्तैदी नहीं रखता, वह इस्लाम के लिए बिलकुल नाकारा है। इसी लिए दिन में पाँच वक़्त नमाज़ फ़र्ज़ की गई, ताकि जो लोग मुसलमान होने का दावा करते हैं, उनका बार-बार इमतिहान लिया जाता रहे कि वे वाक़ई मुसलमान हैं या नहीं और वाक़ई इस अमली ज़िन्दगी में ख़ुदा के हुक्मों को पूरा करने के लिए मुस्तैद हैं या नहीं। अगर वे ख़ुदाई परेड का बिगुल सुनकर हिलते तक नहीं तो साफ़ मालूम हो जाता है कि वे इस्लाम की अमली ज़िन्दगी के लिए तैयार नहीं हैं। इसके बाद उनका ख़ुदा को मानना और रसूल (सल्ल०) को मानना बिलकुल बेमानी है। इसी लिए क़ुरआन में

कहा गया है—

إِنَّهَا لَكَبِيْرَةٌ إِلاَّ عَلَى الْخٰشِعِيْنَ○

यानी, और जो लोग ख़ुदा की बन्दगी और उसका हुक्म मानने के लिए तैयार नहीं हैं, सिर्फ़ उन्हीं को नमाज़ बोझ मालूम होती है। और जिसको नमाज़ बोझ मालूम हो, वह ख़ुद इस बात का सबूत पेश करता है कि वह ख़ुदा की बन्दगी व इताअत के लिए तैयार नहीं है। (क़ुरआन, 2:45)

ख़ुदा का ख़ौफ़ पैदा करना

तीसरी चीज़ ख़ुदा का डर है, जिसको हर वक़्त दिल में ताज़ा रखने की ज़रूरत है। मुसलमान इस्लाम के मुताबिक़ अमल कर ही नहीं सकता जब तक कि उसे यह यक़ीन न हो कि ख़ुदा हर वक़्त, हर जगह उसे देख रहा है। उसकी हर हरकत का ख़ुदा को इल्म है। ख़ुदा अँधेरे में भी उसको देखता है, ख़ुदा तनहाई में भी उसके साथ है। सारी दुनिया से छिप जाना मुमकिन है, मगर ख़ुदा से छिपना मुमकिन नहीं। सारी दुनिया की सज़ाओं से आदमी बच सकता है, मगर ख़ुदा की सज़ा से बचना नामुमकिन है। यही यक़ीन आदमी को ख़ुदा के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी से रोकता है। इसी यक़ीन के ज़ोर से वह हलाल और हराम की उन हदों का लिहाज़ रखने पर मजबूर हो जाता है जो अल्लाह ने ज़िन्दगी के मामलों में क़ायम की हैं। अगर यह यक़ीन कमज़ोर हो जाए तो मुसलमान सही मानों में मुसलमान की तरह ज़िन्दगी बसर कर ही नहीं सकता। इसी लिए अल्लाह ने दिन में पाँच वक़्त नमाज़ फ़र्ज़ की है ताकि वह इस यक़ीन को दिल में बार-बार मज़बूत करती रहे। इसी लिए क़ुरआन में ख़ुद अल्लाह ही ने नमाज़ के इस मक़सद को बयान कर दिया—

إِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَاءِ وَالْمُنْكَرِ○

यानी, नमाज़ वह चीज़ है कि जो आदमी को बदी और बेहयाई से रोकती है। (क़ुरआन, 29:45)

इसकी वजह आप ग़ौर करके ख़ुद समझ सकते हैं। जैसे आप नमाज़ के लिए पाक होकर और वुज़ू करके आते हैं। अगर आप नापाक हों और नहाए बिना आ जाएँ या आपके कपड़े नापाक हों और उन्हीं को पहने हुए आ जाएँ या आपका वुज़ू न हो और आप यह कह दें कि मैं वुज़ू करके आया हूँ तो दुनिया में कौन आपको पकड़ सकता है? लेकिन आप ऐसा नहीं करते, क्यों? इसलिए कि आपको यक़ीन है कि ख़ुदा से यह गुनाह छिप नहीं सकता। इसी तरह नमाज़ में जो चीज़ें धीरे से पढ़ी जाती हैं, अगर उनको आप न पढ़ें तो किसी को ख़बर नहीं हो सकती, मगर आप ऐसा कभी नहीं करते, यह किस लिए? इसी लिए कि आपको यक़ीन है कि ख़ुदा सब कुछ सुन रहा है और आपकी रगे-जाँ से भी ज़्यादा क़रीब है। इसी तरह आप जंगल में भी नमाज़ पढ़ते हैं, रात के अँधेरे में भी नमाज़ पढ़ते हैं, अपने घर में जब अकेले होते हैं उस वक़्त भी नमाज़ पढ़ते हैं, हालाँकि कोई आपको देखनेवाला नहीं होता और किसी को यह मालूम नहीं होता कि आपने नमाज़ नहीं पढ़ी है। इसकी वजह क्या है? यही कि आप छिपकर भी ख़ुदा के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करने से डरते हैं और आपको यक़ीन है कि ख़ुदा से किसी जुर्म को छिपा पाना मुमकिन नहीं। इससे आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि नमाज़ किस तरह ख़ुदा का डर और उसके हाज़िर व नाज़िर, अलीम व ख़बीर होने का यक़ीन आदमी के दिल में बैठाती और ताज़ा करती रहती है। रात-दिन के चौबीस घंटों में आप हर वक़्त ख़ुदा की बन्दगी और इबादत कैसे कर सकते हैं, जब तक कि यह डर और यह यक़ीन आपके दिल में ताज़ा न होता रहे। अगर इस चीज़ से आपका दिल ख़ाली हो तो कैसे मुमकिन है कि रात-दिन जो हज़ारों मामले आपको दुनिया में पेश आते हैं, उनमें आप ख़ुदा से डरकर नेकी पर क़ायम रहेंगे और बदी से बचेंगे।

क़ानूने इलाही से वाक़फ़ियत

चौथी चीज़ जो ख़ुदा की इबादत के लिए सबसे ज़रूरी है वह यह है कि आप ख़ुदा के क़ानून से वाक़िफ़ हों। इसलिए कि अगर आपको क़ानून का इल्म ही न हो तो आप उसकी पाबंदी कैसे कर सकते हैं? यह काम

भी नमाज़ पूरा करती है। नमाज़ में क़ुरआन जो पढ़ा जाता है यह इसी लिए है कि रोज़ाना आप ख़ुदा के हुक्मों और उसके क़ानूनों से वाक़िफ़ होते रहें। जुमा का ख़ुतबा भी इसी लिए है कि आपको इस्लाम की तालीम का इल्म हो। जमाअत के साथ नमाज़ और जुमा से एक फ़ायदा यह भी है कि आलिम और अनपढ़ बार-बार एक जगह इकट्ठा होते रहें और लोगों को हमेशा ख़ुदा के हुक्मों से वाक़िफ़ होने का मौक़ा मिलता रहे। अब यह आपकी बदक़िस्मती है कि आप नमाज़ में जो कुछ पढ़ते हैं, उसे समझने की कोशिश नहीं करते। आपको जुमा के ख़ुतबे भी ऐसे सुनाए जाते हैं जिनसे आपको इस्लाम का कोई इल्म हासिल नहीं होता और नमाज़ की जमाअतों में आकर न आपके पढ़े-लिखे और दीन का इल्म रखनेवाले अपने अनपढ़ भाइयों को कुछ सुनाते हैं और न वे अपने आलिम भाइयों से कुछ पूछते हैं। नमाज़ तो आपको इन सब फ़ायदों का मौक़ा देती है। आप ख़ुद फ़ायदा न उठाएँ तो नमाज़ का क्या क़सूर ?

इजतिमाइयत की मश्क़

पाँचवी चीज़ यह है कि कोई मुसलमान ज़िन्दगी के इस हंगामे में अकेला न हो, बल्कि सब मुसलमान मिलकर एक मज़बूत जमाअत बनें और ख़ुदा की इबादत, यानी उसके हुक्मों की पाबन्दी करने और उसके क़ानून पर अमल करने और उसके क़ानून को दुनिया में जारी करने के लिए एक-दूसरे की मदद करें। आप जानते हैं कि दुनिया में एक तरफ़ मुसलमान, यानी ख़ुदा के फ़रमाँबरदार बन्दे हैं और दूसरी तरफ़ कुफ़्फ़ार, यानी ख़ुदा के नाफ़रमान बन्दे। रात-दिन फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी के बीच कशमकश ज़ारी है। नाफ़रमान ख़ुदा के क़ानून को तोड़ते हैं और उसके ख़िलाफ़ दुनिया में शैतानी क़ानूनों को चलाते हैं। उनके मुक़ाबले में अगर एक-एक मुसलमान अकेले हो तो कामयाब नहीं हो सकता। ज़रूरत इसकी है कि ख़ुदा के फ़रमाँबरदार बन्दे एकजुट होकर बग़ावत और नाफ़रमानी का मुक़ाबला करें और ख़ुदा के क़ानून को लागू करें। यह इजतिमाई ताक़त पैदा करनेवाली चीज़, सारी चीज़ों से बढ़कर, नमाज़ है। पाँच वक़्त की जमाअत, फिर जुमा का बड़ा इजतिमा, फिर ईदों के इजतिमा, ये सब मिलकर मुसलमानों

को एक मज़बूत दीवार की तरह बना देते हैं और उनमें वह भाईचारा और मेल-जोल पैदाकर देते हैं जो रोज़ाना की अमली ज़िन्दगी में मुसलमानों को एक-दूसरे का मददगार बनाने के लिए ज़रूरी है।

नमाज़ में आप क्या पढ़ते हैं?

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में आपको बता चुका हूँ कि नमाज़ किस तरह आदमी को अल्लाह की इबादत, यानी बन्दगी और इताअत, के लिए तैयार करती है। इस सिलसिले में जो कुछ मैंने कहा था, उससे आपने अन्दाज़ा कर लिया होगा कि जो आदमी नमाज़ को सिर्फ़ फ़र्ज़ और ख़ुदा का हुक्म जानकर क़ायदे के साथ अदा करता है, वह अगर नमाज़ की दुआओं का मतलब न समझता हो, तब भी उसके अन्दर ख़ुदा का ख़ौफ़ और उसके हाज़िर व नाज़िर होने का यक़ीन और उसकी अदालत में एक रोज़ हाज़िर होने का अक़ीदा हर वक़्त ताज़ा होता रहता है। उसके दिल में यह अक़ीदा हमेशा ज़िन्दा रहता है कि वह ख़ुदा के सिवा किसी और का बन्दा नहीं और ख़ुदा ही उसका असली बादशाह और हाकिम है। उसके अन्दर फ़र्ज़ को पहचानने की आदत और ख़ुदा के हुक्मों को बजा लाने के लिए मुस्तैदी पैदा होती है और उसमें वे ख़ूबियाँ अपने आप पैदा होने लगती हैं जो इनसान की सारी ज़िन्दगी को ख़ुदा की बन्दगी व इबादत बना देने के लिए ज़रूरी हैं।

अब मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि अगर आदमी इसी नमाज़ को समझकर अदा करे और नमाज़ पढ़ते वक़्त यह भी जानता रहे कि वह क्या पढ़ रहा है तो उसके ख़यालों और उसकी आदतों और ख़स्लतों पर कितना ज़बरदस्त असर पड़ेगा, उसके ईमान की ताक़त किस क़द्र बढ़ती चली जाएगी और उसकी ज़िन्दगी का रंग कैसा पलट जाएगा।

अज़ान और उसके असरात

सबसे पहले अज़ान को लीजिए। दिन में पाँच वक़्त आपको यह कहकर पुकारा जाता है—

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर।

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।

اَشْهَدُ اَنْ لاَّ اِلٰـهَ اِلاَّ اللّٰهُ

अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह।

मैं गवाही देता हूँ कि ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं, कोई बन्दगी का हक़दार नहीं।

اَشْهَدُ أَنَّ مُحَمَّدًا رَّسُوْلُ اللّٰهِ

अश्हदु अन-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह।

मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं।

حَيَّ عَلَى الصَّلٰوةِ

हय-य अलस्सलाह।

आओ नमाज़ के लिए।

حَيَّ عَلَى الْفَلاَحِ

हय-य अलल फ़लाह।

आओ उस काम के लिए जिसमें भलाई ही भलाई है!

اَللّٰهُ اَكْبَرُ اَللّٰهُ اَكْبَرُ

अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर।

अल्लाह सबसे बड़ा है।

لاَ اِلٰـهَ اِلاَّ اللّٰهُ

ला इला-ह इल्लल्लाह।

अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं।

देखिए यह कैसी ज़बरदस्त पुकार है। हर रोज़ पाँच बार यह आवाज़ किस तरह आपको याद दिलाती है कि 'ज़मीन में जितने बड़े ख़ुदाई के दावेदार नज़र आते हैं, सब झूठे हैं। ज़मीन व आसमान में एक ही हस्ती है जिसके लिए बड़ाई है और वही इबादत के लायक़ है। आओ उसकी इबादत करो, उसी की इबादत में तुम्हारे लिए दुनिया और आख़िरत की

भलाई है।' कौन है जो इस आवाज़ को सुनकर हिल न जाएगा? कैसे मुमकिन है कि जिसके दिल में ईमान हो, वह इतनी बड़ी गवाही और ऐसी ज़बरदस्त पुकार सुनकर अपनी जगह बैठा रह जाए और अपने मालिक के आगे सिर झुकाने के लिए दौड़ न पड़े!

वुज़ू

इस आवाज़ को सुनकर आप उठते हैं और सबसे पहले अपना जायज़ा लेकर देखते हैं कि मैं पाक हूँ या नापाक, मेरे कपड़े पाक हैं या नहीं, मेरा वुज़ू है या नहीं। मानो आपको इस बात का एहसास है कि दोनों जहान के बादशाह के दरबार में हाज़िरी का मामला दुनिया के दूसरे सब मामलों से अलग है। दूसरे काम तो हर हाल में किए जा सकते हैं। मगर यहाँ जिस्म और लिबास की पाकी और इस पाकी पर और ज़्यादा पाकी (यानी वुज़ू) के बग़ैर हाज़िरी देना सख़्त बेअदबी है। इस एहसास के साथ आप पहले अपने पाक होने का इतमीनान करते हैं और फिर वुज़ू शुरू कर देते हैं। इस वुज़ू के दौरान में अगर आप अपने मुँह, हाथ-पैर धोने के साथ-साथ अल्लाह का ज़िक्र करते रहें और फ़ारिग़ होकर वह दुआ पढ़ें जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सिखाई है तो सिर्फ़ आपके मुँह, हाथ और पैर ही न धुलेंगे बल्कि साथ-साथ आपका दिल भी धुल जाएगा। वह दुआ यह है—

اَشْهَدُ اَنْ لاَّ إِلٰـهَ إِلاَّ اللّٰهُ وَحْدَهٗ لاَ شَرِيْكَ لَهٗ وَاَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ

وَرَسُوْلُهٗ، اَللّٰهُمَّ اجْعَلْنِىْ مِنَ التَّوَّابِيْنَ وَاجْعَلْنِىْ مِنَ الْمُتَطَهِّرِيْنَ.

अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु, वह्दहु ला शरी-क लहु, व अश्हदु अन-न मुहम्मदन' अब्दुहू व रसूलुहू। अल्लाहुम्मज 'अलनी मिनत्तव्वा बी-न, व ज 'अलनी मिनल मु-त-तह हिरीन।

मैं गवाही देता हूँ कि अकेले एक लाशरीक ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं है और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बन्दे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह! मुझे तौबा करनेवालों में शामिल कर और मुझे पाकीज़गी इख़तियार करनेवाला बना।

नीयत

इसके बाद आप नमाज़ के लिए खड़े होते हैं। मुँह क़िबला के सामने है। पाक-साफ़ होकर दोनों जहान के बादशाह के दरबार में हाज़िर हैं। सबसे पहले आपकी ज़बान से ये अलफ़ाज़ निकलते हैं— 'अल्लाहु अकबर' (अल्लाह सबसे बड़ा है)। इस ज़बरदस्त हक़ीक़त का इक़रार करते हुए आप कानों तक हाथ उठाते हैं, मानो दुनिया और दुनिया की सभी चीज़ों से दस्तबरदार हो रहे हैं। फिर 'अल्लाहु अकबर' कहकर हाथ बाँध लेते हैं, मानो अब आप बिलकुल अपने बादशाह के सामने हाथ बाँधे अदब के साथ खड़े हैं। इसके बाद आप क्या अर्ज़ करते हैं—

तसबीह

سُبْحٰنَكَ اَللّٰهُمَّ وَبِحَمْدِكَ وَتَبَارَكَ اسْمُكَ وَتَعَالٰى جَدُّكَ وَلاَ إِلٰهَ غَيْرُكَ.

सुब्हा-न-क अल्लाहुम-म व बि हमदि-क, व तबा-र कस्मु-क, व त आला जद्दु-क वला इला-ह ग़ैरु-क।

तेरी पाकी बयान करता हूँ ऐ अल्लाह और वह भी तेरी तारीफ़ के साथ! बड़ी बरकतवाला है तेरा नाम; सबसे बुलन्द व बरतर है तेरी बुज़ुर्गी और कोई माबूद नहीं तेरे सिवा।

तअव्वुज़

اَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ.

अ ऊज़ु बिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम।

ख़ुदा की पनाह माँगता हूँ मैं शैतान मरदूद की दरअन्दाज़ी और शरारत से।

तस्मिया

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ط

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

शुरू करता हूँ मैं अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

हम्द

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ

अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन।

तारीफ़ ख़ुदा के लिए है जो सारे जहानवालों का पालनहार है।

اَلرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अर्रहमानिर्रहीम।

निहायत रहमतवाला बड़ा मेहरबान है।

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ

मालिकि यौमिद्दीन।

रोज़े आख़िरत का मालिक है (जिसमें कर्मों का फ़ैसला किया जाएगा और हर एक को उसके किए का बदला मिलेगा)।

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ

इय्या-क नअ़बुदु व इय्या-क नस्तईन।

मालिक! हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझी से मदद माँगते हैं।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ

इहदिनस्सिरातल मुस्तक़ीम।

हमको सीधा रास्ता दिखा।

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ

सिरातल लज़ी-न अनअ़म-त अ़लैहिम।

ऐसे लोगों का रास्ता जिनपर तूने फ़ज़्ल किया और इनाम फ़रमाया।

غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ

ग़ैरिल मग़ज़ूबि अ़लैहिम व लज़्ज़ाल्लीन।

जिनपर तेरा ग़ज़ब नाज़िल नहीं हुआ और जो भटके हुए लोग नहीं हैं।

आमीन ! آمین.

ख़ुदाया ऐसा ही हो! मालिक हमारी इस दुआ को क़बूल कर।

इसके बाद आप क़ुरआन की कुछ आयतें पढ़ते हैं, जिनमें से हर एक में अमृत भरा हुआ है, नसीहत है, इबरत है, सबक़ है और उसी सीधे रास्ते की हिदायत है, जिसके लिए सूरा फ़ातिहा में आप दुआ कर चुके थे। मिसाल के तौर पर क़ुरआन की यह सूरा (103:1-3)—

वलअ़स्र

وَالْعَصْرِ ○ إِنَّ الْاِنْسَانَ لَفِی خُسْرٍ ○

वल अ़सरि इन्नल इनसा-न लफ़ी ख़ुस्र।

ज़माने की क़सम, इनसान घाटे में है।

إِلاَّ الَّذِیْنَ آمَنُوْا وَعَمِلُوْا الصّٰلِحٰتِ.

इल्लल लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्सालिहाति,

मगर घाटे से बचे हुए सिर्फ़ वे लोग हैं जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक अमल किए।

وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ○

व तवासौ बिल हक़्क़ि व तवासौ बिस्सब्र।

और जिन्होंने एक-दूसरे को हक़ पर चलने की हिदायत की और हक़ पर जमे रहने के लिए उभारते रहे।

इससे यह सबक़ मिलता है कि तबाही और नामुरादी से इनसान बस इसी तरह बच सकता है कि ईमान लाए और नेक अमल करे और सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं, बल्कि ईमानदारों की एक जमाअत ऐसी होनी चाहिए जो दीन पर क़ायम होने और क़ायम रहने में एक-दूसरे की मदद करती रहे।

या मिसाल के तौर पर क़ुरआन की यह सूरा (107:1-7)—

अल माऊ़न

اَرَأَيْتَ الَّذِىْ يُكَذِّبُ بِالدِّيْنِ○

अ-र-ऐ तल्लज़ी युकज़्ज़िबु बिद्दीन।

तूने देखा उस शख़्स को जो बदले के दिन को नहीं मानता, वह कैसा आदमी होता है?

فَذٰلِكَ الَّذِىْ يَدُعُّ الْيَتِيْمَ○

फ़ज़ालिकल्लज़ी यदुउ़्उ़ल यतीम।

ऐसा ही आदमी यतीम को धुत्कारता है।

وَلَا يَحُضُّ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ○

वला यहुज़्ज़ु अ़ला तआ़मिल मिसकीन।

और मिसकीन को ख़ुद खाना खिलाना तो दूर रहा, दूसरों से भी यह कहना पसन्द नहीं करता कि ग़रीब को खाना खिला दो।

فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّيْنَ الَّذِيْنَ هُمْ عَنْ صَلَوتِهِمْ سَاهُوْنَ الَّذِيْنَ هُمْ يُرَآءُوْنَ
وَيَمْنَعُوْنَ الْمَاعُوْنَ○

फ़वैलुल लिल् मुसल्लीनल्लज़ी-न हुम अ़न सलातिहिम साहून, अल्लज़ी-न हुम युराऊन, व यम्न‌ऊ़नल् माऊ़न।

तबाही है ऐसे नमाज़ियों के लिए जो (आख़िरत के दिन पर यक़ीन नहीं रखते, इसलिए) नमाज़ से ग़फ़लत करते हैं और पढ़ते भी हैं तो सिर्फ़ दिखावे के लिए और उनके दिल ऐसे छोटे हैं कि ज़रा-ज़रा सी चीज़ें हाजतमन्दों को देते हुए भी उनका दिल दुखता है।

इससे यह सबक़ मिलता है कि आख़िरत का यक़ीन इस्लाम की जान है। इसके बिना आदमी कभी उस रास्ते पर चल ही नहीं सकता जो ख़ुदा का सीधा रास्ता है।

मिसाल के तौर पर क़ुरआन की यह सूरा (104:1-9) देखिए—

हु-म-ज़ह

وَيْلٌ لِّكُلِّ هُمَزَةٍ لُّمَزَةِۨ○

वैलुल्लिकुल्लि हु-म-ज़तिल लु-म-ज़ह।

अफ़सोस है उस शख़्स की हालत पर जो लोगों के ऐब ढूँढ़ता और उनपर आवाज़ें कसता है।

الَّذِىْ جَمَعَ مَالاً وَّعَدَّدَهٗ○

अल्लज़ी ज-म-अ़ मालौं व अ़द्-दह।

रुपया जमा करता और गिन-गिनकर रखता है।

يَحْسَبُ اَنَّ مَالَهٗۤ اَخْلَدَهٗ○

यह-सबु अन-न मा-लहू अख़-ल-दह।

अपने दिल में समझता है कि उसका माल हमेशा रहेगा।

كَلاَّ لَيُنْۢبَذَنَّ فِى الْحُطَمَةِ○

कल्ला ल-युम बज़न-न फ़िल हु-त-मह।

हरगिज़ नहीं, वह एक दिन ज़रूर (मरेगा और) हुतमा में डाला जाएगा।

وَمَآ اَدْرٰكَ مَا الْحُطَمَةُ○

वमा अदरा-क मल हु-त-मह।

और तुम्हें क्या मालूम है कि हुतमा क्या चीज़ है?

نَارُ اللّٰهِ الْمُوْقَدَةُ الَّتِىْ تَطَّلِعُ عَلَى الْاَفْئِدَةِ○

नारुल्लाहिल मू-क-द-तुल्लती तत्तलिउ़ अ़लल अफ़-इदह।

अल्लाह की भड़काई हुई आग, जिसकी लपटें दिलों पर छा जाती हैं।

اِنَّهَا عَلَيْهِمْ مُّؤْصَدَةٌ فِىْ عَمَدٍ مُّمَدَّدَةٍ○

इन्नहा अ़लैहिम मुअ्स-द-तुन फ़ी अ़-म-दिम मुमद-द-दह।

वह ऊँचे-ऊँचे सुतून जैसे शोलों की सूरत में उनको घेर लेगी।

ग़रज़ आप क़ुरआन पाक की जितनी सूरतें या आयतें नमाज़ में पढ़ते हैं वह कोई न कोई ऊँचे दर्जे की नसीहत या हिदायत आपको देती हैं और आपको बताती हैं कि ख़ुदा के हुक्म क्या हैं, जिनके मुताबिक़ आपको दुनिया में चलना चाहिए।

रुकू

इन हिदायतों को पढ़ने के बाद आप

اَللّٰهُ اَكْبَرُ

अल्लाहु अकबर

अल्लाह सबसे बड़ा है।

कहते हुए रुकू करते हैं। घुटनों पर हाथ रखकर अपने मालिक के आगे झुकते हैं और बार-बार कहते हैं:

سُبْحَانَ رَبِّىَ الْعَظِيْمِ

सुब्हा-न रब्बियल अ़ज़ीम।

पाक है मेरा पालनहार जो बड़ा बुज़ुर्ग है।

फिर सीधे खड़े होते हुए कहते हैं:

سَمِعَ اللّٰهُ لِمَنْ حَمِدَهٗ

समि अ़ल्लाहु लिमन हमिदह।

अल्लाह ने सुन ली उस शख़्स की बात जिसने उसकी तारीफ़ बयान की।

और फिर खड़े होकर कहते हैं:

رَبَّنَا لَكَ الْحَمْدُ

रब्बना लकल हम्द।

ऐ हमारे रब! तेरे ही लिए तारीफ़ है।

सजदा

फिर अल्लाहु अकबर कहते हुए सजदे में गिर जाते हैं और बार-बार कहते हैं:

سُبْحٰنَ رَبِّيَ الْاَعْلٰى

सुब्हा-न रब्बियल आला।

पाक है मेरा पालनहार जो सबसे आला व बरतर है।

अत्तहिय्यात

फिर अल्लाहु अकबर कहते हुए सिर उठाते हैं और बड़े अदब से बैठकर यह पढ़ते हैं:

اَلتَّحِيَّاتُ لِلّٰهِ وَالصَّلَوٰتُ وَالطَّيِّبَاتُ

अत्तहिय्यातु लिल्लाहि वस्स-ल-वातु वत्तय्यिबातु।

हमारी सलामियाँ, हमारी नमाज़ें और सारी पाकीज़ा बातें अल्लाह के लिए हैं।

اَلسَّلَامُ عَلَيْكَ اَيُّهَا النَّبِيُّ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ وَبَرَكَاتُهٗ

अस्सलामु अ़लै-क अय्युहन्नबिय्यु व रहमतुल्लाहि व ब-र-कातुहू।

सलाम आप पर ऐ नबी! और अल्लाह की रहमत और बरकतें।

اَلسَّلَامُ عَلَيْنَا وَعَلٰى عِبَادِ اللّٰهِ الصّٰلِحِيْنَ

अस्सलामु अ़लैना व अ़ला इ़बादिल्लाहिस्सालिहीन।

सलामती हो हमपर और अल्लाह के सब नेक बन्दों पर।

اَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَاَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ

अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन-न मुहम्मदन अ़ब्दुहू व रसूलुह।

मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बन्दे और

रसूल हैं।

यह शहादत देते वक़्त आप शहादत की उँगली उठाते हैं, क्योंकि यह नमाज़ में आपके अक़ीदे का एलान है और उसको ज़बान से अदा करते वक़्त ख़ास तौर पर ध्यान और ज़ोर देने की ज़रूरत है। इसके बाद आप दरूद पढ़ते हैं—

दरूद

اَللّٰهُمَّ صَلِّ عَلٰى سَيِّدِنَا وَمَوْلاَنَا مُحَمَّدٍ وَّعَلٰى آلِ مُحَمَّدٍ كَمَا صَلَّيْتَ عَلٰى اِبْرَاهِيْمَ وَعَلٰى آلِ اِبْرَاهِيْمَ إِنَّكَ حَمِيْدٌ مَّجِيْدٌ. اَللّٰهُمَّ بَارِكْ عَلٰى سَيِّدِنَا وَمَوْلاَنَا مُحَمَّدٍ وَّعَلٰى آلِ مُحَمَّدٍ كَمَا بَارَكْتَ عَلٰى اِبْرَاهِيْمَ وَعَلٰى آلِ اِبْرَاهِيْمَ إِنَّكَ حَمِيْدٌ مَّجِيْدٌ.

अल्लाहुम-म सल्लि अ़ला सय्यिदिना व मौलाना मुहम्मदिवँ, व अ़ला आलि मुहम्मदिन, कमा सल्लै-त अ़ला इबराही-म, व अ़ला आलि इबराही-म, इन्न-क हमीदुम्मजीद। अल्लाहुम-म बारिक अ़ला सय्यिदिना, व मौलाना मुहम्मदिवँ व अ़ला आलि मुहम्मदिन, कमा बारक-त अ़ला इबराही-म, व अ़ला आलि इबराही-म, इन्न-क हमीदुम्मजीद।

ख़ुदाया ! रहमत फ़रमा हमारे सरदार और मौला मुहम्मद (सल्ल०) और उनकी आल पर, जिस तरह तूने रहमत फ़रमाई इबराहीम और आले इबराहीम पर, बेशक तू बेहतरीन ख़ूबियोंवाला और बुज़ुर्ग है। और ख़ुदाया ! बरकत नाज़िल फ़रमा हमारे सरदार और मौला मुहम्मद (सल्ल०) और उनकी आल पर, जिस तरह तूने बरकत नाज़िल फ़रमाई इबराहीम आले इबराहीम पर, बेशक तू बेहतरीन ख़ूबियोंवाला और बुज़ुर्ग है।

यह दरूद पढ़ने के बाद आप अल्लाह से दुआ करते हैं—

दुआ

اَللّٰهُمَّ إِنِّیْ اَعُوْذُبِكَ مِنْ عَذَابِ جَهَنَّمَ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْ عَذَابِ الْقَبْرِ وَاَعُوْذُبِكَ مِنْ فِتْنَةِ الْمَسِيْحِ الدَّجَّالِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْ فِتْنَةِ الْمَحْيَا وَالْمَمَاتِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنَ الْمَأْثَمِ وَالْمَغْرَمِ○

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ु बि-क मिन अज़ाबि जहन्न-म, व अऊज़ु बि-क मिन अज़ाबिल क़बरि, व अऊज़ु बि-क मिन फ़ित-नतिल मसीहिद-दज्जालि, व अऊज़ु बि-क मिन फ़ित-नतिल महया वल ममाति। व अऊज़ु बि-क मिनल मा-स-मि, वल मग़रम।

ख़ुदाया! मैं तेरी पनाह माँगता हूँ जहन्नम के अज़ाब से, और तेरी पनाह माँगता हूँ क़ब्र के अज़ाब से, और तेरी पनाह माँगता हूँ उस गुमराह करनेवाले दज्जाल के फ़ितने से जो ज़मीन पर छा जानेवाला है, और तेरी पनाह माँगता हूँ ज़िन्दगी और मौत के फ़ितने से। ख़ुदाया! मैं तेरी पनाह माँगता हूँ बुरे आमाल की ज़िम्मेदारी और क़र्ज़दारी से।

सलाम

यह दुआ पढ़ने के बाद आपकी नमाज़ पूरी हो गई। अब आप मालिक के दरबार से वापस होते हैं, और वापस होकर पहला काम क्या करते हैं? यह कि दाएँ और बाएँ मुड़कर तमाम हाज़िरीन और दुनिया की हर चीज़ के लिए सलामती और रहमत की दुआ करते हैं—

اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ

अस्सलामु अलैकुम व रह्मतुल्लाह।

आपपर सलामती हो और अल्लाह की रहमत।

मानो, यह वह ख़ुशख़बरी है जो ख़ुदा के दरबार से पलटते हुए आप दुनिया के लिए लाए हैं।

यह है वह नमाज़ जो आप सुबह उठकर दुनिया के काम-काज में लगने

से पहले पढ़ते हैं। फिर कुछ घण्टे काम-काज में लगे रहने के बाद दोपहर को ख़ुदा के दरबार में हाज़िर होकर दोबारा यही नमाज़ अदा करते हैं। फिर कुछ घण्टों के बाद तीसरे पहर को फिर यही नमाज़ पढ़ते हैं। फिर कुछ घण्टे और मशग़ूल रहने के बाद शाम को इसी नमाज़ को दुहराते हैं। फिर दुनिया के कामों से छुट्टी पाकर सोने से पहले आख़िरी बार अपने मालिक के सामने जाते हैं। इस आख़िरी नमाज़ का ख़ात्मा वित्र पर होता है, जिसकी तीसरी रकअ्त में आप एक बहुत बड़ा इक़रारनामा अपने मालिक के सामने पेश करते हैं। यह दुआ-ए-क़ुनूत है। क़ुनूत के मानी हैं ख़ुदा के आगे ज़िल्लत व इनकिसारी, इताअत और बन्दगी का इक़रार। यह इक़रार आप किन लफ़्ज़ों में करते हैं ज़रा ध्यान से सुनिए:

दुआए क़ुनूत

اَللّٰهُمَّ إِنَّا نَسْتَعِيْنُكَ وَنَسْتَهْدِيْكَ وَنَسْتَغْفِرُكَ وَنُؤْمِنُ بِكَ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْكَ وَنُثْنِي عَلَيْكَ الْخَيْرَ كُلَّهٗ.

अल्लाहुम-म इन्ना नस्तईनु-क व नस्तहदी-क व नस्तग़फ़िरु-क व नुअ्मिनु बि-क व न-त-वक्कलु अ़लै-क व नुस्नी अ़लै-कल ख़ै-र कुल्लहू।

ख़ुदाया! हम तुझसे मदद माँगते हैं, तुझसे ही हिदायत माँगते हैं, तुझसे गुनाहों की माफ़ी चाहते हैं, तुझपर ईमान लाते हैं और तेरे ही ऊपर भरोसा करते हैं, और सारी तारीफ़ तेरे ही लिए ख़ास करते हैं।

نَشْكُرُكَ وَلَا نَكْفُرُكَ وَنَخْلَعُ وَنَتْرُكُ مَنْ يَّفْجُرُكَ.

व नशकुरु-क वला नकफ़ुरु-क व नख़्लउ़ व नतरुकु मय्यफ़्जुरु-क।

हम तेरा शुक्र अदा करते हैं, नाशुक्री नहीं करते। हम हर उस शख़्स को छोड़ देंगे और उससे ताल्लुक़ ख़त्म कर देंगे जो तेरा नाफ़रमान हो।

اَللّٰهُمَّ إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَلَكَ نُصَلِّي وَنَسْجُدُ وَإِلَيْكَ نَسْعٰى وَنَحْفِدُ.

अल्लाहुम-म इय्या-क नअ़बुदु व ल-क नुसल्ली व नस्जुदु व इलै-क नसआ़ व नहफ़िदु।

ख़ुदाया, हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और तेरे ही लिए नमाज़ पढ़ते और सज्दा करते हैं और हमारी सारी कोशिशें और सारी दौड़-धूप तेरी ही ख़ुशी के लिए है।

وَنَرْجُوْرَحْمَتَكَ وَنَخْشٰى عَذَابَكَ إِنَّ عَذَابَكَ بِالْكُفَّارِ مُلْحِقٌ.

व नरजू रह-म-त-क व नख़शा अ़ज़ा-ब-क इन-न अ़ज़ा-ब-क बिल कुफ़्फ़ारि मुलहिक़।

और हम तेरी ही रहमत के उम्मीदवार हैं और तेरे अज़ाब से डरते हैं। बेशक तेरा सख़्त अज़ाब ऐसे लोगों पर पड़ेगा जो नाफ़रमान हैं।

नमाज़ और तामीरे सीरत

मुसलमान भाइयो! ज़रा सोचिए, जो शख़्स दिन में पाँच बार अज़ान की यह आवाज़ सुनता हो और समझता हो कि कितनी बड़ी चीज़ की शहादत दी जा रही है और कैसे ज़बरदस्त बादशाह के हुज़ूर में बुलाया जा रहा है, और जो शख़्स हर बार इस पुकार को सुनकर अपने सारे काम-काज छोड़ दे और उस पाक ज़ात की तरफ़ दौड़े, जिसे वह अपना और सारी कायनात का मालिक जानता है, और जो शख़्स हर नमाज़ से पहले अपने जिस्म और दिल को वुज़ू करके पाक करे, और जो शख़्स कई-कई बार नमाज़ में वे सारी बातें समझ-बूझकर अदा करे जो अभी आपके सामने मैंने बयान की हैं, तो कैसे मुमकिन है कि उसके दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ पैदा न हो? उसको ख़ुदा के हुक्मों के ख़िलाफ़ चलते हुए शर्म न आए? उसका दिल गुनाहों और बदकारियों के काले धब्बे लेकर बार-बार ख़ुदा के सामने हाज़िर होते हुए लरज़ न उठे? किस तरह मुमकिन है कि आदमी नमाज़ में ख़ुदा की बन्दगी का इक़रार और उसकी इताअत का इक़रार, उसके मालिके यौमिद्दीन होने का इक़रार करके जब अपने काम-काज की तरफ़ वापस आए तो झूठ बोले, बेईमानी करे, लोगों के हक़ मारे, रिश्वत

खाए और खिलाए, सूद खाए और खिलाए, ख़ुदा के बन्दों को दुख पहुँचाए, फ़हश और बेहयाई और बदकारी करे और फिर इन सब आमाल का बोझ लादकर दोबारा ख़ुदा के सामने हाज़िर होने और इन्हीं सब बातों का इक़रार करने की हिम्मत कर सके? हाँ, यह कैसे मुमकिन है कि आप जान-बूझकर ख़ुदा से छत्तीस बार इक़रार करें कि हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और तुझ ही से मदद माँगते हैं और फिर ख़ुदा के सिवा दूसरों की बन्दगी करें और दूसरों के आगे मदद के लिए हाथ फैलाएँ। एक बार आप इक़रार करके उसके ख़िलाफ़ चलेंगे तो दूसरी बार ख़ुदा के दरबार में जाते हुए आपका ज़मीर मलामत करेगा और शर्मिन्दगी पैदा होगी, दूसरी बार फिर ख़िलाफ़ चलेंगे तो और ज़्यादा शर्म आएगी, और ज़्यादा दिल अन्दर से लानत भेजेगा। सारी उम्र यह कैसे हो सकता है कि रोज़ाना पाँच-पाँच बार नमाज़ पढ़ें और फिर भी आपके आमाल न सुधरें, आपके अख़लाक़ की इसलाह न हो और आपकी ज़िन्दगी की काया न पलटे? इसी लिए अल्लाह तआला ने नमाज़ की यह ख़ासियत बयान की है—

إِنَّ الصَّلٰوةَ تَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَاءِ وَالْمُنْكَرِ

बेशक नमाज़ आदमी को बेहयाई और बदकारी से रोकती है।

लेकिन अगर कोई ऐसा है कि इतनी ज़बरदस्त इसलाह करनेवाली चीज़ से भी उसकी इसलाह नहीं होती तो यह उसके स्वभाव की ख़राबी है, नमाज़ की ख़राबी नहीं। पानी और साबुन की ख़ूबी मैल को साफ़ करना है, लेकिन अगर कोयले की स्याही इससे दूर न हो तो यह पानी और साबुन का क़सूर नहीं, इसकी वजह कोयले की अपनी स्याही है।

भाइयो! आपकी नमाज़ों में एक बहुत बड़ी कमी है, और वह यह है कि आप नमाज़ में जो कुछ पढ़ते हैं, उसको समझते नहीं। अगर आप थोड़ा-सा वक़्त लगाएँ तो इन सारी दुआओं का मतलब अपनी ज़बान में याद कर सकते हैं। इससे यह फ़ायदा होगा कि आप जो कुछ पढ़ेंगे, उसे समझते भी जाएँगे।

नमाज़ जमाअत के साथ

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में तो मैंने आपके सामने सिर्फ़ नमाज़ के फ़ायदे बयान किए थे, जिनसे आपको अन्दाज़ा हो चुका होगा कि यह इबादत अपनी जगह पर कैसी ज़बरदस्त चीज़ है, किस तरह आदमी में बन्दगी का कमाल पैदा करती है और किस तरह उसको बन्दगी का हक़ अदा करने के क़ाबिल बनाती है। अब मैं आपको जमाअत से नमाज़ पढ़ने के फ़ायदे बताना चाहता हूँ, जिन्हें सुनकर आप अन्दाज़ा करेंगे कि अल्लाह तआला ने अपनी मेहरबानी से किस तरह एक ही चीज़ में हमारे लिए सारी नेमतें इकट्ठा कर दी हैं। अव्वल तो नमाज़ ख़ुद ही क्या कम थी कि इसके साथ जमाअत का हुक्म देकर इसकी अहमियत और बढ़ा दी गई और इसके अन्दर वह ताक़त भर दी गई है जो इनसान की काया पलट देने में अपना जवाब नहीं रखती।

नमाज़ किन ख़ूबियों को पैदा करती है?

मैं पहले आप से यह कह चुका हूँ कि ज़िन्दगी में हर वक़्त अपने आपको ख़ुदा का बन्दा समझना, फ़रमाँबरदार ग़ुलाम की तरह मालिक की मरज़ी का ताबेदार बनकर रहना और मालिक का हुक्म पूरा करने के लिए हर वक़्त तैयार रहना असली इबादत है और नमाज़ इसी इबादत के लिए इनसान को तैयार करती है। यह भी आपको बता चुका हूँ कि इस इबादत के लिए इनसान में जितनी ख़ूबियों की ज़रूरत है वे सब नमाज़ पैदा करती है। बन्दगी का एहसास, ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) और उसकी किताब पर ईमान, आख़िरत का यक़ीन, ख़ुदा का ख़ौफ़, ख़ुदा को ग़ैब की ख़बर रखनेवाला समझना और उसको हर वक़्त अपने से क़रीब समझना, ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी के लिए हर हालत में तैयार रहना, ख़ुदा के हुक्मों से वाक़िफ़ होना, ये और ऐसी ही तमाम ख़ूबियाँ 'नमाज़' आदमी के अन्दर पैदा कर देती है जो उसको सही मानों में ख़ुदा का बन्दा बनाने के लिए ज़रूरी हैं।

मुकम्मल बन्दगी तन्हा मुमकिन नहीं

मगर आप ज़रा ग़ौर से देखें तो आपको मालूम हो जाएगा कि इनसान अपनी जगह चाहे वह कितना ही कामिल हो, वह ख़ुदा की बन्दगी का हक़ अदा नहीं कर सकता जब तक कि दूसरे बन्दे भी उसके मददगार न हों। ख़ुदा के तमाम हुक्मों को पूरा नहीं कर सकता जब तक कि वे बहुत-से लोग, जिनके साथ रात-दिन उसका रहना-सहना है, जिनसे हर वक़्त उसको मामला पेश आता है, इस फ़रमाँबरदारी में उसका साथ न दें। आदमी दुनिया में अकेला तो पैदा नहीं हुआ है, न ही अकेला रहकर कोई काम कर सकता है। उसकी सारी ज़िन्दगी अपने भाई-बंधुओं, दोस्तों और पड़ोसियों, मामलादारों और ज़िन्दगी के बेशुमार साथियों से हज़ारों क़िस्म के ताल्लुक़ात में जकड़ी हुई है। अल्लाह के अहकाम भी तनहा एक आदमी के लिए नहीं हैं, बल्कि इन्हीं ताल्लुक़ात को ठीक करने के लिए हैं। अब अगर ये सब लोग ख़ुदा के हुक्म बजा लाने में एक-दूसरे का साथ दें और एक-दूसरे की मदद करें तो सब फ़रमाँबरदार बन्दे बन सकते हैं। और अगर सब नाफ़रमानी पर तुले हुए हों या उनके ताल्लुक़ात इस क़िस्म के हों कि ख़ुदा के हुक्म बजा लाने में एक-दूसरे की मदद न करें तो एक अकेले आदमी के लिए नामुमकिन है कि वह अपनी ज़िन्दगी में ख़ुदा के क़ानून पर ठीक-ठीक अमल कर सके।

तन्हा शैतान का मुक़ाबला मुमकिन नहीं

इसके साथ जब आप क़ुरआन को ग़ौर से पढ़ेंगे तो आपको मालूम होगा कि ख़ुदा का हुक्म सिर्फ़ यही नहीं है कि आप ख़ुद अल्लाह के फ़रमाँबरदार बन्दे बनें, बल्कि साथ-साथ यह हुक्म भी है कि दुनिया को ख़ुदा का ताबेअ् और फ़रमाँबरदार बनाएँ, दुनिया में ख़ुदा के क़ानून को फैलाएँ और जारी करें। शैतान का क़ानून जहाँ-जहाँ चल रहा हो, उसको मिटा दें और उसकी जगह 'अल्लाह वह्दहू ला शरी-क लहू' के क़ानून की हुकूमत क़ायम करें। यह ज़बरदस्त ख़िदमत जो अल्लाह ने आपके सुपुर्द की है, उसको एक अकेला मुसलमान अंजाम नहीं दे सकता। और अगर करोड़ों मुसलमान भी हों, मगर अलग-अलग रह कर कोशिश करें, तब भी वे शैतान के बन्दों

की एक मुनज़्ज़म ताक़त को नीचा नहीं दिखा सकते। इसके लिए ज़रूरत है कि मुसलमान एक जत्था बनें, एक-दूसरे के मददगार हों, एक-दूसरे के मुहाफ़िज़ बन जाएँ और सब मिलकर एक ही मक़सद के लिए कोशिश करें।

हुक्म की इताअत मतलूब है

फिर ज़्यादा गहरी नज़र से जब आप देखेंगे तो यह बात आपपर खुलेगी कि इतने बड़े मक़सद के लिए सिर्फ़ मुसलमानों का मिल जाना ही काफ़ी नहीं है, बल्कि इसकी भी ज़रूरत है कि यह मिल जाना बिलकुल ठीक तरीक़े पर हो, यानी मुसलमानों की जमाअत इस तरह बने कि एक-दूसरे के साथ उनके ताल्लुक़ात ठीक-ठीक जैसे होने चाहिएँ वैसे ही हों, उनके आपस के ताल्लुक़ में कोई ख़राबी न रहने पाए। उनमें पूरी एकता हो। वे एक सरदार की इताअत करें। उसके हुक्म पर हरकत करने की आदत उनमें पैदा हो और वे यह भी समझ लें कि अपने सरदार की फ़रमाँबरदारी उन्हें किस तरह और कहाँ तक करनी चाहिए और नाफ़रमानी के मौक़े कौन-कौन से हैं।

नमाज़ बाजमाअत के फ़ायदे

इन सब बातों को नज़र में रखकर देखिए कि नमाज़ बाजमाअत किस तरह ये सारे काम करती है।

एक आवाज़ पर इकट्ठा होना

हुक्म है कि अज़ान की आवाज़ सुनकर अपने तमाम काम छोड़ दो और मसजिद की तरफ़ आ जाओ। यह बुलावे की पुकार सुनकर हर तरफ़ से मुसलमानों का उठना और एक मरकज़ पर जमा हो जाना उनके अन्दर वही कैफ़ियत पैदा करता है जो फ़ौज की होती है। फ़ौजी सिपाही जहाँ-जहाँ भी हों, बिगुल की आवाज़ सुनते ही समझ लेते हैं कि हमारा कमाण्डर बुला रहा है। इस पुकार पर सबके दिल में एक ही कैफ़ियत पैदा होती है, यानी कमाण्डर के हुक्म की पैरवी का ख़याल और इस ख़याल के मुताबिक़

सब एक ही काम करते हैं, यानी अपनी-अपनी जगह से उस आवाज़ पर दौड़ पड़ते हैं और हर तरफ़ से सिमटकर एक जगह इकट्ठा हो जाते हैं। फ़ौज में यह तरीक़ा किस लिए अपनाया गया है? इसी लिए कि अव्वल तो हर-हर सिपाही में अलग-अलग हुक्म मानने और उसपर मुस्तैदी के साथ अमल करने की ख़ूबी और आदत पैदा हो और फिर साथ ही साथ ऐसे तमाम फ़रमाँबरदार सिपाही मिलकर एक गिरोह, एक जत्था, एक टीम भी बन जाएँ और उनमें यह आदत भी पैदा हो जाए कि कमाण्डर के हुक्म पर एक ही वक़्त में एक ही जगह सब इकट्ठा हो जाया करें, ताकि जब कोई मुहिम पेश आए तो सारी फ़ौज एक आवाज़ पर एक मक़सद के लिए इकट्ठी होकर काम कर सके। ऐसा न हो कि सारे सिपाही अपनी-अपनी जगह तो बड़े तीसमार ख़ाँ हों, मगर जब काम के मौक़े पर उनको पुकारा जाए तो वे जमा होकर न लड़ सकें, बल्कि हर एक अपनी-अपनी मरज़ी के मुताबिक़ जिधर चाहे चला जाए। ऐसी हालत अगर किसी फ़ौज की हो तो उसके हज़ार बहादुर सिपाहियों को दुशमन के पचास सिपाहियों का एक दस्ता अलग-अलग पकड़ के ख़त्म कर सकता है। बस इसी बुनियाद पर मुसलमानों के लिए भी यह क़ायदा मुक़र्रर किया गया है कि जो मुसलमान जहाँ अज़ान की आवाज़ सुने, सब काम-काज छोड़कर अपने क़रीब की मसजिद का रुख़ करे; ताकि सब मुसलमान मिलकर अल्लाह की फ़ौज बन जाएँ। इस तरह इकट्ठे होने की मश्क़ उनको रोज़ाना पाँच वक़्त कराई जाती है, क्योंकि दुनिया की सारी फ़ौजों से बढ़कर कड़ी ड्यूटी इस ख़ुदाई फ़ौज की है। दूसरी फ़ौजों के लिए तो मुद्दतों में कभी एक मुहिम पेश आती है और इसकी ख़ातिर उनको सारी फ़ौजी मश्क़ें कराई जाती हैं। मगर ख़ुदाई फ़ौज को हर वक़्त शैतानी ताक़तों से लड़ना है और हर वक़्त अपने कमाण्डर के हुक्मों को पूरा करना है, इसलिए इसके साथ यह भी बहुत बड़ी रिआयत है कि इसे रोज़ाना सिर्फ़ पाँच बार ख़ुदाई बिगुल की आवाज़ पर दौड़ने और ख़ुदाई छावनी यानी मसजिद में इकट्ठा होने का हुक्म दिया गया है।

बामक़सद इजतिमा

यह तो सिर्फ़ अज़ान का फ़ायदा था। अब आप मसजिद में जमा होते हैं, और सिर्फ़ इस जमा होने में बेशुमार फ़ायदे हैं। यहाँ जो आप इकट्ठा

हुए तो आपने एक-दूसरे को देखा, पहचाना, एक-दूसरे से वाक़िफ़ हुए। यह देखना, पहचानना, वाक़िफ़ होना किस हैसियत से है? इस हैसियत से कि आप सब ख़ुदा के बन्दे हैं, एक रसूल (सल्ल०) के पैरौ हैं, एक किताब के माननेवाले हैं और एक ही मक़सद आप सबकी ज़िन्दगी का मक़सद है। इसी एक मक़सद को पूरा करने के लिए आप यहाँ इकट्ठा हुए हैं और इसी मक़सद को यहाँ से वापस जाकर भी आपको पूरा करना है। इस क़िस्म की आशनाई, इस क़िस्म की वाक़फ़ियत आप में ख़ुद-बख़ुद यह ख़याल पैदा कर देती है कि आप सब एक जमाअत, एक गिरोह और एक पार्टी हैं, एक ही फ़ौज के सिपाही हैं, एक-दूसरे के भाई हैं। दुनिया में आपके मक़सद, आपके नुक़सान और आपके फ़ायदे एक ही हैं और आपकी ज़िन्दगियाँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

आपसी हमदर्दी

फिर आप जो एक-दूसरे कों देखेंगे, तो ज़ाहिर है कि आँखें खोलकर ही देखेंगे और यह देखना भी दुशमन का दुशमन को देखना नहीं, बल्कि दोस्त को दोस्त का और भाई को भाई का देखना होगा। इस नज़र से जब आप देखेंगे कि मेरा कोई भाई फटे-पुराने कपड़ों में है, कोई परेशान हाल है, कोई भूखा है, कोई मजबूर है, कोई लंगड़ा-लूला या अन्धा है तो ज़रूर ही आपके दिल में हमदर्दी पैदा होगी। आपमें से जो ख़ुशहाल हैं वे ग़रीबों और मजबूरों पर रहम खाएँगे। जो बदहाल हैं उन्हें अमीरों तक पहुँचने और उनसे अपना हाल कहने की हिम्मत पैदा होगी। किसी के बारे में मालूम होगा कि वह बीमार है या किसी मुसीबत में फँस गया है इसलिए मसजिद में नहीं आया तो उसकी बीमारपुर्सी को जाने का ख़याल पैदा होगा। किसी के मरने की ख़बर मिली तो सब मिलकर उसके लिए नमाज़े जनाज़ा पढ़ेंगे और ग़म के मारे रिश्तेदारों के ग़म में शरीक होंगे। ये सब बातें आपके आपसी मुहब्बत को बढ़ानेवाली और एक-दूसरे का मददगार बनानेवाली हैं।

पाक मक़सद के लिए जमा होना

इसके बाद और ज़रा ग़ौर कीजिए। यहाँ जो आप इकट्ठा हुए हैं तो

एक पाक जगह और पाक मक़सद के लिए इकट्ठा हुए हैं। यह चोरों, शराबियों और जुआरियों की भीड़ नहीं है कि सबके दिल में नापाक इरादे भरे हुए हों। यह तो अल्लाह के बन्दों का इजतिमा है। अल्लाह की इबादत के लिए, अल्लाह के घर में, सब अपने ख़ुदा के सामने बन्दगी का इक़रार करने हाज़िर हुए हैं। ऐसे मौक़े पर पहले तो ईमानदार आदमी ख़ुद ही अपने गुनाहों पर शरमिन्दा होता है, लेकिन अगर उसने कोई गुनाह अपने दूसरे भाई के सामने किया था और वह ख़ुद भी यहाँ मसजिद में मौजूद है, तो सिर्फ़ उसकी निगाहों का सामना हो जाना ही उसके लिए काफ़ी है कि गुनाहगार अपने दिल में कट-कट जाए और अगर कहीं मुसलमानों में एक-दूसरे को नसीहत करने का जज़बा भी मौजूद हो और वे जानते हों कि हमदर्दी व मुहब्बत के साथ एक-दूसरे की इसलाह किस तरह करनी चाहिए, तो यक़ीन जानिए कि यह इजतिमा बड़ी ही रहमत व बरकत का सबब बनेगा। इस तरह सब मुसलमान मिलकर एक-दूसरे की ख़राबियों को दूर करेंगे, एक-दूसरे की कमियों को पूरी करेंगे और पूरी जमाअत नेक और भले लोगों की जमाअत बनती चली जाएगी।

बिरादरी (भाईचारा)

ये सिर्फ़ मसजिद में इकट्ठा होने की बरकतें हैं। इसके बाद यह देखिए कि जमाअत के साथ नमाज़ अदा करने में कितनी बरकतें छिपी हुई हैं। आप सब एक सफ़ (लाइन) में एक-दूसरे के बराबर खड़े होते हैं। न कोई बड़ा है, न छोटा। न कोई ऊँचा है, और न कोई नीचा। ख़ुदा के दरबार में ख़ुदा के सामने सब बराबर हैं। किसी का हाथ लगने और किसी को छू जाने से कोई नापाक नहीं होता। सब पाक हैं इसलिए कि सब इनसान हैं, एक ख़ुदा के बन्दे हैं और एक ही दीन के माननेवाले हैं। आपमें ख़ानदानों और क़बीलों और मुल्कों और ज़बानों का भी कोई फ़र्क़ नहीं। कोई सैयद है, कोई पठान है, कोई राजपूत है, कोई जाट है। कोई किसी मुल्क का रहनेवाला है, कोई किसी मुल्क का। किसी की ज़बान कुछ है और किसी की कुछ। मगर सब एक सफ़ में खड़े एक ख़ुदा की इबादत कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि सब एक क़ौम हैं। यह हसब, नसब, बिरादरियों और क़ौमों का बँटवारा सब झूठा है। सबसे बड़ा रिश्ता आपके बीच ख़ुदा

की बन्दगी और इबादत का रिश्ता है। इसमें जब आप सब एक हैं, तो फिर किसी मामले में भी क्यों अलग हों?

हरकतों में यकसानियत

फिर जब आप एक सफ़ में कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होते हैं तो यह मालूम होता है कि एक फ़ौज अपने बादशाह के सामने ख़िदमत के लिए खड़ी है। सफ़ बाँधकर खड़े होने और मिलकर एक साथ हरकत करने से आपके दिलों में एकता पैदा होती है। आपको यह मश्क़ कराई जाती है कि ख़ुदा की बन्दगी में इस तरह एक हो जाओ कि सबके हाथ एक साथ उठें और सबके पाँव एक साथ चलें, मानो आप दस-बीस या सौ या हज़ार आदमी नहीं हैं, बल्कि मिलकर एक आदमी की तरह बन गए हैं।

दुआएँ

इस जमाअत और इस सफ़बन्दी के बाद आप क्या करते हैं? एक ज़बान होकर अपने मालिक से यह अर्ज़ करते हैं—

إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ○

इय्या-क नअ़बुदु व इय्याक-क नसत ईन।

हम सब तेरी ही इबादत करते हैं और तुझ ही से मदद माँगते हैं।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ○

इहदिनस्सिरातल मुसतक़ीम।

हम सबको सीधे रास्ते पर चला।

رَبَّنَا لَكَ الْحَمْدُ

रब्बना लकल हम्द।

हमारे परवरदिगार! तेरे ही लिए तारीफ़ें हैं।

اَلسَّلَامُ عَلَيْنَا وَعَلٰى عِبَادِ اللّٰهِ الصَّالِحِيْنَ.

अस्सलामु अ़लैना व अ़ला इबादिल्लाहिस्सालिहीन।

हम सबपर सलामती हो और अल्लाह के तमाम नेकबन्दों पर।

फिर नमाज़ ख़त्म करके आप एक-दूसरे के लिए सलामती और रहमत की दुआ करते हैं—

اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ.

अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाह।

इसका मतलब यह हुआ कि आप सब एक-दूसरे की भलाई चाहनेवाले हैं, सब मिलकर एक ही मालिक से सबकी भलाई के लिए दुआ करते हैं। आप अकेले-अकेले नहीं हैं, आपमें से कोई भी अकेला सब कुछ अपने ही लिए नहीं माँगता, बल्कि हर एक की यही दुआ है कि सबपर ख़ुदा का फ़ज़्ल हो, सबको एक ही सीधे रास्ते पर चलने की तौफ़ीक़ बख़्शी जाए और सब ख़ुदा की सलामती में शामिल हों। इस तरह यह नमाज़ आपके दिलों को जोड़ती है। आपके विचारों में एकता पैदा करती है और आप में एक-दूसरे की भलाई चाहने का जज़बा पैदा करती है।

इमाम के बिना जमाअत नहीं

मगर देख लीजिए कि जमाअत की नमाज़ आप कभी इमाम के बिना नहीं पढ़ते। दो आदमी भी मिलकर पढ़ेंगे तो एक इमाम होगा और दूसरा मुक़्तदी। जमाअत खड़ी हो जाए तो उससे अलग होकर नमाज़ पढ़ने से सख़्ती के साथ रोका गया है, बल्कि ऐसी नमाज़ होती ही नहीं। हुक्म है कि जो आता जाए उसी इमाम के पीछे नमाज़ में शरीक होता जाए। ये सब चीज़ें सिर्फ़ नमाज़ ही के लिए नहीं हैं, बल्कि दरअसल इनमें आपको यह सबक़ दिया गया है कि मुसलमान की हैसियत से अगर ज़िन्दगी बसर करनी है तो इसी तरह जमाअत बनकर रहो। तुम्हारी जमाअत, जमाअत ही नहीं हो सकती जब तक कि तुम्हारा कोई इमाम न हो और जमाअत जब बन जाए तो उससे अलग होने का मतलब यह है कि तुम्हारी ज़िन्दगी मुसलमानों की ज़िन्दगी नहीं रही।

इमामत की नौईयत और हक़ीक़त

सिर्फ़ इसी पर बस नहीं किया गया है, बल्कि जमाअत में इमाम और

मुक़्तदियों का ताल्लुक़ इस तौर पर क़ायम किया गया, जिससे आपको मालूम हो जाए कि इस छोटी मसजिद के बाहर उस बहुत बड़ी मसजिद में जिसका नाम 'ज़मीन' है, आपके इमाम की हैसियत क्या है? उसके फ़राइज़ क्या हैं, उसके हुक़ूक़ क्या हैं? आपको किस तरह उसकी इताअत करनी चाहिए और किन बातों में करनी चाहिए? अगर वह ग़लती करे तो आप क्या करें, कहाँ तक आपको ग़लती में भी उसकी पैरवी करनी चाहिए, कहाँ आप उसको टोकने के हक़दार हैं? कहाँ आप उससे मुतालबा कर सकते हैं कि अपनी ग़लती का सुधार करे और किस मौक़े पर आप उसको इमामत से हटा सकते हैं? ये सब मानो छोटे पैमाने पर एक बड़ी सल्तनत को चलाने की मश्क़ है, जो हर रोज़ पाँच बार आपसे हर छोटी-बड़ी मसजिद में कराई जाती है।

इमामत की शर्तें और आदाब

यहाँ इतना मौक़ा नहीं कि मैं इन सारी तफ़सीलों को बयान करूं, मगर कुछ मोटी-मोटी बातें बयान करता हूँ।

(1) मुत्तक़ी व परहेज़गार

हुक्म है कि इमाम ऐसे शख़्स को बनाया जाए जो परहेज़गार हो, इल्म में ज़्यादा हो, क़ुरआन ज़्यादा जानता हो और ज़्यादा उम्र का भी हो। हदीस में तरतीब भी बता दी गई है कि इन सिफ़ात में कौन-सी सिफ़त किस सिफ़त पर मुक़द्दम है। यहीं से यह तालीम भी दे दी गई कि क़ौम के सरदार के चुनाव में किन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(2) अकसरीयत का नुमाइंदा

हुक्म है कि इमाम ऐसा आदमी न हो, जिससे जमाअत की बड़ी तादाद नाराज़ हो। यूँ तो थोड़े-बहुत मुख़ालिफ़ किसके नहीं होते, लेकिन जमाअत में अक्सर लोग किसी शख़्स से नफ़रत रखते हों तो उसे इमाम न बनाया जाए। यहाँ फिर क़ौम के सरदार के चुनाव का एक क़ायदा बता दिया गया।

(3) मुक़तदियों का हमदर्द

हुक्म है कि जो आदमी जमाअत का इमाम बनाया जाए वह नमाज़ ऐसी पढ़ाए कि जमाअत के बूढ़े-से-बूढ़े लोगों को भी तकलीफ़ न हो।

सिर्फ़ जवान, मज़बूत, तन्दुरुस्त और फ़ुर्सतवाले लोगों को ही सामने रखकर लम्बी-लम्बी क़िरअत और लम्बे-लम्बे रुकू और सजदे न करने लगे। बल्कि यह भी देखे कि जमाअत में बूढ़े भी हैं, बीमार भी हैं, कमज़ोर भी हैं और ऐसे मशग़ूल भी हैं जो जल्दी नमाज़ पढ़कर अपने काम पर वापस जाना चाहते हैं। नबी (सल्ल०) ने इस सिलसिले में यहाँ तक रहम और शफ़क़त का नमूना पेश फ़रमाया है कि नमाज़ पढ़ाते वक़्त किसी बच्चे के रोने की आवाज़ आ जाती तो नमाज़ मुख़्तसर कर देते थे, ताकि अगर बच्चे की माँ जमाअत में शरीक हो तो उसे तक़लीफ़ न हो। यह गोया क़ौम के सरदार को तालीम दी गई है कि जब वह सरदार बनाया जाए तो क़ौम के अन्दर उसका तर्ज़े अमल कैसा होना चाहिए।

(4) मजबूरी में जगह ख़ाली कर दे

हुक्म है कि इमाम को अगर नमाज़ पढ़ाते वक़्त कोई ऐसी बात पेश आ जाए जिसकी वजह से वह नमाज़ पढ़ाने के क़ाबिल न रहे तो फ़ौरन हट जाए और अपनी जगह पर पीछे के आदमी को खड़ा कर दे। इसका मतलब यह है कि क़ौम के सरदार का भी यही फ़र्ज़ है कि जब वह सरदारी के क़ाबिल अपने आप को न पाए तो उसे ख़ुद हट जाना चाहिए और दूसरे ज़्यादा क़ाबिल आदमी के लिए जगह ख़ाली कर देनी चाहिए। इसमें न शर्म का कुछ काम है, न ख़ुदग़र्ज़ी का।

(5) इमाम की मुकम्मल इताअत

हुक्म है कि इमाम के कामों की सख़्ती के साथ पाबन्दी करो। उसकी हरकत से पहले हरकत करने को सख़्ती के साथ मना किया गया है; यहाँ तक कि जो शख़्स इमाम से पहले रुकू या सजदे में आ जाए, उसके बारे में हदीस में आया है कि वह गधे की सूरत में उठाया जाएगा। यहाँ गोया क़ौम को सिखाया गया है कि उसे अपने सरदार की इताअत किस तरह करनी चाहिए।

(6) ग़लती पर तंबीह

इमाम अगर नमाज़ में ग़लती करे, मिसाल के तौर पर जहाँ उसे बैठना चाहिए था वहाँ खड़ा हो जाए, या जहाँ खड़ा होना चाहिए था वहाँ बैठ जाए तो हुक्म है कि 'सुब्हानल्लाह' कहकर उसे ग़लती पर चौकस कर

दो। सुब्हानल्लाह का मतलब होता है "अल्लाह पाक है"। इमाम की ग़लती पर सुब्हानल्लाह कहने का मतलब यह हुआ कि ग़लती से तो सिर्फ़ अल्लाह ही पाक है, तुम इनसान हो, तुमसे भूल-चूक हो जाना कोई ताज्जुब की बात नहीं। यह तरीक़ा है इमाम को टोकने का और जब इस तरह उसे टोका जाए तो उसपर लाज़िम है कि बिना किसी शर्म व लिहाज़ के अपनी ग़लती का सुधार करे, अलबत्ता अगर टोके जाने के बाद भी इमाम को यक़ीन हो कि उसने सही काम किया है तो वह अपनें यक़ीन के मुताबिक़ अमल कर सकता है और इस सूरत में जमाअत का काम यह है कि इस अमल को ग़लत जानने के बाद भी उसका साथ दे। नमाज़ ख़त्म होने के बाद मुक़्तदी हक़ रखते हैं कि इमाम पर उसकी ग़लती साबित करें और नमाज़ दुबारा पढ़ाने की उससे माँग करें।

(7) बड़ी ग़लती और गुनाह में इताअत नहीं

इमाम के साथ जमाअत का यह बरताव सिर्फ़ उन हालतों के लिए है जब कि ग़लती छोटी-छोटी बातों में हो। लेकिन अगर इमाम नबी (सल्ल०) की सुन्नत के ख़िलाफ़ नमाज़ की तरकीब बदल दे या नमाज़ में क़ुरआन को जान-बूझकर ग़लत पढ़े या नमाज़ पढ़ाते हुए कुफ़्र या शिर्क या खुला गुनाह करे तो जमाअत का फ़र्ज़ है कि उसी वक़्त नमाज़ तोड़कर इमाम से अलग हो जाए। ये सब हिदायतें ऐसी हैं जिनमें पूरी तालीम दे दी गई है कि तुमको अपनी क़ौमी ज़िन्दगी में अपने सरदार के साथ किस तरह पेश आना चाहिए।

मुसलमान भाइयो! ये फ़ायदे जो मैंने नमाज़ बाजमाअत के बयान किए हैं, उनसे आपने अन्दाज़ा किया होगा कि अल्लाह तआला ने इस एक इबादत में जो दिन भर में पाँच बार सिर्फ़ कुछ मिनट के लिए अदा की जाती है, किस तरह दुनिया व आख़िरत की तमाम भलाइयाँ आपके लिए जमा कर दी हैं, किस तरह यही एक चीज़ आपको तमाम सआदतों से मालामाल कर देती है और किस तरह यह आपको अल्लाह की ग़ुलामी और दुनिया की हुक्मरानी के लिए तैयार करती है। अब आप ज़रूर सवाल करेंगे कि जब नमाज़ ऐसी चीज़ है तो जो फ़ायदे तुम इसके बयान करते हो, ये हासिल क्यों नहीं होते? इसका जवाब अगर अल्लाह ने चाहा तो अगले ख़ुतबे में दिया जाएगा।

नमाज़ें बेअसर क्यों हो गईं?

मुसलमान भाइयो! आज के ख़ुतबे में मुझे आपको यह बताना है कि जिस नमाज़ के इतने ज़्यादा फ़ायदे मैंने कई ख़ुतबों में लगातार आपके सामने बयान किए हैं, वह अब क्यों वे फ़ायदे नहीं दे रही है? क्या बात है कि आप नमाज़ें पढ़ते हैं और फिर भी आपकी ज़िन्दगी नहीं सुधरती? फिर भी आपके अख़लाक़ पाकीज़ा नहीं होते? फिर भी आप एक ज़बरदस्त ख़ुदाई फ़ौज नहीं बनते? फिर भी बातिलपरस्त आपपर ग़ालिब हैं? फिर भी आप दुनिया में तबाह हाल और बुरी दशा में हैं।

इस सवाल का मुख़तसर जवाब तो यह हो सकता है कि अव्वल तो आप नमाज़ पढ़ते ही नहीं और पढ़ते भी हैं, तो उस तरीक़े से नहीं जो ख़ुदा और रसूल (सल्ल०) ने बताया है। इसी लिए उन फ़ायदों की उम्मीद आप नहीं कर सकते जो मोमिन को मेराजे कमाल तक पहुँचानेवाली नमाज़ से पहुँचने चाहिएँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि सिर्फ़ इतना-सा जवाब आपको मुतमंइन नहीं कर सकता। इसलिए ज़रा तफ़सील के साथ आपको यह बात समझाऊँगा।

एक मिसाल — घड़ी

किसी घड़ी को ले लीजिए, आपको नज़र आएगा कि उसमें बहुत-से पुर्ज़े एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। जब उसको कूक (चाबी) दी जाती है तो सब पुर्ज़े अपना-अपना काम शुरू कर देते हैं और उनके हरकत करने के साथ ही बाहर के सफ़ेद तख़्ते (डायल) पर उनकी हरकत का नतीजा ज़ाहिर होना शुरू हो जाता है, यानी घड़ी की सुइयाँ चलकर एक-एक सेकेण्ड और एक-एक मिनट बताने लगती हैं। अब आप ज़रा ग़ौर से देखिए। घड़ी बनाने का मक़सद यह है कि वह सही वक़्त बताएं। इसी मक़सद के लिए उसकी मशीन में वे सब पुर्ज़े इकट्ठा किए गए जो सही वक़्त बताने के लिए ज़रूरी थे। फिर इन सबको इस तरह जोड़ा गया कि सब मिलकर

बाक़ायदा हरकत करें और हर पुर्ज़ा वही काम और उतना ही काम करता चला जाए जितना सही वक़्त बताने के लिए उसको करना चाहिए। फिर कूक (चाबी) देने का क़ायदा मुक़र्रर किया गया, ताकि उन पुर्ज़ों को ठहरने न दिया जाए और थोड़ी-थोड़ी मुद्दत के बाद उनको हरकत दी जाती रहे। इसी तरह जब तमाम पुर्ज़ों को ठीक-ठीक जोड़ा गया और कूक दी गई तब कहीं घड़ी इस क़ाबिल हुई कि वह उस मक़सद को पूरा करे, जिसके लिए वह बनाई गई है। अगर आप उसे कूक न दें तो वह वक़्त नहीं बताएगी। अगर आप कूक दें; लेकिन उस क़ायदे के मुताबिक़ न दें जो कूक देने के लिए मुक़र्रर किया गया है तो वह बन्द हो जाएगी या चलेगी भी तो सही वक़्त न बताएगी। अगर आप उसके कुछ पुर्ज़े निकाल डालें और फिर कूक दें, तो उस कूक से कुछ हासिल न होगा। अगर आप उसके कुछ पुर्ज़ों को निकालकर उसकी जगह सिलाई मशीन के पुर्ज़े लगा दें और फिर कूक दें तो वह न वक़्त बताएगी और न कपड़ा सिएगी। अगर आप उसके सारे पुर्ज़े उसके अन्दर ही रहने दें लेकिन उनको खोलकर एक-दूसरे से अलग कर दें तो कूक देने से कोई पुर्ज़ा भी हरकत न करेगा। कहने को सारे पुर्ज़े उसके अन्दर मौजूद होंगे; मगर सिर्फ़ पुर्ज़ों के मौजूद रहने से वह मक़सद हासिल न होगा, जिसके लिए घड़ी बनाई गई है। क्योंकि उनकी तरतीब और उनका आपस का ताल्लुक़ आपने तोड़ दिया है जिसके कारण वे मिलकर हरकत नहीं कर सकते। ये सब सूरतें जो मैंने आपसे बयान की हैं, उनमें अगरचे घड़ी का होना और उसको कूक देने का काम दोनों बेकार हो जाते हैं, लेकिन दूर से देखनेवाला यह नहीं कह सकता कि यह घड़ी नहीं है या आप कूक नहीं दे रहे हैं। वह तो यही कहेगा कि सूरत तो बिलकुल घड़ी जैसी है और यही उम्मीद करेगा कि घड़ी का जो फ़ायदा है, वह उससे हासिल होना चाहिए। इसी तरह दूर से जब वह आपको कूक देते हुए देखेगा तो यही समझेगा कि आप वाक़ई घड़ी को कूक दे रहे हैं और वह यही उम्मीद करेगा कि घड़ी को कूक देने का जो नतीजा है वह ज़ाहिर होना चाहिए। लेकिन यह उम्मीद पूरी कैसे हो सकती है, जबकि वह घड़ी बस दूर से देखने ही की घड़ी है और हक़ीक़त में उसके अन्दर घड़ीपन बाक़ी नहीं रहा है।

उम्मते मुस्लिमा का मक़सद

यह मिसाल जो मैंने आपके सामने बयान की है इससे आप सारा मामला समझ सकते हैं। इस्लाम को यही घड़ी मान लीजिए। जिस तरह घड़ी का मक़सद सही वक़्त बताना है, उसी तरह इस्लाम का मक़सद यह है कि ज़मीन में आप ख़ुदा के ख़लीफ़ा, लोगों पर ख़ुदा के गवाह और दुनिया में दावते हक़ के अलम्बरदार बनकर रहें, ख़ुद ख़ुदा के हुक्मों पर चलें और सबको ख़ुदा के क़ानून का ताबेदार बनाकर रखें। इस मक़सद को साफ़ तौर पर क़ुरआन में बयान कर दिया गया है—

كُنتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ○

तुम वह बेहतरीन उम्मत हो जिसे बनी आदम के लिए निकाला गया है। तुम्हारा काम यह है कि सब लोगों को नेकी का हुक्म दो और बुराई से रोको, और अल्लाह पर ईमान रखो।

(क़ुरआन, 3:110)

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ○

और इस तरह हमने तुमको बेहतरीन उम्मत बनाया है, ताकि तुम लोगों पर गवाह हो। (क़ुरआन, 2:143)

وَعَدَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مِنْكُمْ وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ لَيَسْتَخْلِفَنَّهُمْ فِى الْاَرْضِ○

अल्लाह ने वादा किया है उन लोगों से जो तुममें से ईमान लाएँ और नेक अमल करें कि वह ज़रूर उनको ज़मीन में अपना ख़लीफ़ा बनाएगा।

(क़ुरआन, 24:55)

इस्लामी हुक्म एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं जैसे घड़ी के पुर्ज़े

इस मक़सद को पूरा करने के लिए घड़ी के पुर्ज़ों की तरह इस्लाम में

भी वह तमाम पुर्ज़े इकट्ठा किए गए हैं जो इस ग़रज़ के लिए ज़रूरी और मुनासिब थे। दीन के अक़ीदे व अख़लाक़ के उसूल, मामलों के क़ायदे, ख़ुदा के हुक़ूक़, बन्दों के हुक़ूक़, ख़ुद अपने नफ़्स के हुक़ूक़, दुनिया की हर उस चीज़ के हुक़ूक़ जिससे आपका वास्ता पेश आता है, कमाने के क़ायदे और ख़र्च करने के तरीक़े, जंग के क़ानून और सुलह के क़ायदे, हुकूमत करने के क़ानून और इस्लामी हुकूमत की इताअत करने के ढंग, ये सब इस्लाम के पुर्ज़े हैं और उनको घड़ी के पुर्ज़ों की तरह एक ऐसी तरतीब से एक-दूसरे के साथ कसा गया है कि ज्यों ही उसमें कूक दी जाए, हर पुर्ज़ा दूसरे पुर्ज़ों के साथ मिलकर हरकत करने लगे और उन सबकी हरकत से असल नतीजा यानी इस्लाम का ग़लबा और दुनिया पर ख़ुदाई क़ानून की बालातरी इस तरह लगातार ज़ाहिर होना शुरू हो जाए जिस तरह कि आप एक घड़ी को देखते हैं कि उसके पुर्ज़ों की हरकत के साथ ही बाहर के सफ़ेद तख़्ते पर नतीजा बराबर ज़ाहिर होता चला जाता है। घड़ी में पुर्ज़ों को एक-दूसरे के साथ बाँधे रखने के लिए कुछ कीलें और पत्तियाँ लगाई गई हैं। इसी तरह इस्लाम के तमाम पुर्ज़ों को एक-दूसरे के साथ जुड़ा रखने और उनकी सही तरतीब क़ायम रखने के लिए वह चीज़ रखी गई है जिसको निज़ामे जमाअत कहा जाता है। यानी मुसलमानों का एक ऐसा सरदार जो दीन का सही इल्म और तक़वे और परहेज़गारी की सिफ़त रखता हो। जमाअत के दिमाग़ मिलकर उसकी मदद करें। जमाअत के हाथ-पाँव उसके कहने पर चलें। इन सबकी ताक़त से वह इस्लाम के क़ानूनों को लागू करे और लोगों को उनके ख़िलाफ़ चलने से रोके। इस तरीक़े से जब सारे पुर्ज़े एक-दूसरे से जुड़ जाएँ और उनकी तरतीब ठीक-ठीक क़ायम हो जाए तो उनको हरकत देने और देते रहने के लिए कूक की ज़रूरत होती है और वही कूक यह नमाज़ है जो हर रोज़ पाँच वक़्त पढ़ी जाती है। फिर इस घड़ी को साफ़ करते रहने की भी ज़रूरत होती है और वह सफ़ाई ये रोज़े हैं जो साल-भर में तीस दिन रखे जाते हैं और उस घड़ी को तेल देते रहने की भी ज़रूरत है, तो ज़कात वह तेल है जो साल-भर में एक बार उसके पुर्ज़ों को दिया जाता है। यह तेल कहीं बाहर से नहीं आता, बल्कि इसी घड़ी के कुछ पुर्ज़े तेल भी बनाते हैं और कुछ सूखे हुए पुर्ज़ों को रोग़नदार करके आसानी के साथ चलने के क़ाबिल बना देते

हैं। फिर इसे कभी-कभी ओवर हालिंग (Over Hauling) करने की भी ज़रूरत होती है, सो वह ओवर हालिंग हज है जो उम्र में एक बार करना ज़रूरी है और इससे ज़्यादा जितना किया जा सके, उतना ही अच्छा है।

तितर-बितर पुर्ज़ों का जोड़ लाभदायक नहीं

अब आप ग़ौर कीजिए कि यह कूक देना, सफ़ाई करना, तेल देना और ओवर हाल करना उसी वक़्त फ़ायदेमंद हो सकता है जब फ्रेम में उसी घड़ी के सारे पुर्ज़े मौजूद हों। एक-दूसरे के साथ उसी तरतीब से जुड़े हुए हों जिस तरतीब से घड़ीसाज़ ने उन्हें जोड़ा था और ऐसे तैयार रहें कि कूक देते ही अपनी मुक़र्ररा हरकत करने लगें और हरकत करते ही नतीजा दिखाने लगें। लेकिन यहाँ मामला ही कुछ दूसरा हो गया है। एक तो जमाअत का वह निज़ाम ही बाक़ी नहीं रहा जिससे इस घड़ी के पुर्ज़ों को बाँधा गया था। नतीजा यह हुआ कि सारे पेंच ढीले पड़ गए और पुर्ज़ा-पुर्ज़ा अलग होकर बिखर गया। अब जो, जिसके जी में आता है करता है; कोई पूछनेवाला ही नहीं। हर आदमी आज़ाद है, उसका दिल चाहे तो इस्लाम के क़ानूनों की पैरवी करे और न चाहे तो न करे। इसपर भी आप लोगों का दिल ठण्डा न हुआ तो आपने इस घड़ी के बहुत-से पुर्ज़े निकाल डाले और उसकी जगह पर हर शख़्स ने अपनी-अपनी पसन्द के मुताबिक़ जिस दूसरी मशीन का पुर्ज़ा चाहा उसमें लाकर फिट कर दिया। कोई साहब सिलाई मशीन का पुर्ज़ा पसन्द करके ले आए, किसी साहब को आटा पीसने की चक्की का कोई पुर्ज़ा पसन्द आ गया तो वह उसे उठा लाए और किसी साहब को मोटर (लारी) की कोई चीज़ पसन्द आई तो उसे लाकर उस घड़ी में लगा दिया। अब आप मुसलमान भी हैं और बैंक से सूदी करोबार भी चल रहा है, इन्शोरेन्स कम्पनी में बीमा भी करा रखा है, ग़ैरशरई अदालतों में झूठे मुक़दमें भी लड़ रहे हैं, बातिल और बातिलपरस्तों की वफ़ादाराना ख़िदमत भी हो रही है। बेटियों, बहनों और बीवियों को मेम साहब भी बनाया जा रहा है बच्चों को माद्दापरस्ताना (भौतिकता पर आधारित) तालीम भी दी जा रही है, नेताओं की अन्धी पैरवी भी हो रही है और लेनिन के राग भी गाए जा रहे हैं। ग़रज़ यह कि कोई ग़ैर इस्लामी चीज़ ऐसी नहीं जिसे हमारे मुसलमान भाइयों ने ला-लाकर इस्लाम की इस घड़ी के

फ़्रेम में ठूँस न दिया हो। ज़माने की चलती हुई हर तहरीक को लपककर क़बूल कर लिया जाता है और इस्लाम में उसका पैवन्द लगाया जाता है।

पुर्ज़ों की दुरुस्ती के बग़ैर मतलब नतीजे नहीं

ये सब हरकतें करने के बाद आप चाहते हैं कि कूक देने से यह घड़ी चले और वही नतीजा दिखाए, जिसके लिए इस घड़ी को बनाया गया था और सफ़ाई करने, तेल देने और ओवर-हाल करने के वही फ़ायदे हों जो इन कामों के लिए मुक़र्रर हैं। मगर ज़रा अक़्ल से आप काम लें तो आसानी से आप समझ सकते हैं कि जो हाल आपने इस घड़ी का कर दिया है, उसमें तो ज़िन्दगी भर कूक देने और सफ़ाई करने और तेल देते रहने से भी कुछ नतीजा नहीं निकल सकता, जबतक कि आप बाहर से आए हुए सारे पुर्ज़ों को निकालकर उसके असली पुर्ज़े उसमें न रखेंगे और फिर इन पुर्ज़ों को उसी तरतीब के साथ जोड़कर कस न देंगे, जिस तरह शुरू में उन्हें जोड़ा और कसा गया था, आप हरगिज़ उन नतीजों की उम्मीद नहीं कर सकते जो इससे कभी ज़ाहिर हुए थे।

इबादत बेअसर होने की असल वजह

ख़ूब समझ लीजिए कि यही असली वजह है आपकी नमाज़ों और रोज़ों और ज़कात और हज के बे-नतीजा हो जाने की। एक तो आपमें से नमाज़ें पढ़नेवाले, रोज़े रखनेवाले, ज़कात और हज अदा करनेवाले हैं ही कितने? जमाअत का निज़ाम बिखर जाने से हर आदमी बिलकुल आज़ाद हो गया है, चाहे इन फ़र्ज़ों को अदा करे या न करे, कोई पूछनेवाला ही नहीं। फिर जो लोग इन्हें अदा करते हैं वे भी किस तरह अदा करते हैं? नमाज़ में जमाअत की पाबन्दी नहीं और अगर कहीं जमाअत की पाबन्दी है भी तो मसजिदों की इमामत के लिए उन लोगों को चुना जाता है जो दुनिया में किसी और काम के क़ाबिल नहीं होते। आप नाअह्ल लोगों को उस नमाज़ का इमाम बनाते हैं जो आपको ख़ुदा का ख़लीफ़ा और दुनिया में ख़ुदाई फ़ौजदार बनाने के लिए मुक़र्रर की गई थी। इसी तरह रोज़े, ज़कात और हज का जो हाल है वह भी बयान करने के क़ाबिल नहीं। इन सब बातों

के होते हुए भी आप कह सकते हैं कि अब भी बहुत-से मुसलमान अपने दीनी फ़र्ज़ों को पूरा करनेवाले ज़रूर हैं, लेकिन जैसा कि मैं बयान कर चुका हूँ कि घड़ी का पुर्ज़ा-पुर्ज़ा अलग करके और उसमें बाहर की बीसियों चीज़ें दाख़िल करके आपका कूक देना और न देना, सफ़ाई करना और न करना, तेल देना और न देना दोनों बे-नतीजा हैं। आपकी यह घड़ी दूर से घड़ी ही नज़र आती है। देखनेवाला यही कहता है कि यह इस्लाम है और आप मुसलमान हैं। आप जब इस घड़ी को कूक देते और सफ़ाई करते हैं तो दूर से देखनेवाला यही समझता है कि सचमुच आप कूक दे रहे हैं और सफ़ाई कर रहे हैं। कोई यह नहीं कह सकता कि यह नमाज़, नमाज़ नहीं है, या ये रोज़े, रोज़े नहीं हैं। मगर देखनेवालों को क्या ख़बर कि इस ज़ाहिरी फ्रेम के अन्दर क्या कुछ कारस्तानियाँ की गई हैं!

हमारी अफ़सोसनाक हालत

मुसलमान भाइयो! मैंने आपको असली वजह बता दी है कि आपके यह मज़हबी आमाल आज क्यों बे-नतीजा हो रहे हैं? और क्या वजह है कि नमाज़ें पढ़ने और रोज़े रखने के बाद भी आप ख़ुदाई फ़ौजदार बनने के बजाए बातिल से मग़लूब और हर ज़ालिम का निशाना बने हुए हैं। लेकिन अगर आप बुरा न मानें तो मैं आपको इससे भी ज़्यादा अफ़सोसनाक बात बताऊँ। आपको अपनी इस हालत का रंज और अपनी मुसीबत का एहसास तो ज़रूर है, मगर आपके अन्दर हज़ार में से नौ सौ निन्यानवे, बल्कि इससे भी ज़्यादा लोग ऐसे हैं जो इस हालत को बदलने की सही सूरत के लिए राज़ी नहीं हैं। वे इस्लाम की इस घड़ी को जिसका पुर्ज़ा-पुर्ज़ा अन्दर से अलग कर दिया गया है और जिसमें अपनी-अपनी पसन्द के मुताबिक़ हर शख़्स ने कोई न कोई चीज़ मिला रखी है, फिर से तरतीब देना बरदाश्त नहीं कर सकते। क्योंकि जब उसमें से बाहरी चीज़ें निकाली जाएँगी तो लाज़िमी तौर पर हर एक की पसन्द की चीज़ निकाली जाएगी। यह नहीं हो सकता कि दूसरों की पसन्द की चीज़ें तो निकाल दी जाएँ, मगर आपने ख़ुद बाहर का जो पुर्ज़ा लाकर लगा रखा हो उसे रहने दिया जाए। इसी तरह जब उसे कसा जाएगा तो सब ही उसके साथ कसे जाएँगे। यह मुमकिन नहीं है कि और सब तो कस दिए जाएँ, मगर सिर्फ़ एक आप

ही ऐसे पुर्ज़े हों जिसे ढीला छोड़ दिया जाए। बस यही वह चीज़ है जब उसको कसा जाएगा तो वे ख़ुद भी उसके साथ कसे जाएँगे, और यह ऐसी मशक़्क़त है जिसे ख़ुशी-ख़ुशी सह लेना लोगों के लिए बड़ा ही कठिन है। इसलिए वे बस यह चाहते हैं कि यह घड़ी इसी हाल में दीवार की शोभा बनी रहे और दूर से ला-लाकर लोगों को इसका दर्शन कराया जाए और उन्हें बताया जाए कि इस घड़ी में ऐसी और ऐसी करामातें छिपी हुई हैं। इससे बढ़कर जो लोग कुछ ज़्यादा इस घड़ी से मुहब्बत करते हैं, वे चाहते हैं कि इसी हालत में इसको ख़ूब दिल लगा-लगाकर कूक दी जाए और बड़ी मेहनत से इसकी सफ़ाई की जाए। मगर किसी हाल में भी इसके पुर्ज़ों को तरतीब देने, कसने और बाहरी पुर्ज़े निकाल फेंकने का इरादा तक न किया जाए।

काश! मैं आपकी हाँ में हाँ मिला सकता! मगर मैं क्या करूँ कि जो कुछ मैं जानता हूँ उसके ख़िलाफ़ नहीं कह सकता। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि जिस हालत में आप इस वक़्त हैं, उसमें पाँच वक़्त की नामज़ों के साथ तहज्जुद, इशराक़ और चाश्त भी आप पढ़ने लगें और पाँच-पाँच घण्टे रोज़ाना क़ुरआन भी पढ़ें और रमज़ान शरीफ़ के अलावा ग्यारह महीनों में साढ़े पाँच महीनों के और रोज़े भी रख लिया करें तब भी कुछ हासिल न होगा। घड़ी के अन्दर उसके असली पुर्ज़े रखें हों और उन्हें कस दिया जाए, तब तो ज़रा-सी कूक भी उसको चला देगी। थोड़ा-सा साफ़ करना और ज़रा-सा तेल देना भी नतीजाबख़्श होगा, वरना ज़िन्दगी-भर कूक देते रहिए, घड़ी न चलती है, न चलेगी।

وَمَا عَلَيْنَآ إِلاَّ الْبَلاَغُ○

और हमारा काम सिर्फ़ सही बात पहुँचा देना है। (क़ुरआन, 36:17)

रोज़ा

हर उम्मत पर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया

मुसलमान भाइयो! दूसरी इबादत जो अल्लाह तआला ने आपपर फ़र्ज़ की है 'रोज़ा' है। रोज़ा से मुराद यह है कि सुबह से शाम तक आदमी खाने-पीने और मुबाशरत (सहवास) से परहेज़ करे। नमाज़ की तरह यह इबादत भी शुरू से सभी पैग़म्बरों की शरीअत में फ़र्ज़ रही है। पिछली जितनी उम्मतें गुज़री हैं, सब इसी तरह रोज़े रखती थीं जिस तरह उम्मते मुहम्मदी रखती है, अलबत्ता रोज़े के हुक्म और रोज़े की तादाद और रोज़े रखने की मुद्दत में शरीअतों के दरमियान फ़र्क़ रहा है। आज भी हम देखते हैं कि अकसर मज़हबों में रोज़ा किसी न किसी शक्ल में ज़रूर मौजूद है। यह बात अलग है कि लोगों ने अपनी तरफ़ से बहुत-सी बातें मिलाकर इसकी शक्ल बिगाड़ दी है। क़ुरआन मजीद में आया है—

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ

यानी ऐ मुसलमानो! तुम्हारे ऊपर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया है,जिस तरह तुमसे पहले की उम्मतों पर फ़र्ज़ किया गया था।

(क़ुरआन, 2:183)

इस आयत से मालूम होता है कि अल्लाह तआला की तरफ़ से जितनी शरीअतें आई हैं, वे कभी रोज़े की इबादत से ख़ाली नहीं रही हैं।

रोज़ा क्यों फ़र्ज़ किया गया?

ग़ौर कीजिए कि आख़िर रोज़े में क्या बात है जिसकी वजह से अल्लाह तआला ने इस इबादत को हर ज़माने में फ़र्ज़ किया है।

ज़िन्दगी का मक़सद — रब की बन्दगी

इससे पहले कई बार आपसे बयान कर चुका हूँ कि इस्लाम का असल

मक़सद इनसान की पूरी ज़िन्दगी को अल्लाह की इबादत बना देना है। इनसान 'अब्द' यानी बन्दा पैदा हुआ है और 'अबदियत' यानी बन्दगी उसकी फ़ितरत में दाख़िल है। इसी लिए इबादत, यानी ख़याल व अमल में अल्लाह की बन्दगी, करने से कभी एक क्षण के लिए भी उसको आज़ाद न होना चाहिए। उसे अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में हमेशा और हर वक़्त यह देखना चाहिए कि अल्लाह तआला की रज़ा और ख़ुशनूदी किस चीज़ में है और उसका ग़ज़ब और नाराज़गी किस चीज में। फिर जिस तरफ़ अल्लाह की रज़ा हो, उधर जाना चाहिए और जिस तरफ़ उसका ग़ज़ब और उसकी नाराज़ी हो, उससे इस तरह बचना चाहिए जैसे आग के अंगारे से कोई बचता है। जो तरीक़ा अल्लाह ने पसन्द किया हो, उसपर चलना चाहिए और जिस तरीक़े को उसने पसन्द न किया हो, उससे भागना चाहिए। जब इनसान की सारी ज़िन्दगी इस रंग में रंग जाए, तब समझो कि उसने अपने मालिक की बन्दगी का हक़ अदा किया और—

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ○

मैंने जिन्नों और इनसानों को पैदा इसी लिए किया है कि वे मेरी बन्दगी करें

—का मंशा पूरा हो गया।

इबादत — बन्दगी की तरबियत

यह बात भी इससे पहले मैं बयान कर चुका हूँ कि नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात के नाम से जो इबादतें हम पर फ़र्ज़ की गई हैं उनका अस्ल मक़सद इसी बड़ी इबादत के लिए हमको तैयार करना है। उनको फ़र्ज़ करने का मतलब यह नहीं है कि अगर आपने दिन में पाँच वक़्त रुकू और सजदा कर लिया और रमज़ान में तीस दिन तक सुबह से शाम तक भूख-प्यास बरदाश्त कर ली और मालदार होने की सूरत में सालाना ज़कात और ज़िन्दगी में एक बार हज अदा कर लिया तो अल्लाह का जो कुछ हक़ आपपर था, वह अदा हो गया और इसके बाद आप उसकी बन्दगी से आज़ाद हो गए कि ज़ो चाहें करते फिरें, बल्कि असल में इन इबादतों को फ़र्ज़

करने का मक़सद यही है कि उनके ज़रिए से आदमी की तरबियत की जाए और उसको इस क़ाबिल बना दिया जाए कि उसकी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह की इबादत बन जाए। आइए! अब इसी मक़सद को सामने रखकर हम देखें कि रोज़ा किस तरह आदमी को उस बड़ी इबादत के लिए तैयार करता है।

रोज़ा मुकम्मल इबादत है

रोज़े के सिवा दूसरी जितनी इबादतें हैं, वे किसी न किसी तरह ज़ाहिरी हरकत से अदा की जाती हैं। मिसाल के तौर पर नमाज़ में आदमी उठता और बैठता है और रुकू और सिजदा करता है, जिसको हर शख़्स देख सकता है। हज में वह एक लम्बा सफ़र करके जाता है और फिर हज़ारों और लाखों आदमियों के साथ सफ़र करता है। ज़कात भी कम-से-कम एक आदमी देता है और दूसरा आदमी लेता है। इन सब इबादतों का हाल छिप नहीं सकता। अगर आप अदा करते हैं तब भी दूसरों को मालूम हो जाता है, अगर अदा नहीं करते तब भी लोगों को ख़बर हो ही जाती है। इसके बरख़िलाफ़ रोज़ा ऐसी इबादत है जिसका हाल ख़ुदा और बन्दे के सिवा किसी दूसरे पर नहीं खुल सकता। एक शख़्स सबके सामने सहरी खाए और इफ़तार के वक़्त तक ज़ाहिर में कुछ न खाए-पिए मगर छिपकर पानी पी जाए या कुछ चोरी-छिपे खा-पी ले तो ख़ुदा के सिवा किसी को भी इसकी ख़बर नहीं हो सकती। सारी दुनिया यही समझती रहेगी कि वह रोज़े से है और वह हक़ीक़त में रोज़े से न होगा।

रोज़ा — ईमान की मज़बूती की अलामत

रोज़े की इस हैसियत को सामने रखिए, फिर ग़ौर कीजिए कि जो आदमी हक़ीक़त में रोज़े रखता है और उसमें चोरी-छिपे भी कुछ नहीं खाता-पीता, सख़्त गर्मी की हालत में भी, जबकि प्यास से हलक़ चटखा जाता हो, पानी का एक क़तरा हलक़ से नीचे नहीं उतारता, सख़्त भूख की हालत में, जबकि आँखों में दम आ रहा हो, कोई चीज़ खाने का इरादा तक नहीं करता, उसे अल्लाह तआला के आलिमुलग़ैब (ग़ैब का जाननेवाला) होने

पर कितना ईमान है! किस क़द्र, ज़बरदस्त यक़ीन के साथ वह जानता है कि उसकी कोई हरकत चाहे सारी दुनिया से छिप जाए, मगर अल्लाह से नहीं छिप सकती! कैसा ख़ुदा का ख़ौफ़ उसके दिल में है कि बड़ी-से-बड़ी तकलीफ़ उठाता है, मगर सिर्फ़ अल्लाह के ख़ौफ़ की वजह से कोई ऐसा काम नहीं करता जो उसके रोज़े को तोड़नेवाला हो! कितना मज़बूत यक़ीन है उसको आख़िरत की जज़ा व सज़ा पर कि महीने भर में वह कम-से-कम तीन सौ साठ घण्टे के रोज़े रखता है और इस दौरान में कभी एक मिनट के लिए भी उसके दिल में आख़िरत के बारे में कोई शक का शायबा तक नहीं आता! अगर उसे इस बात में ज़रा-सा भी शक होता कि आख़िरत होगी या न होगी और उसमें अज़ाब व सवाब होगा या न होगा, तो वह कभी अपना रोज़ा पूरा नहीं कर सकता था। शक हो जाने के बाद यह मुमकिन नहीं है कि आदमी ख़ुदा के हुक्म को पूरा करने में कुछ न खाने और पीने के इरादे पर क़ायम रह जाए।

एक माह की लगातार ट्रेनिंग

इस तरह अल्लाह तआला हर साल पूरे एक महीने तक मुसलमान के ईमान को लगातार आज़माइश में डालता है और इस आज़माइश में जितना-जितना आदमी पूरा उतरता जाता है, उतना ही उसका ईमान मज़बूत होता जाता है। यह गोया आज़माइश की आज़माइश है और ट्रेनिंग की ट्रेनिंग। आप जब किसी आदमी के पास अमानत रखवाते हैं तो गोया उसकी ईमानदारी की आज़माइश करते हैं। अगर वह इस आज़माइश में पूरा उतरे और अमानत में ख़ियानत न करे तो उसके अन्दर अमानतों का बोझ सँभालने की और ज़्यादा ताक़त पैदा हो जाती है और वह ज़्यादा अमीन बनता चला जाता है। इसी तरह अल्लाह तआला भी लगातार एक महीने तक रोज़ाना बारह-बारह, चौदह-चौदह घण्टों तक आपके ईमान को कड़ी आज़माइश में डालता है और जब इस आज़माइश में आप पूरे उतरते हैं तो आपके अन्दर इस बात की और ज़्यादा क़ाबिलियत पैदा होने लगती है कि अल्लाह से डरकर दूसरे गुनाहों से भी परहेज़ करें। अल्लाह को आलिमुलग़ैब (ग़ैब का जाननेवाला) जानकर चोरी-छिपे भी उसके क़ानून को तोड़ने से बचें और हर मौक़े पर क़ियामत का वह दिन आपको याद आ जाया करे, जब

सब कुछ खुल जाएगा और बिना किसी रू-रियायत के भलाई का भला और बुराई का बुरा बदला मिलेगा। यही मतलब है इस आयत का—

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝

ऐ ईमानवालो! तुम्हारे ऊपर रोज़े फ़र्ज़ किए गए हैं जिस तरह तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे, शायद कि तुम परहेज़गार बन जाओ। (क़ुरआन, 2:183)

इताअत की लम्बी मश्क़

रोज़े की एक दूसरी ख़ूबी भी है, और वह यह है कि यह एक लम्बी मुद्दत तक शरीअत के हुक्मों की लगातार इताअत कराता है। नमाज़ की मुद्दत एक वक़्त में कुछ मिनट से ज़्यादा नहीं होती। ज़कात देने का वक़्त साल भर में सिर्फ़ एक बार आता है। हज में अलबत्ता लम्बी मुद्दत लगती है, मगर इसका मौक़ा ज़िन्दगी भर में एक बार आता है और वह भी सबके लिए नहीं। इन सबके बरख़िलाफ़ रोज़ा हर साल पूरे एक महीने तक दिन-रात शरीअते मुहम्मदी की पैरवी की मश्क़ कराता है। सुबह सहरी के लिए उठो, ठीक फ़लाँ वक़्त पर खाना-पीना सब बन्द कर दो। दिन भर फ़लाँ-फलाँ काम कर सकते हो और फ़लाँ-फ़लाँ नहीं कर सकते। शाम को ठीक फ़लाँ वक़्त पर इफ़तार करो, फिर खाना खाकर आराम कर लो, फिर तरावीह के लिए दौड़ो। इस तरह हर साल, पूरे महीने भर, सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक मुसलमान को लगातार फ़ौजी सिपाहियों की तरह पूरे क़ायदे और क़ानून में बाँधकर रखा जाता है और फिर ग्यारह महीने के लिए उसे छोड़ दिया जाता है, ताकि जो तरबियत इस एक महीने में उसने हासिल की है, उसके असरात ज़ाहिर हों और जो कमी पाई जाए वह फिर दूसरे साल की ट्रेनिंग में पूरी की जाए।

तरबियत के लिए साज़गार इजतिमाई माहौल

इस तरह की ट्रेनिंग के लिए एक-एक शख़्स को अलग-अलग लेकर

तैयार करना किसी तरह मुनासिब नहीं होगा। फ़ौज में भी आप देखते हैं कि एक-एक शख़्स को अलग-अलग परेड नहीं कराई जाती, बल्कि पूरी फ़ौज की फ़ौज एक साथ परेड करती है। सबको एक वक़्त एक बिगुल की आवाज़ पर उठना और एक बिगुल की आवाज़ पर काम करना होता है, ताकि उनमें जमाअत बनकर एक साथ काम करने की आदत हो और इसके साथ ही वे सब एक-दूसरे की ट्रेनिंग में मददगार भी हों, यानी एक शख़्स की ट्रेनिंग में जो कुछ कमी रह जाए उसकी कमी को दूसरा और दूसरे की कमी को तीसरा पूरा कर दे। इसी तरह इस्लाम में भी रमज़ान का महीना रोज़े की इबादत के लिए ख़ास किया गया और सारे मुसलमानों को हुक्म दिया गया है कि एक वक़्त में सबके सब मिलकर रोज़ा रखें। इस हुक्म ने इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) इबादत को इजतिमाई (सामूहिक) इबादत बना दिया। जिस तरह एक की संख्या को लाख से गुणा करो तो लाख की ज़बरदस्त संख्या बन जाती है, उसी तरह एक आदमी के रोज़ा रखने से जो अख़लाक़ी और रूहानी फ़ायदे हो सकते हैं, लाखों करोड़ों आदमियों के मिलकर रोज़ा रखने से वे लाखों-करोड़ों गुना बढ़ जाते हैं। रमज़ान का महीना पूरी फ़िज़ा को नेकी और परहेज़गारी की रूह से भर देता है। पूरी क़ौम में गोया तक़वा की खेती हरी-भरी हो जाती है। हर शख़्स न सिर्फ़ ख़ुद गुनाहों से बचने की कोशिश करता है, बल्कि अगर उसमें कोई कमज़ोरी होती है तो उसके दूसरे बहुत-से भाई जो उसी की तरह रोज़ेदार हैं, उसके मददगार बन जाते हैं। हर आदमी को रोज़ा रखकर गुनाह करते हुए शर्म आती है और हर एक के दिल में ख़ुद ही यह ख़्वाहिश उभरती है कि कुछ भलाई के काम करे, किसी ग़रीब को खाना खिलाए, किसी नंगे को कपड़ा पहनाए, किसी दुखी की मदद करे, किसी जगह अगर कोई नेक काम हो रहा हो तो उसमें हिस्सा ले और अगर कहीं खुल्लम-खुल्ला बुराई हो रही है तो उसे रोके। नेकी और तक़वा का एक आम माहौल पैदा हो जाता है और भलाइयों के फूलने-फलने का मौसम आ जाता है, जिस तरह आप देखते हैं कि हर फ़सल अपना मौसम आने पर ख़ूब फलती-फूलती है और हर तरफ़ खेतों पर छाई हुई नज़र आती है। इसी लिए नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

كُلُّ عَمَلِ ابْنِ آدَمَ يُضَاعَفُ الْحَسَنَةُ بِعَشْرِ أَمْثَالِهَا إِلَى سَبْعِ مِأَةِ ضِعْفٍ

قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى إِلاَّ الصَّوْمُ فَإِنَّهُ لِيْ وَاَنَا اَجْزِيْ بِهٖ.

आदमी का हर अमल ख़ुदा के यहाँ कुछ न कुछ बढ़ता है। एक नेकी दस गुनी से सात सौ गुनी तक फलती-फूलती है, मगर अल्लाह तआला फ़रमाता है कि रोज़ा इससे अलग है। वह ख़ास मेरे लिए है और मैं उसका जितना चाहता हूँ, बदला देता हूँ। —हदीस

इस हदीस से मालूम हुआ कि नेकी करनेवाले की नीयत और नेकी के नतीजों के लिहाज़ से सारे आमाल फलते-फूलते हैं और उनकी तरक़्क़ी के लिए एक हद मुक़र्रर है, लेकिन रोज़े की तरक़्क़ी के लिए कोई हद मुक़र्रर नहीं। रमज़ान चूँकि नेकी और भलाई के फलने-फूलने का मौसम है और इस मौसम में एक शख़्स नहीं, बल्कि लाखों करोड़ों मुसलमान मिलकर इस नेकी के बाग़ को पानी देते हैं, इसलिए यह बेहद व बेहिसाब बढ़ सकता है। जितनी ज़्यादा नेक नीयती के साथ इस महीने में अमल करेंगे, जिस क़द्र ज़्यादा बरकतों से ख़ुद फ़ायदा उठाएँगे और अपने दूसरे भाइयों को फ़ायदा पहुँचाएँगे और फिर जिस क़द्र ज़्यादा इस महीने के असरात बाद के ग्यारह महीनों में बाक़ी रखेंगे, उतना ही यह फूले-फलेगा और इसके फूलने-फलने की कोई हद नहीं है। आप ख़ुद अपने अमल से इसको महदूद कर लो तो यह आपका अपना क़ुसूर है।

इबादत के नतीजे अब कहाँ हैं?

रोज़े के यह असरात और यह नतीजे सुनकर आपमें से हर आदमी के दिल में यह सवाल पैदा होगा कि यह असरात आज कहाँ हैं? हम रोज़े भी रखते हैं और नमाज़ें भी पढ़ते हैं, मगर ये नतीजे जो तुम बयान करते हो, ज़ाहिर नहीं होते। इसकी एक वजह तो मैं आपसे पहले बयान कर चुका हूँ और वह यह है कि इस्लाम के अजज़ा (अंगों) को अलग-अलग कर देने के बाद और बहुत-सी नई चीज़ें इसमें मिला देने के बाद आप उन नतीजों की उम्मीद नहीं कर सकते जो पूरे निज़ाम की बँधी हुई सूरत ही में ज़ाहिर हो सकते हैं। इसके अलावा दूसरी वजह यह है कि इबादतों के बारे में आपके सोचने का ढंग बिलकुल बदल गया है। अब आप यह

समझने लगे हैं कि सिर्फ़ सुबह से शाम तक कुछ न खाने-पीने का नाम इबादत है और जब यह काम आपने कर लिया तो इबादत पूरी हो गई। इसी तरह दूसरी इबादतों की भी महज़ ज़ाहिरी शक्ल को आप इबादत समझते हैं और इबादत की असली रूह जो आपके हर अमल में होनी चाहिए, उससे आम तौर पर आपके 99 फ़ीसद बल्कि इससे भी ज़्यादा आदमी ग़ाफ़िल हैं। इसी वजह से ये इबादतें अपने पूरे फ़ायदे नहीं दिखातीं; क्योंकि इस्लाम में तो नीयत और फ़हम और समझ-बूझ ही पर सब कुछ मुनहसिर है।

अगर अल्लाह ने चाहा तो अगले ख़ुतबे में इस मज़मून की पूरी तशरीह करूँगा।

रोज़े का असल मक़सद

हर काम का एक मक़सद

मुसलमान भाइयो! हर काम जो इनसान करता है, उसमें दो चीज़ें ज़रूर ही हुआ करती हैं। एक चीज़ तो वह मक़सद है जिसके लिए काम किया जाता है और दूसरी चीज़ उस काम की वह ख़ास शक्ल है जो इस मक़सद को हासिल करने के लिए इख़तियार की जाती है। मिसाल के तौर पर खाना खाने के काम को लीजिए। खाने से आपका मक़सद ज़िन्दा रहना और जिस्म की ताक़त को बहाल रखना है। इस मक़सद को हासिल करने की सूरत यह है कि आप निवाले बनाते हैं, मुँह में ले जाते हैं, दाँतों से चबाते हैं और हलक़ से नीचे उतारते हैं। चूँकि इस मक़सद को हासिल करने के लिए सबसे ज़्यादा फ़ायदेमन्द और सबसे बेहतरीन तरीक़ा यही हो सकता था, इसलिए आपने इसी को इख़तियार किया। लेकिन आपमें से हर शख़्स जानता है कि असल चीज़ वह मक़सद है जिसके लिए खाना खाया जाता है, न कि खाने के काम की यह शक्ल। अगर कोई शख़्स लकड़ी का बुरादा या राख या मिट्टी लेकर उसके निवाले बनाए और मुँह में ले जाए और दाँतों से चबाकर हलक़ से नीचे उतार ले तो आप उसे क्या कहेंगे? यही ना कि उसका दिमाग़ ख़राब है। क्यों? इसलिए कि वह खाने के असल मक़सद को नहीं समझता और इस ग़लतफ़हमी में मुब्तला है कि बस खाने के काम की इन चार ज़ाहिरी बातों को अदा कर देने ही का नाम खाना खाना है। इसी तरह आप उस शख़्स को भी पागल ठहराएँगे जो रोटी खाने के बाद फ़ौरन ही हलक़ में उँगली डालकर क़ै कर देता हो और फिर शिकायत करता हो कि रोटी खाने के जो फ़ायदे बयान किए जाते हैं, वे मुझे हासिल ही नहीं होते, बल्कि मैं तो उल्टा रोज़ बरोज़ दुबला होता जा रहा हूँ और मर जाने की नौबत आ गई है। यह मूर्ख अपनी इस कमज़ोरी का इलज़ाम रोटी और खाने पर रखता है, हालाँकि बेवक़ूफ़ी उसकी अपनी है। उसने अपनी नादानी से यह समझ लिया कि खाने के काम में ये जो कुछ ज़ाहिरी

बातें हैं, बस इन्हीं को अदा कर देने से ज़िन्दगी की ताक़त हासिल हो जाती है। इसलिए उसने सोचा कि अब रोटी का बोझ अपने मेदे में क्यों रखे? क्यों न इसे निकाल फेंका जाए ताकि पेट हल्का हो जाए, खाने के काम की ज़ाहिरी सूरत तो मैं अदा ही कर चुका हूँ। यह बेवक़ूफ़ी का ख़याल जो उसने क़ायम किया और फिर उसकी पैरवी की, इसकी सज़ा भी तो आख़िर उसी को भुगतना चाहिए। उसको जानना चाहिए था कि जब तक रोटी पेट में जाकर हज़्म न हो और ख़ून बनकर सारे बदन में फैल न जाए, उस वक़्त तक ज़िन्दगी की ताक़त हासिल नहीं हो सकती। खाने के ज़ाहिरी काम भी यूँ तो ज़रूरी हैं, क्योंकि इनके बिना रोटी मेदे तक नहीं पहुँच सकती, मगर सिर्फ़ इन ज़ाहिरी कामों के अदा कर देने से काम नहीं चल सकता। इन कामों में कोई जादू भरा हुआ नहीं है कि उन्हें अदा करने से बस जादुई तरीक़े पर आदमी की रगों में ख़ून दौड़ने लगता हो। ख़ून पैदा करने के लिए अल्लाह ने जो क़ानून बनाया है उसी के मुताबिक़ वह पैदा होगा। उसको तोड़ोगे तो अपने आपको ख़ुद ही मौत के घाट उतारोगे।

ज़ाहिर को हक़ीक़त समझने के नतीजे

यह मिसाल जो इस तफ़सील के साथ मैंने आपके सामने बयान की है, इस पर आप ग़ौर करें तो आपकी समझ में आ सकता है कि आज आपकी इबादतें क्यों बेअसर हो गईं? जैसा कि मैं पहले भी आपसे बार-बार बयान कर चुका हूँ, सबसे बड़ी ग़लती यही है कि आपने नमाज़-रोज़ों के अरकान की ज़ाहिरी सूरतों ही को असल इबादत समझ रखा है और इस गुमान में फँस गए हैं कि जिसने ये अरकान पूरी तरह अदा कर दिए, उसने बस अल्लाह की इबादत कर दी। आपकी मिसाल उसी शख़्स की-सी है जो खाने के चारों अरकान यानी निवाले बनाना, मुँह में रखना, चबाना, हलक़ से नीचे उतार देना, बस इन्हीं चारों के मजमूए को खाना समझता है और यह ख़याल करता है कि जिसने ये चारों अरकान अदा कर दिए, उसने खाना खा लिया और खाने के फ़ायदे उसको हासिल होने चाहिएँ, भले ही उसने उन अरकान के साथ मिट्टी और पत्थर अपने पेट में उतारे हों, या रोटी खाकर फ़ौरन क़ै कर दी हो। अगर हक़ीक़त में आप लोग इस हिमाक़त में फँस नहीं गए हैं तो मुझे बताइए कि यह क्या माजरा है

कि जो रोज़ेदार सुबह से शाम तक अल्लाह की इबादत में मशग़ूल रहता है, वह ठीक इस इबादत की हालत में झूठ कैसे बोलता है? ग़ीबत किस तरह करता है? बात-बात पर लड़ता क्यों है? उसकी ज़बान से गालियाँ क्यों निकलती हैं? वह लोगों का हक़ कैसे मार खाता है? हराम खाने और हराम खिलाने का काम किस तरह कर लेता है और फिर यह सब काम करके भी अपने नज़दीक यह कैसे समझता है कि मैंने ख़ुदा की इबादत की है? क्या उसकी मिसाल उस आदमी की-सी नहीं है जो राख और मिट्टी खाता है और सिर्फ़ खाने के चार अरकान अदा कर देने को समझता है कि खाना इसी को कहते हैं!

रमज़ान के बाद फिर आज़ादी

फिर मुझे बताइए कि यह क्या माजरा है कि रमज़ान-भर में तक़रीबन 360 घण्टे ख़ुदा की इबादत करने के बाद जब आप फ़ारिग़ होते हैं तो इस पूरी इबादत के तमाम असरात शव्वाल की पहली तारीख़ ही को काफ़ूर हो जाते हैं? ग़ैर-मुसलिम अपने त्योहारों में जो कुछ करते हैं, वही सब आप ईद के ज़माने में करते हैं। हद यह है कि शहरों में तो ईद के दिन बदकारी और शराबनोशी और क़िमारबाज़ी (जुवा खेलना) तक होती है और कुछ ज़ालिम तो मैंने ऐसे भी देखे हैं जो रमज़ान के ज़माने में दिन में रोज़ा रखते हैं और रात को शराब पीते हैं। आम मुसलमान ख़ुदा के फ़ज़्ल से इतने बिगड़े हुए तो नहीं, मगर रमज़ान ख़त्म होने के बाद आपमें से कितने ऐसे हैं जिनके अन्दर ईद के दूसरे दिन भी तक़वा और परहेज़गारी का कोई असर बाक़ी रह जाता हो? ख़ुदा के क़ानूनों की ख़िलाफ़वर्ज़ी में कौन-सी कसर उठा रखी जाती है? नेक कामों में कितना हिस्सा लिया जाता है और नफ़्सानियत में क्या कमी आ जाती है?

इबादत की ग़लत सोच का नतीजा

सोचिए और ग़ौर कीजिए कि इसकी वजह आख़िर क्या है? मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ, इसकी वजह सिर्फ़ यह है कि आपके दिमाग़ में इबादत का मफ़हूम और मतलब ही ग़लत हो गया है। आप यह समझते हैं कि

सहर से लेकर मग़रिब तक कुछ न खाने-पीने का नाम रोज़ा है और बस यही इबादत है। इसी लिए रोज़े की तो आप पूरी हिफ़ाज़त करते हैं, ख़ुदा का ख़ौफ़ आपके दिल में इस क़द्र होता है कि जिस चीज़ में रोज़ा टूटने का ज़रा-सा भी अंदेशा हो उससे भी आप बचते हैं। अगर जान पर भी बन जाए तब भी रोज़ा तोड़ने में झिझक होती है। लेकिन आप यह नहीं जानते कि यह भूखा-प्यासा रहना असल इबादत नहीं, बल्कि इबादत की सूरत है और यह सूरत मुक़र्रर करने का मक़सद यह है कि आपके अन्दर ख़ुदा का ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत पैदा हो और आपके अन्दर इतनी ताक़त पैदा हो जाए कि जिस चीज़ में दुनियाभर के फ़ायदे हों, मगर ख़ुदा नाराज़ होता हो, उससे अपने नफ़्स पर जब्र करके बच सकें और जिस चीज़ में हर तरह के ख़तरे और नुक़सान हों, मगर ख़ुदा उससे ख़ुश होता हो, उसपर आप अपने नफ़्स को मजबूर करके तैयार कर सकें। यह ताक़त इसी तरह पैदा हो सकती थी कि आप रोज़े के मक़सद को समझते और महीने-भर तक अपने ख़ुदा के ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत में अपने नफ़्स को ख़्वाहिशों से रोकने और ख़ुदा की रज़ा के मुताबिक़ चलाने की जो मश्क़ की है, उससे काम लेते। मगर आप तो रमज़ान के बाद ही इस मश्क़ को और उन ख़ूबियों को, जो इस मश्क़ से पैदा होती हैं, इस तरह निकाल फेंकते हैं जैसे खाना खाने के बाद कोई शख़्स हलक़ में उँगली डालकर क़ै कर दे, बल्कि आपमें से कुछ लोग तो रोज़ा खोलने के बाद ही दिन भर की परहेज़गारी को उगल देते हैं। फिर आप ही बताइए कि रमज़ान और उसके रोज़े कोई जादू तो नहीं हैं कि बस उसकी ज़ाहिरी शक्ल पूरी कर देने से आपको वह ताक़त हासिल हो जाए जो हक़ीक़त में रोज़े से हासिल होनी चाहिए। जिस तरह रोटी से जिस्मानी ताक़त उस वक़्त तक नहीं हासिल हो सकती जब तक कि वह मेदे में जाकर हज़्म न हो और ख़ून बनकर जिस्म की रग-रग में न पहुँच जाए, उसी तरह रोज़े से भी रूहानी ताक़त उस वक़्त तक हासिल नहीं होती जब तक कि आदमी रोज़े के मक़सद को पूरी तरह समझे नहीं और अपने दिल व दिमाग़ के अन्दर उसको उतरने और ख़याल, नीयत, इरादे और अमल सब पर छा जाने का मौक़ा न दे।

रोज़ा परहेज़गार बनने का ज़रिया

यही वजह है कि अल्लाह तआला ने रोज़े का हुक्म देने के बाद फ़रमाया—

لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ○

शायद कि तुम मुत्तक़ी और परहेज़गार बन जाओ।

यह नहीं फ़रमाया कि इससे ज़रूर मुत्तक़ी और परहेज़गार बन जाओगे। इसलिए कि रोज़े का यह नतीजा तो आदमी की समझ-बूझ और उसके इरादे पर मौक़ूफ़ है। जो इसके मक़सद को समझेगा और उसके ज़रिए से असल मक़सद को हासिल करने की कोशिश करेगा, वह थोड़ा या बहुत मुत्तक़ी बन जाएगा। मगर जो मक़सद ही को न समझेगा और उसे हासिल करने की कोशिश ही न करेगा उसे कोई फ़ायदा हासिल होने की उम्मीद नहीं।

रोज़े का असल मक़सद

झूठ से बचना

नबी (सल्ल०) ने मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से रोज़े के असल मक़सद की तरफ़ ध्यान दिलाया है और यह समझाया है कि मक़सद से ग़ाफ़िल होकर भूखा-प्यासा रहना कुछ मुफ़ीद नहीं। इसलिए फ़रमाया—

مَنْ لَّمْ يَدَعْ قَوْلَ الزُّوْرِ وَالْعَمَلَ بِهٖ فَلَيْسَ لِلّٰهِ حَاجَةٌ فِيْ اَنْ يَّدَعَ طَعَامَهٗ وَشَرَابَهٗ.

जिस किसी ने झूठ बोलना और झूठ पर अमल करना ही न छोड़ा तो उसका खाना और पानी छुड़ा देने की अल्लाह को कोई हाजत नहीं।

(हदीस)

दूसरी हदीस में है कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

كَمْ مِّنْ صَائِمٍ لَيْسَ لَهٗ مِنْ صِيَامِهٖ إِلاَّ الظَّمَاءُ وَكَمْ مِّنْ قَائِمٍ

لَيسَ لَهُ مِنْ قِيَامِهِ إِلاَّ السَّهَرُ.

बहुत-से रोज़ेदार ऐसे हैं कि रोज़े से भूख-प्यास के सिवा उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता और बहुत-से रातों के खड़े रहनेवाले ऐसे हैं कि इस क़ियाम से रतजगे के सिवा उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। (हदीस)

इन दोनों हदीसों का मतलब बिलकुल साफ़ है। इनसे साफ़ तौर पर मालूम होता है कि सिर्फ़ भूखा और प्यासा रहना इबादत नहीं है, बल्कि असल इबादत का ज़रिया है और असल इबादत है ख़ुदा के ख़ौफ़ की वजह से ख़ुदा के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी न करना और ख़ुदा की मुहब्बत की वजह से हर उस काम के लिए शौक़ से लपकना जिसमें महबूब की ख़ुशनूदी हो और जहाँ तक भी मुमकिन हो नफ़्सानियत से बचना। इस इबादत से जो शख़्स ग़ाफ़िल रहा उसने बेकार ही अपने पेट को भूख और प्यास की तकलीफ़ दी। अल्लाह तआला को इसकी ज़रूरत कब थी कि बारह-चौदह घण्टों के लिए उससे खाना-पीना छुड़ा देता।

ईमान व इहतिसाब

रोज़े के असल मक़सद की तरफ़ प्यारे नबी (सल्ल०) इस तरह तवज्जोह दिलाते हैं—

مَنْ صَامَ رَمَضَانَ اِيْمَانًا وَّاِحْتِسَابًا غُفِرَلَهُ مَا تَقَدَّمَ مِنْ ذَنْبِهِ .

यानी जिसने रोज़ा रखा, ईमान और इहतिसाब के साथ, उसके सारे पिछले गुनाह माफ़ कर दिए गए। (हदीस)

'ईमान' का मतलब यह है कि ख़ुदा के बारे में एक मुसलमान का जो अक़ीदा होना चाहिए, वह अक़ीदा दिमाग़ में पूरी तरह ताज़ा रहे और 'इहतिसाब' का मतलब यह है कि आदमी अल्लाह ही की रिज़ा का तालिब हो और हर वक़्त अपने ख़यालों और अपने कामों पर नज़र रखे कि कहीं वह अल्लाह की मरज़ी के ख़िलाफ़ तो नहीं चल रहा है। इन दोनों चीज़ों के साथ जो आदमी रमज़ान के पूरे रोज़े रख लेगा वह अपने पिछले गुनाह बख़्शवा ले जाएगा। इसलिए कि अगर वह कभी सरकश व नाफ़रमान बन्दा था भी

तो अब उसने अपने मालिक की तरफ़ पूरी तरह रुजू कर लिया, और

التَّائِبُ مِنَ الذَّنْبِ كَمَنْ لاَ ذَنْبَ لَهُ.

गुनाह से तौबा करनेवाला ऐसा है जैसे उसने गुनाह किया ही न था। (हदीस)

गुनाहों से बचने की ढाल

दूसरी हदीस में आया है—

لصِّيَامُ جُنَّةٌ وَإِذَا كَانَ يَوْمَ صَوْمِ اَحَدِكُمْ فَلاَ يَرْفُثْ وَ لاَيَصْخَبْ فَإِنْ سَابَّهُ اَحَدٌ اَوْ قَاتَلَهُ فَلْيَقُلْ إِنِّيْ امْرَءٌ صَائِمٌ.

रोज़े ढाल की तरह हैं (कि जिस तरह ढाल दुशमन के वार से बचने के लिए है उसी तरह रोज़ा भी शैतान के वार से बचने के लिए है) इसलिए जब कोई शख़्स रोज़े से हो तो उसे चाहिए कि (इस ढाल को इस्तेमाल करे और) दंगे-फ़साद से परहेज़ करे। अगर कोई शख़्स उसको गाली दे या उससे लड़े तो उसको कह देना चाहिए कि भाई! मैं रोज़े से हूँ, (मुझसे यह उम्मीद न रखो कि तुम्हारे इस मशग़ले में हिस्सा लूँगा)।

नेकी की ख़्वाहिश

दूसरी हदीसों में हुज़ूर (सल्ल०) ने बताया है कि रोज़े की हालत में आदमी को ज़्यादा-से-ज़्यादा नेक काम करने चाहिएँ और हर भलाई का शौक़ीन बन जाना चाहिए। ख़ासकर इस हालत में उसके अन्दर अपने दूसरे भाइयों की हमदर्दी का जज़्बा तो पूरी शिद्दत के साथ पैदा हो जाना चाहिए, क्योंकि वह ख़ुद भूख-प्यास की तक़लीफ़ में मुब्तला होकर ज़्यादा अच्छी तरह महसूस कर सकता है कि ख़ुदा के दूसरे बन्दों पर ग़रीबी और मुसीबत में क्या गुज़रती होगी। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि ख़ुद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) रमज़ान में आम दिनों से ज़्यादा रहीम व शफ़ीक़ हो जाते थे। कोई माँगनेवाला उस ज़माने में हुज़ूर (सल्ल०) के दरवाज़े से ख़ाली न जाता था और कोई क़ैदी उस ज़माने में क़ैद न रहता

था।

इफ़तार कराने का सवाब

एक हदीस में आया है कि हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया—

مَنْ فَطَّرَ فِيْهِ صَائِمًا كَانَ لَهُ مَغْفِرَةٌ لِّذُنُوْبِهٖ وَعِتْقُ رَقَبَتِهٖ مِنَ النَّارِ وَ كَانَ لَهُ مِثْلُ اَجْرِهٖ مِنْ غَيْرِ اَنْ يُّنْتَقَصَ مِنْ اَجْرِهٖ شَيْئٌ.

जिसने रमज़ान में किसी रोज़ेदार को इफ़तार कराया तो यह उसके गुनाहों की बख़शिश का और उसकी गरदन को आग से छुड़ाने का ज़रिया होगा और उसको उतना ही सवाब मिलेगा जितना उस रोज़ेदार को रोज़ा रखने का सवाब मिलेगा बग़ैर इसके कि रोज़ेदार के अज्र में कोई कमी हो।

अध्याय — 4

ज़कात की हक़ीक़त

- ज़कात
  - ज़कात की हक़ीक़त
    - समाजी और इज्तिमाई ज़िन्दगी में ज़कात का दर्जा
      - अल्लाह की राह में ख़र्च करने के आम हुक्म
        - ज़कात के ख़ास हुक्म

ज़कात

ज़कात की अहमियत

मुसलमान भाइयो! नमाज़ के बाद इस्लाम का सबसे बड़ा रुक्न ज़कात है। आम तौर पर चूँकि इबादतों के सिलसिले में नमाज़ के बाद रोज़े का नाम लिया जाता है, इसलिए लोग यह समझने लगे हैं कि नमाज़ के बाद रोज़े का नम्बर है। मगर क़ुरआन मजीद से हमको मालूम होता है कि इस्लाम में नमाज़ के बाद सबसे बढ़कर ज़कात की अहमियत है। ये दो बड़े सुतून हैं जिनपर इस्लाम की इमारत खड़ी होती है। इनके हटने के बाद इस्लाम क़ायम नहीं रह सकता।

ज़कात का मतलब

ज़कात का मतलब है – पाकी और सफ़ाई। अपने माल में से एक हिस्सा ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों के लिए निकालने को ज़कात इसलिए कहा गया है कि इस तरह आदमी का माल और उस माल के साथ ख़ुद आदमी का नफ़्स और मन भी पाक हो जाता है। जो शख़्स ख़ुदा की दी हुई दौलत में से ख़ुदा के बन्दों का हक़ नहीं निकालता, उसका माल नापाक है और माल के साथ उसका नफ़्स भी नापाक है, क्योंकि उसके नफ़्स में एहसान-फ़रामोशी भरी हुई है। उसका दिल इतना तंग है, इतना ख़ुदग़रज़ है, इतना ज़रपरस्त (माल का पुजारी) है कि जिस ख़ुदा ने उसको उसकी असली ज़रूरतों से ज़्यादा दौलत देकर उसपर एहसान किया, उसके एहसान का हक़ अदा करते हुए भी उसका दिल दुखता है। ऐसे शख़्स से क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह दुनिया में कोई नेकी भी ख़ुदा के वास्ते कर सकेगा, कोई क़ुरबानी भी सिर्फ़ अपने दीन व ईमान के लिए बरदाश्त कर सकेगा? इसलिए ऐसे आदमी का दिल भी नापाक और उसका वह माल भी नापाक, जिसे वह इस तरह जमा करे।

ज़कात, एक इमतिहान

अल्लाह तआला ने ज़कात का फ़र्ज़ आएद करके हर शख़्स को इमतिहान में डाला है। जो शख़्स ख़ुशी से अपनी ज़रूरत से ज़्यादा माल में से ख़ुदा का हक़ निकालता है और उसके बन्दों की मदद करता है, वही अल्लाह के काम का आदमी है और वही इस लायक़ है कि ईमानदारों की जमाअत में उसका शुमार किया जाए। और जिसका दिल इतना तंग है कि वह इतनी ज़रा-सी क़ुरबानी भी ख़ुदा के लिए सहन नहीं कर सकता, वह अल्लाह के किसी काम का नहीं। वह हरगिज़ इस लायक़ नहीं कि ईमानवालों की जमाअत में दाख़िल किया जाए। वह तो सड़ा हुआ हिस्सा है, जिसे जिस्म से अलग कर देना ही बेहतर है, वरना सारे जिस्म को सड़ा देगा। यही वजह है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की वफ़ात के बाद जब अरब के कुछ क़बीलों ने ज़कात देने से इनकार कर दिया तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने उनसे इस तरह जंग की, जैसे इस्लाम के दुश्मनों से की जाती है, हालाँकि वे लोग नमाज़ पढ़ते थे, ख़ुदा व रसूल का इक़रार करते थे। इससे मालूम हुआ कि ज़कात के बिना नमाज़, रोज़ा और ईमान की शहादत सब बेकार है। किसी चीज़ का भी एतबार नहीं किया जा सकता।

तमाम नबियों की उम्मत पर ज़कात फ़र्ज़ की गई

क़ुरआन मजीद उठाकर देखिए। आपको नज़र आएगा कि पुराने ज़माने से सारे नबियों की उम्मतों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म लाज़मी तौर पर दिया गया है, और दीन इस्लाम कभी किसी नबी के ज़माने में भी इन दो चीज़ों से ख़ाली नहीं रहा। हज़रत इबराहीम (अलै०) और उनकी नस्ल के नबियों का ज़िक्र करने के बाद अल्लाह फ़रमाता है—

وَجَعَلْنٰهُمْ اَئِمَّةً يَّهْدُوْنَ بِاَمْرِنَا وَاَوْحَيْنَا اِلَيْهِمْ فِعْلَ الْخَيْرَاتِ وَاِقَامَ الصَّلٰوةِ وَاِيْتَاءَ الزَّكٰوةِ وَكَانُوْا لَنَا عَابِدِيْنَ۝

हमने उनको इनसानों का पेशवा बनाया और वे हमारे हुक्म के मुताबिक़ लोगों की रहनुमाई करते थे। हमने वह्य के ज़रिए से उनको नेक काम करने, नमाज़ पढ़ने और ज़कात देने की तालीम

दी और वे हमारे इबादतगुज़ार बन्दे थे। (क़ुरआन, 21:73)

हज़रत इसमाईल (अलै०) के बारे में कहा गया—

وَكَانَ يَأْمُرُ أَهْلَهُ بِالصَّلٰوةِ وَالزَّكٰوةِ وَكَانَ عِنْدَ رَبِّهِ مَرْضِيًّا○

वे अपने लोगों को नमाज़ और ज़कात का हुक्म देते थे और वे अपने रब के नज़दीक पसन्दीदा थे। (क़ुरआन, 19:55)

हज़रत मूसा (अलै०) ने अपनी क़ौम के लिए दुआ की कि ख़ुदाया! हमें इस दुनिया की भलाई भी दे और आख़िरत की भलाई भी। आपको मालूम है कि इसके जवाब में अल्लाह तआला ने क्या फ़रमाया? जवाब में कहा गया—

عَذَابِىٓ أُصِيبُ بِهِ مَنْ أَشَآءُ وَرَحْمَتِى وَسِعَتْ كُلَّ شَىْءٍ فَسَأَكْتُبُهَا لِلَّذِينَ يَتَّقُونَ وَيُؤْتُونَ الزَّكٰوةَ وَالَّذِينَ هُمْ بِآيٰتِنَا يُؤْمِنُونَ○

मैं अपने अज़ाब में जिसे चाहूँगा घेर लूँगा, हालाँकि मेरी रहमत हर चीज़ पर छाई हुई है। मगर उस रहमत को मैं उन्हीं लोगों के हक़ में लिखूँगा जो मुझसे डरेंगे और ज़कात देंगे और हमारी आयतों पर ईमान लाएँगे। (क़ुरआन, 7:156)

हज़रत मूसा (अलै०) की क़ौम चूँकि छोटे दिल की थी और रुपये पर जान देती थी, जैसाकि आज भी यहूदियों का हाल आप देखते हैं, इसलिए अल्लाह तआला ने इतने बड़े मर्तबेवाले पैग़म्बर की दुआ के जवाब में साफ़ फ़रमा दिया कि तुम्हारी उम्मत अगर ज़कात की पाबन्दी करेगी, तब तो उसके लिए मेरी रहमत का वादा है, वरना अभी से साफ़ सुन रखो कि वह मेरी रहमत से महरूम हो जाएगी और मेरा अज़ाब उसे घेर लेगा। इसी वजह से मूसा (अलै०) के बाद भी बार-बार बनी इसराईल को इस बात पर तंबीह की जाती रही, बार-बार उनसे वादे लिए गए कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करें और नमाज़ व ज़कात की पाबन्दी करें; यहाँ तक कि आख़िर में साफ़ नोटिस दे दिया गया—

وَقَالَ اللّٰهُ إِنِّى مَعَكُمْ ط لَئِنْ أَقَمْتُمُ الصَّلٰوةَ وَآتَيْتُمُ الزَّكٰوةَ وَآمَنْتُمْ

بِرُسُلِي وَعَزَّرْتُمُوهُمْ وَاَقْرَضْتُمُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا لَّاُكَفِّرَنَّ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ○

और अल्लाह ने फ़रमाया कि ऐ बनी इसराईल! अगर तुम नमाज़ पढ़ते और ज़कात देते रहो और मेरे रसूलों पर ईमान लाओ और जो रसूल आएँ उनकी मदद करो, और अल्लाह को अच्छा क़र्ज दो तो मैं तुम्हारी बुराइयाँ तुमसे दूर कर दूँगा। (क़ुरआन, 5:12)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पहले आख़िरी नबी हज़रत ईसा (अलै०) थे। उनको भी अल्लाह तआला ने नमाज़ और ज़कात का साथ-साथ हुक्म दिया, जैसाकि क़ुरआन की सूरा मरियम में है—

وَجَعَلَنِي مُبٰرَكًا اَيْنَ مَا كُنْتُ وَاَوْصَانِي بِالصَّلٰوةِ وَالزَّكٰوةِ مَادُمْتُ حَيًّا○

अल्लाह तआला ने मुझे बरकत दी, जहाँ भी मैं हूँ मुझे हिदायत फ़रमाई कि नमाज़ पढ़ूँ और ज़कात देता रहूँ जब तक ज़िन्दा रहूँ। (क़ुरआन, 19:31)

इससे मालूम हो गया कि दीने इस्लाम शुरू ही से हर नबी के ज़माने में नमाज़ और ज़कात के इन दो बड़े स्तूनों पर क़ायम हुआ है और कभी ऐसा नहीं हुआ कि ख़ुदा पर ईमान रखनेवाली किसी उम्मत को भी इन दो फ़र्ज़ों से माफ़ रखा गया हो।

उम्मते मुसलिमा पर ज़कात फ़र्ज़ है

अब देखिए कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की शरीअत में ये दोनों फ़र्ज़ किस तरह साथ-साथ लगे हुए हैं। क़ुरआन मजीद खोलते ही सबसे पहले जिन आयतों पर आपकी नज़र पड़ती है, वे क्या हैं? यह कि—

ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَارَيْبَ فِيْهِ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ○

यह क़ुरआन अल्लाह की किताब है, इसमें कोई शक नहीं। यह परहेज़गारों को दुनिया में ज़िन्दगी का सीधा रास्ता बताता है और परहेज़गार वे लोग हैं जो ग़ैब पर ईमान लाते हैं और नमाज़ पढ़ते हैं, और जो रोज़ी हमने उनको दी है उसमें से (ख़ुदा की राह में) ख़र्च करते हैं। (क़ुरआन, 2:2-3)

फिर फ़रमाया—

أُولَـٰئِكَ عَلَىٰ هُدًى مِّن رَّبِّهِمْ وَأُولَـٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ۝

ऐसे ही लोग अपने पालनहार की तरफ़ से हिदायत पाए हुए हैं और कामयाबी ऐसे ही लोगों के लिए है। (क़ुरआन, 2:5)

यानी जिनमें ईमान नहीं और जो नमाज़ और ज़कात के पाबन्द नहीं वे न हिदायत पर हैं और न उन्हें कामयाबी मिल सकती है।

इसके बाद इसी सूरा बक़रा को पढ़ते जाइए। कुछ पन्नों के बाद फिर हुक्म होता है—

أَقِيمُوا الصَّلَوٰةَ وَآتُوا الزَّكَوٰةَ وَارْكَعُوا مَعَ الرَّاكِعِينَ۝

नमाज़ की पाबन्दी करो और ज़कात दो और रुकू करनेवालों के साथ रुकूअ करो (यानी जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ो)। (क़ुरआन, 2:43)

फिर थोड़ी दूर आगे चलकर इसी सूरा में कहा गया—

لَيْسَ الْبِرَّ أَنْ تُوَلُّوا وُجُوهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ وَلَـٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَالْمَلَـٰئِكَةِ وَالْكِتَـٰبِ وَالنَّبِيِّينَ وَآتَى الْمَالَ عَلَىٰ حُبِّهِ ذَوِي الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَـٰمَىٰ وَالْمَسَاكِينَ وَابْنَ السَّبِيلِ وَالسَّائِلِينَ وَفِي الرِّقَابِ وَأَقَامَ الصَّلَوٰةَ وَآتَى الزَّكَوٰةَ وَالْمُوفُونَ بِعَهْدِهِمْ إِذَا عَـٰهَدُوا وَالصَّـٰبِرِينَ فِي الْبَأْسَاءِ وَالضَّرَّاءِ وَحِينَ الْبَأْسِ ط

أُولٰئِكَ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا وَأُولٰئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ۝

नेक़ी सिर्फ़ इसका नाम नहीं है कि पूरब या पश्चिम की ओर तुमने मुँह कर लिया, बल्कि नेकी उस शख़्स की है जिसने अल्लाह और आख़िरत और फ़रिश्तों और ख़ुदा की किताबों और पैग़म्बरों पर ईमान रखा और अल्लाह की मुहब्बत में अपने ज़रूरतमंद रिश्तेदारों और यतीमों और मिसकीनों और मुसाफ़िरों और माँगनेवालों पर अपना माल ख़र्च किया, और (लोगों को क़र्ज़ या ग़ुलामी या क़ैद से) गरदनें छुड़ाने में मदद दी और नमाज़ की पाबन्दी की और ज़कात अदा की। और नेक लोग वे हैं जो वादा करने के बाद अपने वादे को पूरा करनेवाले हों और मुसीबत और नुक़सान और जंग के मौक़े पर सब्र के साथ हक़ की राह पर डट जाएँ। ऐसे ही लोग सच्चे मुसलमान हैं और ऐसे ही लोग मुत्तक़ी व परहेज़गार हैं। (क़ुरआन, 2:177)

फिर आगे देखिए! सूरा मायदा में क्या इरशाद होता है—

إِنَّمَا وَلِيُّكُمُ اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا الَّذِيْنَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ رَاكِعُوْنَ وَمَنْ يَّتَوَلَّ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَإِنَّ حِزْبَ اللّٰهِ هُمُ الْغَالِبُوْنَ ۝

मुसलमानो! तुम्हारे सच्चे दोस्त और मददगार सिर्फ़ अल्लाह, रसूल और ईमानदार लोग हैं, यानी ऐसे लोग जो नमाज़ पढ़ते और ज़कात देते और ख़ुदा के आगे झुकते हैं। फिर जो शख़्स अल्लाह और रसूल और ईमानदार लोगों को दोस्त बनाए, वह अल्लाह की पार्टी का आदमी है और अल्लाह की पार्टी ही छा जानेवाली है।

(क़ुरआन, 5:55-56)

अहले ईमान की निशानी, नमाज़ व ज़कात

इन बेहतरीन आयतों में एक बड़ा क़ायदा बयान किया गया है। सबसे

पहले तो इस आयत से आपको मालूम हो गया कि ईमानवाले सिर्फ़ वे लोग ही हैं जो नमाज़ पढ़ते और ज़कात देते हैं। इस्लाम के इन दो अरकान से जो लोग मुँह फेरें, उनके ईमान का दावा ही झूठा है। फिर इस आयत से यह मालूम हुआ कि अल्लाह और रसूल और ईमानवालों की एक पार्टी है और ईमानदार आदमी का काम यह है कि सबसे अलग होकर इस पार्टी में शामिल हो जाए। जो मुसलमान इस पार्टी से बाहर रहनेवाले किसी शख़्स को चाहे वह बाप हो, भाई हो, बेटा हो, पड़ोसी हो या हम वतन हो, या कोई भी हो, अगर वह उसको अपना वली बनाएगा और उससे मुहब्बत व मददगारी का ताल्लुक़ रखेगा तो उसे यह उम्मीद न रखनी चाहिए कि अल्लाह उससे मददगारी का ताल्लुक़ रखना पसन्द फ़रमाएगा। सबसे आख़िर में इस आयत से यह भी मालूम हुआ कि ईमानवालों को दुनिया में ग़लबा उसी वक़्त हासिल हो सकता है, जब वे यकसू होकर अल्लाह और रसूल (सल्ल०) और सिर्फ़ ईमानवालों ही को अपना वली, मददगार, दोस्त और साथी बनाएँ।

इस्लामी बिरादरी की बुनियादें

अब आगे चलिए! सूरा तौबा में अल्लाह तआला ने मुसलमानों को उन काफ़िरों व मुशरिकों से जंग का हुक्म दिया जो इस्लाम और मुसलमानों को मिटाने पर तुले हैं और लगातार कई रुकू तक जंग ही के बारे में हिदायतें दी हैं। इस सिलसिले में इरशाद होता है—

فَإِنْ تَابُوْا وَاَقَامُوْا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ فَاِخْوَانُكُمْ فِى الدِّيْنِ○

फिर अगर वे कुफ़्र व शिर्क से तौबा करें, ईमान ले आएँ और नमाज़ पढ़ें और ज़कात दें तो वे तुम्हारे दीनी भाई हैं।

(क़ुरआन, 9:11)

यानी सिर्फ़ कुफ़्र व शिर्क से तौबा करना और ईमान का इक़रार कर लेना काफ़ी नहीं है। इस बात का सबूत कि वे वाक़ई कुफ़्र व शिर्क से तौबा कर चुके हैं और हक़ीक़त में ईमान लाए हैं, सिर्फ़ इस तरह मिल सकता है कि वे नमाज़ की पाबन्दी करें और ज़कात दें। इसलिए अगर

वे अपने इस अमल से अपने ईमान का सबूत दे दें तब तो तुम्हारे दीनी भाई हैं, वरना उनको भाई न समझो और उनसे जंग बन्द न करो। फिर आगे चलकर इसी सूरा में फ़रमाया—

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنَاتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ يَأْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَيُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ○

> मोमिन मर्द और मोमिन औरतें एक-दूसरे के मुहाफ़िज़ व मददगार हैं, और इन मोमिन मर्दों और औरतों की ख़ूबियाँ ये हैं कि वे नेकी का हुक्म देते हैं, बुराई से रोकते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और ख़ुदा और रसूल की इताअत करते हैं, ऐसे ही लोगों पर अल्लाह रहमत करेगा। (क़ुरआन, 9:71)

सुन लिया आपने! कोई शख़्स मुसलमानों का दीनी भाई बन ही नहीं सकता जब तक कि वह ईमान का इक़रार करके अमलन नमाज़ और ज़कात की पाबन्दी न करे। ईमान, नमाज़ और ज़कात ये तीन चीज़ें मिलकर ईमानवालों की जमाअत (पार्टी) बनाती हैं। जो लोग इन तीनों के पाबन्द हैं, वे इस पाक जमाअत के अन्दर हैं और उन्हीं के बीच दोस्ती, मुहब्बत और मददगारी का ताल्लुक़ है, और जो इनके पाबन्द नहीं हैं, वे इस जमाअत के बाहर हैं, भले ही वे नाम के मुसलमान क्यों न हों। उनसे दोस्ती, मुहब्बत और मदद का ताल्लुक़ का मतलब यह है कि तुमने अल्लाह के क़ानून को तोड़ दिया और अल्लाह की पार्टी को तितर-बितर कर दिया। फिर तुम दुनिया में ग़ालिब होकर रहने की उम्मीद कैसे कर सकते हो? इस हक़ीक़त को और आगे देखिए।

अल्लाह की मदद की शर्तें

وَلَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ ط اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِىٌّ عَزِيْزٌ اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ

فِى الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَاَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَنَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ ۗ وَلِلّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ○

अल्लाह ज़रूर उनकी मदद करेगा जो उसकी मदद करेंगे। और अल्लाह ज़बरदस्त ताक़तवाला और सबपर ग़ालिब है। ये वे लोग हैं जिनको अगर हम ज़मीन में हुकूमत दें तो वे नमाज़ क़ायम करेंगे, ज़कात देंगे, नेकी का हुक्म देंगे और बुराई से रोकेंगे और सब चीज़ों का अंजाम ख़ुदा के हाथ में है। (क़ुरआन, 22:40-41)

इन आयतों में मुसलमानों को भी वही नोटिस दिया गया है जो बनी इसराईल को दिया गया था। अभी आपको सुना चुका हूँ कि अल्लाह तआला ने बनी इसराईल को क्या नोटिस दिया था। उनसे साफ़ फ़रमा दिया था कि मैं उसी वक़्त तुम्हारे साथ हूँ जब तक कि तुम नमाज़ पढ़ते और ज़कात देते रहोगे और मेरे नबियों के मिशन में उनका साथ दोगे, यानी मेरे क़ानून को दुनिया में लागू करने की कोशिश करते रहोगे। ज्योंही तुमने इस काम को छोड़ा, मैं अपना हाथ तुम्हारी मदद से खींच लूँगा। ठीक यही बात अल्लाह ने मुसलमानों से भी फ़रमाई है। उनसे साफ़ कह दिया है कि अगर ज़मीन में ताक़त हासिल करके तुम नमाज़ क़ायम करोगे और ज़कात दोगे और नेकियाँ फैलाओगे और बुराइयों को मिटाओगे तब तो मैं तुम्हारा मददगार हूँ और जिसका मैं मददगार हूँ उसे कौन दबा सकता है। लेकिन तुमने अगर ज़कात से मुँह फेरा और ज़मीन में हुकूमत हासिल करके नेकियों के बजाए बुराइयाँ फैलाईं और बुराइयों के बजाए नेकियों को मिटाना शुरू किया और मेरा कलिमा बुलन्द करने के बजाए अपना कलिमा बुलंद करने लगे और टैक्स वुसूल करके अपने लिए ज़मीन पर जन्नतें बनाने ही को ज़मीन की विरासत का मक़सद समझ लिया, तो सुन रखो कि मेरी मदद तुम्हारे साथ न होगी, फिर शैतान ही तुम्हारा मददगार रह जाएगा।

मुसलमानों को तंबीह

अल्लाहु अकबर! कितना बड़ा इबरत का मक़ाम है। जो धमकी बनी

इसराईल को दी गई थी, उसको उन्होंने निरी ज़बानी धमकी समझा और उसके ख़िलाफ़ काम करके अपना अंजाम देख लिया कि आज ज़मीन पर मारे-मारे फिर रहे हैं, जगह-जगह से निकाले जा रहे हैं और कहीं ठिकाना नहीं पाते।[1] करोड़ों रुपयों के ख़त्ते उनके पास भरे पड़े हैं। दुनिया की सबसे ज़्यादा दौलतमन्द क़ौम है, मगर यह रुपया उनके किसी काम नहीं आता। नमाज़ के बजाए बदकारी और ज़कात के बजाए सूदख़ोरी का गन्दा तरीक़ा इख़तियार करके उन्होंने ख़ुद भी ख़ुदा की लानत अपने ऊपर लाद ली और अब इस लानत को लिए हुए ताऊन (प्लेग) के चूहों की तरह दुनिया भर में उसे फैलाते फिर रहे हैं। यही धमकी मुसलमानों को दी गई और मुसलमानों ने इसकी कुछ परवाह न करके नमाज़ और ज़कात से ग़फ़लत की और ख़ुदा की दी हुई ताक़त को नेकियाँ फैलाने और बुराइयों को मिटाने में इस्तेमाल करना छोड़ दिया। इसका नतीजा देख लीजिए कि हुकूमत के तख़्त से उतारकर फेंक दिए गए, दुनिया भर में ज़ालिमों के ज़रिए सताए जा रहे हैं और धरती पर हर जगह कमज़ोर और दबे हुए हैं। नमाज़ और ज़कात को छोड़ देने का बुरा नतीजा तो देख चुके। अब उनमें एक जमाअत ऐसी पैदा हुई है जो मुसलमानों को बेहयाई, फ़हश और बदकारी में फँसाना चाहती है और उनसे कह रही है कि तुम्हारी ग़रीबी का इलाज यह है कि बैंक, इन्श्योरेन्स कम्पनियाँ क़ायम करो और सूद खाना शुरू कर दो। ख़ुदा की क़सम! अगर उन्होंने यह किया तो वही रुसवाई और बेइज़्ज़ती उनपर छाकर रहेगी, जिसके यहूदी शिकार हुए हैं और ये भी ख़ुदा की उस लानत में गिरफ़्तार हो जाएँगे, जिसने बनी इसराईल को घेर रखा है।

ज़कात न देनेवालों का अंजाम

मुसलमान भाइयो! अगले ख़ुतबों में मैं आपको बताऊँगा कि ज़कात

---

1. जिस वक़्त यह ख़ुतबा दिया गया था (1938 ई०) उस वक़्त दुनिया में कहीं यहूदियों का आज़ाद मुल्क नहीं था। अब 1942 ई० से फ़िलिस्तीन की ज़मीन हड़पकर 'इसराईल' नाम से यहूदी मुल्क क़ायम किया गया है जो सुपर पावर (Super Power) के साए में पल रहा है। अपने नाजायज़ वुजूद की वजह से हमेशा ख़ौफ़ में मुबतला है और अपनी बेहयाई की हरकतों से पूरी दुनिया में नफ़रत की निगाह से देखा जाता है।

क्या चीज़ है? कितनी बड़ी ताक़त अल्लाह ने इस चीज़ में भर दी है और आज जिस ख़ुदा की रहमत को मुसलमान एक मामूली चीज़ समझ रहे हैं, वह हक़ीक़त में कितनी बड़ी बरकतें रखती है। आज के ख़ुतबे में मेरा मक़सद आपको सिर्फ़ यह बताना था कि नमाज़ और ज़कात का इस्लाम में क्या दर्जा है। बहुत-से मुसलमान यह समझते हैं और उनके मौलवी उनको रात-दिन यह इतमिनान दिलाते रहते हैं कि नमाज़ न पढ़कर और ज़कात न देकर भी वे मुसलमान रहते हैं। मगर क़ुरआन इसे साफ़ लफ़्ज़ों में ग़लत कहता है। क़ुरआन के मुताबिक़ कलिम-ए-तैय्यबा का इक़रार ही बेमानी है, अगर आदमी उसके सबूत में नमाज़ और ज़कात का पाबन्द न हो। इसी बुनियाद पर हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने ज़कात से इनकार करनेवालों को काफ़िर समझकर उनके ख़िलाफ़ तलवार उठाई थी, जैसाकि मैं अभी आपसे बयान कर चुका हूँ। तमाम सहाबा (रज़ि०) को शुरू में शक था कि क्या वह मुसलमान जो ख़ुदा और रसूल का इक़रार करता है और नमाज़ भी पढ़ता है, उन लोगों के साथ शामिल किया जा सकता है या नहीं, जिनपर तलवार उठाने का हुक्म है। मगर जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) जिनको अल्लाह ने नुबूवत के मक़ाम के क़रीब दर्जा दिया था, अपनी बात पर अड़ गए और उन्होंने इसरार के साथ फ़रमाया कि ख़ुदा की क़सम! अगर ये लोग उस ज़कात में से जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के ज़माने में दिया करते थे, ऊँट बाँधने की एक रस्सी भी रोकेंगे तो मैं उनपर तलवार उठाऊँगा, तो आख़िरकार तमाम सहाबा (रज़ि०) के दिलों को अल्लाह ने हक़ के लिए खोल दिया और सबने यह बात मान ली कि ज़कात से इनकार करनेवालों से जिहाद करना चाहिए। क़ुरआन मजीद तो साफ़ कहता है कि ज़कात न देना उन मुशरिकों का काम है जो आख़िरत का इनकार करते हैं।

وَوَيْلٌ لِّلْمُشْرِكِيْنَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ بِالْاٰخِرَةِ هُمْ كٰفِرُوْنَ ○

तबाही है उन मुशरिकों के लिए जो ज़कात नहीं देते और आख़िरत का इनकार करनेवाले हैं। (क़ुरआन, 41:6-7)

ज़कात की हक़ीक़त

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में मैं बयान कर चुका हूँ कि नमाज़ के बाद इस्लाम का सबसे बड़ा रुक्न ज़कात है। और यह इतनी बड़ी चीज़ है कि जिस तरह नमाज़ से इनकार करनेवाले को काफ़िर ठहराया गया है, उसी तरह ज़कात से इनकार करनेवालों को भी न सिर्फ़ काफ़िर ठहराया गया, बल्कि सहाबा किराम (रज़ि०) ने एक राय होकर उनके ख़िलाफ़ जिहाद किया।

अब मैं आज के ख़ुतबे में आपके सामने ज़कात की हक़ीक़त बयान करूँगा, ताकि आपको मालूम हो कि यह ज़कात दरअसल है क्या चीज़ और इस्लाम में इसको क्यों इतनी अहमियत दी गई है?

अल्लाह से क़ुर्बत कैसे हासिल होती है

अक़्ल व दानिश का इमतिहान

आपमें से कुछ लोग तो ऐसे सीधे-सादे होते हैं जो हर एक को दोस्त बना लेते हैं और कभी दोस्त बनाते वक़्त आदमी को परखते नहीं कि वह वाक़ई दोस्त बनाने के क़ाबिल भी है या नहीं। ऐसे लोग दोस्ती में अकसर धोखा खा जाते हैं और बाद में उनको बड़ी मायूसियों का सामना करना पड़ता है, लेकिन जो अक़्लमंद लोग हैं, वे जिन लोगों से मिलते हैं, उनको ख़ूब परखकर, हर तरीक़े से जाँच-पड़ताल करके देखते हैं, फिर जो कोई उनमें से सच्चा, मुख़लिस, वफ़ादार आदमी मिलता है, सिर्फ़ उसी को दोस्त बनाते हैं और बेकार आदमियों को छोड़ दिया करते हैं।

अल्लाह तआला सबसे बढ़कर हकीम व दाना है। उससे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वह हर किसी को अपना दोस्त बना लेगा, अपनी पार्टी में शामिल कर लेगा और अपने दरबार में इज़्ज़त और क़ुर्बत की जगह देगा। जब इनसानों की दानाई व अक़्लमन्दी का तक़ाज़ा यह है कि वे बिना जाँचे और परखे किसी को दोस्त नहीं बनाते, तो अल्लाह, जो

सारी दानाइयों और हिक्मतों का सरचश्मा है, उसके लिए तो नामुमकिन है कि बिना जाँचे और परखे हर एक को अपनी दोस्ती का दर्जा दे दे। ये करोड़ों इनसान जो ज़मीन पर फैले हुए हैं, जिनमें हर क़िस्म के आदमी पाए जाते हैं—अच्छे और बुरे—सबके सब इस क़ाबिल नहीं हो सकते कि अल्लाह की उस पार्टी में शामिल कर लिए जाएँ, जिसे अल्लाह तआला दुनिया में अपनी ख़िलाफ़त का मर्तबा और आख़िरत में अपनी क़ुर्बत का दर्जा देना चाहता है। अल्लाह ने बड़ी हिकमत के साथ कुछ इमतिहान, कुछ आज़माइशें, कुछ पैमाने जाँचने और परखने के लिए मुक़र्रर कर दिए हैं कि इनसानों में से जो कोई इनपर पूरा उतरे, वह तो अल्लाह की पार्टी में आ जाए और जो इनपर पूरा न उतरे, वह ख़ुद-बख़ुद इस पार्टी से अलग होकर रह जाए और वह ख़ुद भी जान ले कि मैं इस पार्टी में शामिल होने के क़ाबिल नहीं हूँ।

ये पैमाने क्या हैं? अल्लाह तआला चूँकि हकीम व दाना है, इसलिए सबसे पहला इमतिहान वह आदमी की हिकमत व दानाई का ही लेता है। वह देखता है कि उसमें समझ-बूझ भी है या नहीं। कोरा बुद्धू तो नहीं है। इसलिए कि जाहिल और बेवक़ूफ़ कभी दाना और हकीम का दोस्त नहीं बन सकता। जो आदमी अल्लाह की निशानियों को देखकर पहचान ले कि वही मेरा मालिक और पैदा करनेवाला है, उसके सिवा कोई माबूद, कोई पालनहार, कोई दुआएँ सुनने और मदद करनेवाला नहीं है, और जो शख़्स अल्लाह के कलाम को सुनकर जान ले कि यह मेरे मालिक का ही कलाम है, किसी और का कलाम नहीं हो सकता, और जो शख़्स सच्चे नबी और झूठे दावा करनेवालों की ज़िन्दगी, उनके अख़लाक़, उनके मामलों, उनकी तालिमात, उनके कारनामों के फ़र्क़ को ठीक-ठीक समझे और पहचान जाए कि नुबूवत का दावा करनेवालों में से फ़लाँ पाक-ज़ात तो हक़ीक़त में ख़ुदा की तरफ़ से हिदायत देने के लिए आई है और फ़लाँ दज्जाल है, धोखा देनेवाला है, ऐसा आदमी दानाई के इमतिहान में पास हो जाता है और उसको इनसानों की भीड़-भाड़ से अलग करके अल्लाह तआला अपनी पार्टी के चुने हुए उम्मीदवारों में शामिल कर लेता है, बाक़ी लोग, जो पहले ही इमतिहान में फ़ेल हो जाते हैं, उनको छोड़ दिया जाता है कि जिधर चाहें, भटकते फिरें।

अख़लाक़ी क़ुव्वत की आज़माइश

इस पहले इमतिहान में जो उम्मीदवार कामयाब हो जाते हैं, उन्हें फिर दूसरे इमतिहान में शामिल होना पड़ता है। इस दूसरे इमतिहान में आदमी को अक़्ल के साथ उसकी अख़लाक़ी ताक़त को भी परखा जाता है। यह देखा जाता है कि इस आदमी में सच्चाई और नेकी को जानकर उसे मान लेने और उसपर अमल करने की और झूठ और बुराई को जानकर उसे छोड़ देने की ताक़त भी है या नहीं? यह अपने नफ़्स की ख़्वाहिशों का, बाप-दादा के पीछे चलने का, ख़ानदानी रस्मों का, दुनिया के आम ख़यालात और तौर-तरीक़ों का ग़ुलाम तो नहीं है? उसमें यह कमज़ोरी तो नहीं है कि एक चीज़ को ख़ुदा की हिदायत के ख़िलाफ़ पाता है और जानता है कि वह बुरी है, मगर फिर भी उसी के चक्कर में पड़ा रहता है और दूसरी चीज़ को जानता है कि ख़ुदा के नज़दीक वही हक़ और पसन्दीदा है, मगर इसपर भी उसे क़बूल नहीं करता? इस इमतिहान में जो लोग फेल हो जाते हैं, उन्हें भी अल्लाह तआला अपनी पार्टी में लेने से इनकार कर देता है और सिर्फ़ उन लोगों को चुनता है, जिनकी तारीफ़ यह है—

فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْۢ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى

لَا انْفِصَامَ لَهَا ۝

> यानी, ख़ुदा की हिदायत के ख़िलाफ़ जो भी रास्ता और तरीक़ा हो, उसे वे हिम्मत के साथ छोड़ दें, किसी चीज़ की परवा न करें और सिर्फ़ अल्लाह के बताए हुए रास्ते पर चलने के लिए तैयार हो जाएँ, भले ही उसपर कोई नाराज़ हो या ख़ुश।
>
> (क़ुरआन, 2:256)

इताअत और फ़रमाबरदारी की परख

इस इमतिहान में जो लोग कामयाब निकलते हैं, उनको फिर तीसरे दरजे का इमतिहान देना पड़ता है। इस दरजे में इताअत और फ़रमाबरदारी का इमतिहान है। यहाँ हुक्म दिया जाता है कि जब हमारी तरफ़ से ड्यूटी की

पुकार बुलंद हो तो अपनी नींद क़ुरबान करो और हाज़िर हो, अपने काम-काज का हरज करो और आओ। अपनी दिलचस्पियों को, अपने फ़ायदों को, अपने आनन्द और सैर-सपाटे को छोड़ो और आकर फ़र्ज़ पूरा करो। गर्मी हो, जाड़ा हो, कुछ हो हर हाल में, जब फ़र्ज़ के लिए पुकारा जाए तो हर कठिनाई को सहो और दौड़े हुए आओ। फिर जब हम हुक्म दें तो सुबह से शाम तक भूखे-प्यासे रहो, और अपने नफ़्स की ख़्वाहिशों को रोको तो इस हुक्म की पूरी-पूरी तामील होनी चाहिए, भले ही भूख-प्यास में कैसी ही तकलीफ़ हो और चाहे मज़ेदार खानों और शरबतों के ढेर ही सामने क्यों न लगे हुए हों। जो लोग इस इमतिहान में कच्चे निकलते हैं, उनसे भी कह दिया जाता है कि तुम हमारे काम के नहीं हो। चुनाव सिर्फ़ उन लोगों का होता है जो इस तीसरे इमतिहान में भी पक्के साबित होते हैं, क्योंकि सिर्फ़ उन्हीं से यह उम्मीद की जा सकती है कि ख़ुदा की तरफ़ से जो क़ानून उनके लिए बनाए जाएँगे और जो हिदायतें उनको दी जाएँगी, वे छिपे और खुले, फ़ायदे और नुक़सान, आराम और तकलीफ़, हर हाल में उनकी पाबन्दी कर सकेंगे।

माल की कुरबानी की जाँच

इसके बाद चौथा इमतिहान माल की क़ुरबानी का लिया जाता है। तीसरे इमतिहान के कामयाब उम्मीदवार अभी इस क़ाबिल नहीं हुए कि ख़ुदा की सेवा में बाक़ायदा ले लिए जाएँ। अभी यह देखना है कि कहीं वे छोटे दिल के, पस्त हिम्मत, कम हौसला और तंगज़र्फ़ तो नहीं हैं? उनलोगों में से तो नहीं है जो मुहब्बत और दोस्ती के दावे तो लम्बे-चौड़े करते हैं, मगर अपने महबूब और दोस्त की ख़ातिर जब गिरह से कुछ ख़र्च करने का वक़्त आता है तो बग़लें झाँकते हैं। उनका हाल उस शख़्स जैसा तो नहीं है जो ज़बान से तो माताजी-माताजी कहता है और माताजी की ख़ातिर दुनियाभर से झगड़ा भी लेता है, मगर जब वह माताजी उसके अनाज की टोकरी या उसकी सब्ज़ी के ढेर पर मुँह मारती है तो लट्ठ लेकर उसके पीछे दौड़ता है और मार-मारकर उसकी खाल उड़ा देता है। ऐसे ख़ुदग़रज़, ज़रपरस्त तंगदिल आदमी को तो मामूली दरजे का अक़्लमंद इनसान भी दोस्त नहीं बनाता और एक बड़े दिलवाला इनसान इस क़िस्म के ओछे

आदमी को अपने पास जगह देना भी पसन्द नहीं करता। फिर भला वह बुज़ुर्ग व बरतर ख़ुदा, जो अपने ख़ज़ाने हर वक़्त अपनी अनगिनत मख़लूक़ पर हद से ज़्यादा लुटा रहा है, ऐसे शख़्स को अपनी दोस्ती के क़ाबिल कब समझ सकता है जो ख़ुदा के दिए हुए माल को ख़ुदा की राह में ख़र्च करते हुए भी जी चुराता हो? और वह ख़ुदा जिसकी दानाई व हिकमत सबसे बढ़कर है, किस तरह ऐसे आदमी को अपनी पार्टी में शामिल कर सकता है, जिसकी दोस्ती व मुहब्बत सिर्फ़ ज़बानी जमा ख़र्च तक हो और जिसपर कभी भरोसा न किया जा सकता हो? बस जो लोग इस चौथे इमतिहान में फ़ेल हो जाते हैं, उनको भी साफ़ जवाब दे दिया जाता है कि जाओ, तुम्हारे लिए अल्लाह की पार्टी में जगह नहीं है। तुम भी नाकारा हो और तुम इस सबसे बड़ी ख़िदमत का बोझ सँभालने के क़ाबिल नहीं हो जो ख़ुदा के ख़लीफ़ा के सुपुर्द की जाती है। इस पार्टी में तो सिर्फ़ वे लोग शामिल किए जाते हैं जो अल्लाह की मुहब्बत पर जान, माल, औलाद, ख़ानदान, वतन हर चीज़ की मुहब्बत को क़ुरबान कर दें—

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ۝

तुम नेकी के दर्जे को नहीं पा सकते जब तक वे चीज़ें ख़ुदा की राह में क़ुरबान न करो जिनसे तुमको मुहब्बत है। (क़ुरआन, 3:92)

हिज़्बुल्लाह (अल्लाह की जमाअत) के लिए मतलूबा सिफ़ात

(1) तंगदिल न हों

इस पार्टी में तंगदिलों के लिए कोई जगह नहीं है। इसमें तो सिर्फ़ वही लोग दाख़िल हो सकते हैं, जिनके दिल बड़े हों।

وَمَنْ يُّوْقَ شُحَّ نَفْسِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ۝

जो लोग दिल की तंगी से बच गए, वही फ़लाह पानेवाले हैं।
(क़ुरआन, 59:9)

(2) बड़े हौसलेवाले हों

यहाँ तो ऐसे बड़े हौसलेवाले लोगों की ज़रूरत है कि अगर किसी आदमी

ने उनके साथ दुशमनी भी की हो, उनको रंज और नुक़सान भी पहुँचाया हो, उनके दिल के टुकड़े भी उड़ा दिए हों, तब भी वे ख़ुदा की ख़ातिर उसके पेट को रोटी और उसके तन को कपड़ा देने से इनकार न करें और उसकी मुसीबत के वक़्त उसकी मदद से झिझकें नहीं।

وَلاَ يَاْتَلِ اُولُوا الْفَضْلِ مِنْكُمْ وَالسَّعَةِ اَنْ يُّؤْتُوْا اُوْلِي الْقُرْبٰى وَالْمَسَاكِيْنَ وَالْمُهَاجِرِيْنَ فِي سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلْيَعْفُوْا وَلْيَصْفَحُوْا اَلاَ تُحِبُّوْنَ اَنْ يَّغْفِرَ اللّٰهُ لَكُمْ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ○

तुममें से जो बड़े और खाते-पीते लोग हैं वे अपने अज़ीज़ों, मिसकीनों और ख़ुदा की राह में हिजरत करनेवालों की मदद से हाथ न खींच लें, बल्कि चाहिए कि उनको माफ़ करें और दरगुज़र करें। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें बख़्शे? हालाँकि अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला और रहम करनेवाला है।[1] (क़ुरआन, 24:22)

(3) बड़े दिलवाले हों

यहाँ उन बड़े दिलवालों की ज़रूरत है जो—

يُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلٰى حُبِّهٖ مِسْكِيْنًا وَّيَتِيْمًا وَّاَسِيْرًا ط اِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ اللّٰهِ لاَ نُرِيْدُ مِنْكُمْ جَزَاءً وَّلاَ شُكُوْرًا

सिर्फ़ ख़ुदा की मुहब्बत में मिसकीन और यतीम और क़ैदी को खाना खिलाते हैं और कहते हैं कि हम सिर्फ़ ख़ुदा के लिए तुम्हें खिला रहे हैं, तुमसे कोई बदला या शुक्रिया नहीं चाहते।
(क़ुरआन, 76:8-9)

(4) पाक दिल हों

यहाँ उन पाक दिलवालों की ज़रूरत है जो ख़ुदा की दी हुई दौलत

---

1. यह आयत उस मौक़े पर नाज़िल हुई थी जब हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के एक रिश्तेदार ने आपकी लड़की हज़रत आइशा (रज़ि०) पर इलज़ाम लगाने में हिस्सा लिया था और हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने इस नामुनासिब हरकत से नाराज़ होकर उसकी माली मदद बन्द कर दी थी। जब यह आयत नाज़िल हुई तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) काँप उठे और उन्होंने कहा कि मैं अपने ख़ुदा की बख़्शिश चाहता हूँ और उस आदमी की फिर मदद शुरू कर दी, जिसने उनको इतनी ज़्यादा रूहानी तकलीफ़ पहुँचाई थी।

में से ख़ुदा की राह में अच्छे से अच्छा माल छाँटकर दें।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ۝

ऐ ईमानवालो! तुमने जो माल कमाए हैं और जो रोज़ी तुम्हारे लिए हमने ज़मीन से निकाली है, उसमें से अच्छा माल ख़ुदा की राह में ख़र्च करो। बुरे-से-बुरा छाँटकर मत दो।

(क़ुरआन, 2:267)

(5) तंगदस्ती और ग़रीबी में भी ख़र्च करें

यहाँ उन बड़ी हिम्मतवालों की ज़रूरत है जो तंगदस्ती और ग़रीबी की हालत में भी अपना पेट काटकर ख़ुदा के दीन की ख़िदमत और ख़ुदा के बन्दों की मदद में रुपया ख़र्च करने में झिझकते नहीं।

وَسَارِعُوْٓا اِلٰى مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَجَنَّةٍ عَرْضُهَا السَّمٰوٰتُ وَالْاَرْضُ اُعِدَّتْ لِلْمُتَّقِيْنَ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِي السَّرَّآءِ وَالضَّرَّآءِ۝

अपने पालनहार की मग़फ़िरत और उस जन्नत की तरफ़ लपको, जिसका फैलाव ज़मीन और आसमान के बराबर है और जो तैयार करके रखी गई है उन परहेज़गार लोगों के लिए जो ख़ुशहाली और तंगहाली दोनों हालतों में ख़ुदा के लिए ख़र्च करते हैं।

(क़ुरआन, 3:133-134)

(6) फ़य्याज़ और सख़ी हों

यहाँ उन ईमानदारों की ज़रूरत है जो सच्चे दिल से इस बात पर यक़ीन रखते–हैं कि जो ख़ुदा की राह में ख़र्च किया जाएगा वह बेकार न होगा, बल्कि ख़ुदा दुनिया और आख़िरत में इसका सबसे अच्छा बदला देगा। इसलिए वह सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी हासिल करने के लिए ख़र्च करते हैं। इस बात की कोई परवा नहीं करते कि लोगों को उनकी फ़ैयाज़ी और सख़ावत का हाल मालूम हुआ या नहीं और किसी ने उनकी बख़शिश का शुक्रिया अदा किया या नहीं।

وَمَا تُنْفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَلِاَنْفُسِكُمْ ط وَمَا تُنْفِقُوْا إِلاَّ ابْتِغَاءَ وَجْهِ اللّٰهِ ط وَ

مَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ يُّوَفَّ إِلَيْكُمْ وَاَنْتُمْ لاَ تُظْلَمُوْنَ ○

तुम जो कुछ भी हक़ की राह में ख़र्च करोगे, वह तुम्हारे ही लिए भलाई है, जबकि तुम अपने इस ख़र्च में ख़ुदा के सिवा किसी और की ख़ुशनूदी नहीं चाहते, इस तरह जो कुछ भी तुम अच्छे काम में ख़र्च करोगे, उसका पूरा-पूरा फ़ायदा तुमको मिलेगा और तुम्हारे साथ ज़र्रा बराबर ज़ुल्म न होगा। (क़ुरआन, 2:272)

(7) हर हाल में ख़ुदा को याद रखें

यहाँ उन बहादुरों की ज़रूरत है जो दौलतमन्दी और ख़ुशहाली में भी ख़ुदा को नहीं भूलते, जिनको महलों में बैठकर और नाज़ो नेमत में रहकर भी ख़ुदा याद रहता है।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لاَتُلْهِكُمْ اَمْوَالُكُمْ وَلاَ اَوْلاَدُكُمْ عَنْ ذِكْرِاللّٰهِ وَ

مَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَاُولٰئِكَ هُمُ الْخَاسِرُوْنَ ○

ऐ ईमानवालो! माल और औलाद की मुहब्बत तुमको ख़ुदा की याद से ग़ाफ़िल न कर दे। जो ऐसा करेगा ख़ुद वह घाटे में रहनेवाला है। (क़ुरआन, 63:9)

ये अल्लाह की पार्टी में शामिल होनेवालों की ज़रूरी ख़ूबियाँ हैं। इनके बिना कोई भी आदमी ख़ुदा के दोस्तों में शामिल नहीं हो सकता। असल में यह इनसान के अख़लाक़ ही का नहीं, बल्कि उसके ईमान का भी बहुत कड़ा और सख़्त इमतिहान है। जो आदमी ख़ुदा की राह में ख़र्च करने से जी चुराता है, उस ख़र्च को अपने ऊपर जुर्माना समझता है, हीलों और बहानों से बचाव की सूरतें निकालता है और अगर ख़र्च करता है तो अपनी तकलीफ़ का बुख़ार लोगों पर एहसान रखकर निकालने की कोशिश करता है या यह चाहता है कि उसकी सख़ावत का दुनिया में प्रोपेगण्डा किया जाए। असल में वह ख़ुदा और आख़िरत पर ईमान ही नहीं रखता। वह

समझता है कि ख़ुदा की राह में जो कुछ गया वह बेकार गया। उसको अपना सुख, अपना आराम, अपनी लज़्ज़तें, अपने फ़ायदे और अपनी नामवरी, ख़ुदा से और उसकी ख़ुशी से ज़्यादा प्यारी होती है। वह समझता है कि जो कुछ है यही दुनिया की ज़िन्दगी है। अगर रुपया ख़र्च किया जाए तो इसी दुनिया में नाम और शोहरत होनी चाहिए, ताकि इस रुपये की क़ीमत यहीं वुसूल हो जाए, वरना रुपया भी गया और किसी को यह मालूम भी न हुआ कि फ़लाँ साहब ने फ़लाँ अच्छे काम में इतना माल ख़र्च किया है तो मानो सब मिट्टी में मिल गया। कुरआन मजीद में साफ़ फ़रमा दिया गया है कि इस क़िस्म का आदमी ख़ुदा के काम का नहीं। वह अगर ईमान का दावा करता है तो मुनाफ़िक़ है। चुनाँचे नीचे की आयतों पर ग़ौर करें—

(8) एहसान न जतलाएँ

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا لاَ تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى كَالَّذِىْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَلاَ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ○

ऐ ईमानवालो! अपनी ख़ैरात को एहसान रखकर और तकलीफ़ पहुँचाकर बेकार न कर दो उस आदमी की तरह जो सिर्फ़ लोगों को दिखाने और नाम चाहने के लिए ख़र्च करता है और अल्लाह और आख़िरत पर ईमान नहीं रखता है। (कुरआन, 2:267)

(9) माल जमा न करें

وَالَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَالْفِضَّةَ وَلاَ يُنْفِقُوْنَهَا فِى سَبِيْلِ اللّٰهِ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ○

जो लोग सोना और चाँदी जमा करके रखते हैं और उसे ख़ुदा की राह में ख़र्च नहीं करते, उन्हें सख़्त सज़ा की ख़बर दे दो।
(कुरआन, 9:34)

(10) अल्लाह की राह में रुख़सत तलब न करें

لاَ يَسْتَأْذِنُكَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ اَنْ يُّجَاهِدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ ۢ بِالْمُتَّقِيْنَ○ اِنَّمَا يَسْتَأْذِنُكَ الَّذِيْنَ لاَ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَارْتَابَتْ قُلُوْبُهُمْ فَهُمْ فِيْ رَيْبِهِمْ يَتَرَدَّدُوْنَ○

ऐ नबी! जो लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं, वे तो कभी न चाहेंगे कि उन्हें अपने जान व माल के साथ जिहाद में हिस्सा लेने से माफ़ रखा जाए। अल्लाह अपने परहेज़गार बन्दों को ख़ूब जानता है। ऐसी इजाज़त (जिहाद से छूट की) तो सिर्फ़ वही लोग चाहते हैं जो अल्लाह और आख़िरत पर ईमान नहीं रखते, उनके दिलों में शक है और वे अपने शक ही में परेशान हो रहे हैं।

(कुरआन, 9:44-45)

(11) राहे ख़ुदा में ख़ुशदिली से इताअत करें

وَمَا مَنَعَهُمْ اَنْ تُقْبَلَ مِنْهُمْ نَفَقَاتُهُمْ اِلاَّ اَنَّهُمْ كَفَرُوْا بِاللّٰهِ وَ بِرَسُوْلِهٖ وَ لاَ يَأْتُوْنَ الصَّلٰوةَ اِلاَّ وَهُمْ كُسَالٰى وَلاَ يُنْفِقُوْنَ اِلاَّ وَهُمْ كٰرِهُوْنَ○

ख़ुदा की राह में उनके ख़र्च किए हुए माल सिर्फ़ इसलिए क़बूल नहीं किए जा सकते कि वे असल में अल्लाह और रसूल पर ईमान नहीं रखते, नमाज़ को आते हैं तो दिल मसोसे हुए और माल ख़र्च करते हैं तो नाक-भौं चढ़ाकर। (कुरआन, 9:54)

اَلْمُنٰفِقُوْنَ وَالْمُنَافِقَاتُ بَعْضُهُمْ مِنْ ۢ بَعْضٍ يَأْمُرُوْنَ بِالْمُنْكَرِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمَعْرُوْفِ وَيَقْبِضُوْنَ اَيْدِيَهُمْ ط نَسُوا اللّٰهَ فَنَسِيَهُمْ اِنَّ الْمُنَافِقِيْنَ هُمُ الْفَاسِقُوْنَ○

मुनाफ़िक़ मर्द और मुनाफ़िक़ औरतें सब एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं, वे बुराई का हुक्म देते हैं और नेकी से मना करते हैं और ख़ुदा की राह में माल ख़र्च करने से हाथ रोकते हैं। वे ख़ुदा को भूल गए और ख़ुदा ने उनको भुला दिया, बेशक यही मुनाफ़िक़ और फ़ासिक़ हैं। (क़ुरआन, 9:67)

(12) राहे ख़ुदा में ख़र्च को जुर्माना न समझें

وَمِنَ الْاَعْرَابِ مَنْ يَّتَّخِذُمَا يُنْفِقُ مَغْرَمًا○

इन आराब यानी मुनाफ़िक़ों में से कुछ वे लोग भी हैं जो ख़ुदा की राह में ख़र्च करते भी हैं तो ज़बरदस्ती का जुर्माना समझकर। (क़ुरआन, 9:98)

(13) कंजूस न हों

هَاَنْتُمْ هٰؤُلَاءِ تُدْعَوْنَ لِتُنْفِقُوْا فِى سَبِيْلِ اللّٰهِ فَمِنْكُمْ مَّنْ يَّبْخَلُ وَمَنْ يَّبْخَلْ فَاِنَّمَا يَبْخَلُ عَنْ نَّفْسِهٖ وَاللّٰهُ الْغَنِىُّ وَاَنْتُمُ الْفُقَرَآءُ وَ اِنْ تَتَوَلَّوْا يَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ ثُمَّ لَا يَكُوْنُوْا اَمْثَالَكُمْ○

तुम लोग ऐसे हो कि जब तुमसे ख़ुदा की राह में ख़र्च करने के लिए कहा जाता है, तो तुममें से बहुत-से लोग कंजूसी करते हैं और जो इस काम में कंजूसी क़रता है वह ख़ुद अपने ही लिए कंजूसी करता है। अल्लाह तो ग़नी है। तुम ही उसके मुहताज हो। अगर तुमने ख़ुदा के काम में ख़र्च करने से मुँह मोड़ा तो वह तुम्हारी जगह दूसरी क़ौम को ले आएगा और वे तुम जैसे न होंगे। (क़ुरआन, 47:38)

मुसलमान भाइयो! यह है उस ज़कात की हक़ीक़त जो आपके दीन का एक स्तंभ है। इसको दुनिया की हुकूमतों के टैक्सों की तरह सिर्फ़ एक टैक्स न समझिए; बल्कि असल में यह इस्लाम की रूह और जान है।

यह हक़ीक़त में ईमान का इमतिहान है। जिस तरह इमतिहानों में बैठकर एक दर्जे से दूसरे दर्जे में आदमी तरक़्क़ी करता है, यहाँ तक कि आख़िरी इमतिहान देकर ग्रेजुएट बनता है, उसी तरह ख़ुदा के यहाँ भी कई इमतिहान हैं, जिनसे आदमी को गुज़रना पड़ता है, और जब वह चौथे इमतिहान यानी माल की क़ुरबानी का इमतिहान कामयाबी के साथ दे देता है, तब वह पूरा मुसलमान बनता है, हालाँकि यह आख़िरी इमतिहान नहीं है। इसके बाद सबसे ज़्यादा सख़्त इमतिहान जान की क़ुरबानी का है। जिसे मैं आगे चलकर बयान करूँगा। लेकिन इस्लाम के दायरे में या दूसरे लफ़्ज़ों में अल्लाह की पार्टी में आने के लिए दाख़िले के जो इमतिहान मुक़र्रर किए गए हैं, उनमें से यह आख़िरी इमतिहान है। आजकल कुछ लोग कहते हैं कि ख़र्च करने और रुपया बहाने की नसीहतें तो मुसलमानों को बहुत सुनाई जा चुकीं, अब इस ग़रीबी और मुफ़लिसी की हालत में तो उन्हें कमाने और जमा करने की नसीहतें देनी चाहिएँ, मगर उन्हें मालूम नहीं कि यह चीज़ जिसपर वे नाक-भौं चढ़ाते हैं, असल में यही इस्लाम की रूह है और मुसलमानों को जिस चीज़ ने पस्ती और ज़िल्लत के गढ़े में गिराया है, वह असल में इसी रूह की कमी है। मुसलमान इसलिए नहीं गिरे कि इस रूह ने उनको गिरा दिया, बल्कि इसलिए गिरे हैं कि यह रूह उनसे निकल गई है।

अगले ख़ुतबों में आपको बताऊँगा कि ज़कात और सदक़े हक़ीक़त में हमारी इजतिमाई ज़िन्दगी की जान हैं और उनमें हमारे लिए आख़िरत ही की नहीं, बल्कि दुनियाँ की भी सारी नेमतें जमा कर दी गई हैं।

समाजी और इजतिमाई ज़िन्दगी में ज़कात का दर्जा

मुसलमान भाइयो! इससे पहले दो ख़ुतबों में मैं आपके सामने ज़कात की हक़ीक़त बयान कर चुका हूँ। अब मैं आपके सामने उसके एक-दूसरे पहलू पर रौशनी डालूँगा।

अल्लाह की शाने करीमी

क़ुरआन मजीद में ज़कात और सदक़ों के लिए जगह-जगह 'इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है, यानी 'अल्लाह की राह में ख़र्च करना'। कुछ जगहों पर यह भी कहा गया है कि जो कुछ तुम अल्लाह की राह में ख़र्च करते हो, वह अल्लाह के ज़िम्मे 'क़र्ज़-हसना' (अच्छा क़र्ज़) है, मानो तुम अल्लाह को क़र्ज़ देते हो और अल्लाह तआला तुम्हारा क़र्ज़दार हो जाता है। बहुत-सी जगहों पर यह भी कहा गया है कि अल्लाह की राह में जो कुछ तुम दोगे, उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे है और वह सिर्फ़ उतना ही तुमको वापिस नहीं करेगा, बल्कि उससे बहुत ज़्यादा देगा। इस मज़मून पर ग़ौर कीजिए। क्या ज़मीन व आसमान का वह मालिक (अल्लाह की पनाह) आपका मुहताज है? क्या उस पाक ज़ात को आपसे क़र्ज़ लेने की ज़रूरत है? क्या वह बादशाहों का बादशाह, अनगिनत ख़ज़ानों का मालिक, अपने लिए आपसे कुछ माँगता है? अल्लाह की पनाह, अल्लाह की पनाह! उसी की देन पर तो आप पल रहे हैं, उसी की दी हुई रोज़ी तो आप खाते हैं, आपमें से हर अमीर और ग़रीब के पास जो कुछ है सब उसी का तो दिया हुआ है। आपके एक फ़क़ीर से लेकर एक करोड़पति और अरबपति तक हर शख़्स उसके करम का मुहताज है और वह किसी का मुहताज नहीं। उसको क्या ज़रूरत कि आपसे क़र्ज़ माँगे और अपनी ज़ात के लिए आपके आगे हाथ फैलाए? असल में यह भी उसी दाता की शान है कि वह आपसे ख़ुद आप ही के फ़ायदे के लिए,

आप ही की भलाई के लिए, आप ही के काम में ख़र्च करने को फ़रमाता है और कहता है यह ख़र्च मेरी राह में है, मुझपर क़र्ज़ है, मेरे ज़िम्मे इसका बदला है और मैं तुम्हारा एहसान मानता हूँ। तुम अपनी क़ौम के मुहताजों और ग़रीबों को दो। इसका बदला वे ग़रीब कहाँ से देंगे, उनकी तरफ़ से मैं दूँगा। तुम अपने ग़रीब रिश्तेदारों की मदद करो, उसका एहसान उनपर नहीं मुझपर है। मैं तुम्हारे इस एहसान को उतारूँगा। तुम अपने यतीमों, अपनी बेवाओं, अपने मजबूरों, अपने मुसाफ़िरों, अपने मुसीबत में फँसे हुए भाइयों को जो कुछ दो, उसे मेरे हिसाब में लिख लो। तुम्हारी माँग उनके ज़िम्मे नहीं, मेरे ज़िम्मे है और मैं उसको अदा करूँगा। तुम अपने परेशान भाइयों को क़र्ज़ दो और उनसे सूद न माँगो। उनको तंग न करो। अगर वे अदा करने के क़ाबिल न हों तो उनको जेल न भिजवाओ। उनके कपड़े और घर के बर्तन न बिकवाओ। उनके बाल-बच्चों को घर से बेघर न करो। तुम्हारा क़र्ज़ उनके ज़िम्मे नहीं, मेरे ज़िम्मे है। अगर वे असल धन अदा कर देंगे, तो उनकी तरफ़ से सूद मैं अदा कर दूँगा और अगर वे असल धन भी अदा न कर सकेंगे तो मैं असल और सूद दोनों तुम्हें दूँगा। इस तरह अपनी समाजी भलाई के कामों में, अपने ही लोगों की भलाई और बेहतरी के लिए जो कुछ तुम ख़र्च करोगे, इसका फ़ायदा हालाँकि तुम्हीं को मिलेगा, मगर इसका एहसान मुझपर होगा। मैं उसकी पाई-पाई मुनाफ़े के साथ तुम्हें वापस दूँगा।

यह है उस दाताओं के दाता, उस बादशाहों के बादशाह की शान। आपके पास जो कुछ है, उसी का दिया हुआ है। आप कहीं और से नहीं लाते, उसी के ख़ज़ानों से लेते हैं, और फिर जो कुछ देते हैं, उसको नहीं देते, अपने ही रिश्तेदारों, अपने ही भाई-बन्दों, अपनी ही क़ौम के लोगों को देते हैं या अपनी समाजी भलाई पर ख़र्च करते हैं, जिसका फ़ायदा आख़िरकार आप ही को पहुँचता है, मगर उस असली दानी को देखिए कि जो कुछ आप उससे ले-लेकर अपनों को देते हैं, उसे वह फ़रमाता है कि तुमने मुझे दिया, मेरी राह में दिया, मुझे क़र्ज़ दिया, मैं उसका बदला तुम्हें दूँगा। अल्लाहु अकबर! ख़ुदा वन्द आलम ही को यह शाने करीमी ज़ेब देती है। उसी बेनियाज़ बादशाह का यह मक़ाम है कि फ़य्याज़ी और सख़ावत के इस सबसे ऊँचे कमाल को ज़ाहिर करे। कोई आदमी इतने

ऊँचे ख़याल के बारे में सोच भी नहीं सकता।

इनफ़ाक़ की तलक़ीन क्यों?

अच्छा, अब इस बात पर ग़ौर कीजिए कि अल्लाह तआला ने आदमी को नेकी और फ़य्याज़ी पर उभारने का यह ढंग क्यों अपनाया? इस सवाल पर जितना ज़्यादा आप ग़ौर करेंगे, उतना ही ज़्यादा आपपर इस्लामी तालीमात की पाकीज़गी का हाल खुलेगा और आपका दिल गवाही देता चला जाएगा कि ऐसी बेमिसाल तालीम ख़ुदा के सिवा किसी और की तरफ़ से नहीं हो सकती।

इनसान ख़ुदग़रज़ है

आप जानते हैं कि इनसान कुछ अपनी फ़ितरत ही से नाशुक्रा है। इसकी नज़र तंग है। यह ज़्यादा दूर तक नहीं देख सकता। इसका दिल छोटा है, ज़्यादा बड़े और अच्छे ख़याल इसमें कम ही समा सकते हैं। यह ख़ुदग़रज़ है और अपनी ग़रज़ का भी कोई लम्बा-चौड़ा ख़याल इसके दिमाग़ में पैदा नहीं होता।

خُلِقَ الْاِنْسَانُ مِنْ عَجَلٍ ۝

इनसान जल्दबाज़ पैदा किया गया है। (क़ुरआन, 21:37)

यह हर चीज़ का नतीजा और फ़ायदा जल्दी देखना चाहता है और उसी नतीजे को नतीजा और उसी फ़ायदे को फ़ायदा समझता है, जो जल्दी से उसके सामने आ जाए और उसको महसूस हो जाए। दूर के नतीजों तक उसकी निगाह नहीं पहुँचती और बड़े पैमाने पर जो फ़ायदे हासिल होते हैं, जिन फ़ायदों का सिलसिला बहुत दूर तक चलता है, उनका इल्म तो उसे मुशकिल ही से होता है, बल्कि कभी-कभी तो होता ही नहीं। यह आदमी की फ़ितरी कमज़ोरी है और इस कमज़ोरी का असर यह होता है कि हर चीज़ में वह अपने निजी फ़ायदे को देखता है और फ़ायदा भी वह जो बहुत छोटे पैमाने पर हो, जल्दी से हासिल हो जाए और उसको महसूस हो जाए। यह कहता है कि जो कुछ मैने कमाया है, या जो कुछ अपने

बाप-दादा से मिला है, वह मेरा है। इसमें किसी का हिस्सा नहीं, इसको मेरी ज़रूरतों पर, मेरी ख़्वाहिशों पर, मेरे आराम और मेरे सुख पर ख़र्च हो जाना चाहिए या किसी ऐसे काम में ख़र्च होना चाहिए जिसका नफ़ा जल्दी से मेरे पास पलट आए। मैं रुपया ख़र्च करूँ तो उसके बदले में या तो मेरे पास उससे ज़्यादा रुपया आना चाहिए, या मेरे सुख-चैन में और इज़ाफ़ा होना चाहिए या कम से कम यही हो कि मेरा नाम बढ़े, मेरी शोहरत हो, मेरी इज़्ज़त बढ़े, मुझे कोई पदवी मिले, ऊँची कुर्सी मिले, लोग मेरे सामने झुकें और ज़बानों पर मेरी चर्चा हो। अगर इन बातों में से कुछ भी मुझे हासिल नहीं होता तो आख़िर मैं क्यों अपना माल अपने हाथों से दूँ? क़रीब में यतीम भूखा मर रहा है या बेसहारा फिर रहा है तो मैं क्यों उसकी देखभाल करूँ? उसका हक़ उसके बाप पर था, उसे अपनी औलाद के लिए कुछ छोड़कर जाना चाहिए था या बीमा कराना चाहिए था। कोई बेवा अगर मेरे मुहल्ले में मुसीबत के दिन काट रही है तो मुझे क्या? उसके शौहर को उसकी फ़िक्र करनी चाहिए थी। कोई मुसाफ़िर अगर भटकता फिर रहा है तो मुझसे क्या ताल्लुक़? वह बेवकूफ़ अपना इनतिज़ाम किए बिना घर से क्यों निकल खड़ा हुआ? कोई आदमी अगर परेशान है तो हुआ करे, उसे भी अल्लाह ने मेरी ही तरह हाथ-पाँव दिए हैं, अपनी ज़रूरतें उसे ख़ुद पूरी करनी चाहिएँ, मैं उसकी क्यों मदद करूँ? मैं उसे दूँगा तो क़र्ज़ दूँगा और असल के साथ सूद भी वसूल करूँगा, क्योंकि मेरा रुपया कुछ बेकार तो है नहीं। मैं इससे मकान बनवाता या मोटर ख़रीदता या किसी फ़ायदे के काम पर लगाता। यह भी इससे कुछ न कुछ फ़ायदा ही उठाएगा, फिर क्यों न मैं इस फ़ायदे में से अपना हिस्सा वुसूल करूँ?

ख़ुदग़रज़ीवाली ज़ेहनियत के नतीजे

इस ख़ुदग़रज़ीवाली ज़ेहनियत के साथ पहले तो रुपयेवाला आदमी ख़ज़ाने का साँप बनकर रहेगा या ख़र्च करेगा तो अपने निजी फ़ायदे के लिए करेगा। जहाँ उसको अपना फ़ायदा नज़र न आएगा वहाँ एक पैसा भी उसकी जेब से न निकलेगा। अगर किसी ग़रीब आदमी की उसने मदद की भी तो असल में उसकी मदद न करेगा, बल्कि उसको लूटेगा और जो कुछ उसे देगा, उससे ज़्यादा वुसूल कर लेगा। अगर किसी मिसकीन को कुछ देगा तो उसपर

हज़ारों एहसान रखकर उसकी आधी जान निकाल लेगा और उसको इतना बेइज़्ज़त व रुसवा करेगा कि उसमें उसका कोई ख़ुद्दारी बाक़ी न रह सकेगी। अगर किसी क़ौमी काम में हिस्सा लेगा तो सबसे पहले यह देख लेगा कि इसमें मेरा निजी फ़ायदा कितना है। जिन कामों में उसका कोई निजी फ़ायदा न हो, वे सब उसकी मदद से महरूम रह जाएँगे।

इस ज़ेहनियत के नतीजे क्या हैं? इसके नतीजे सिर्फ़ समाजी ज़िन्दगी ही के लिए घातक नहीं हैं, बल्कि आख़िरकार ख़ुद उस शख़्स के लिए भी नुक़सानदेह हैं जो तंग नज़री और जिहालत की वजह से उसको अपने लिए फ़ायदेमन्द समझता है। जब लोगों में यह ज़ेहनियत काम कर रही हो तो थोड़े-से आदमियों के पास दौलत सिमट-सिमटकर इकट्ठी होती चली जाती है और अनगिनत आदमी बेरोज़गार होते चले जाते हैं। दौलतमन्द लोग रुपये के ज़ोर से रुपया खींचते रहते हैं और ग़रीब लोगों की ज़िन्दगी दिन-ब-दिन तंग होती जाती है। ग़रीबी जिस सोसायटी में फैल गई हो वह तरह-तरह की ख़राबियों में फँसी होती है। उसकी जिसमानी सेहत ख़राब होती है। उसमें बीमारियाँ फैलती हैं। उसमें काम करने और दौलत पैदा करने की ताक़त कम होती चली जाती है। उसमें जिहालत बढ़ती चली जाती है। उसके अख़लाक़ गिरने लगते हैं। वह अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए अपराध करने लगती है और आख़िरकार यहाँ तक नौबत पहुँचती है कि वह लूट-मार पर उतर आती है। आम बलवे होते हैं। दौलतमन्द लोग क़त्ल किए जाते हैं। उनके घरबार लूटे और जलाए जाते हैं और वे इस तरह तबाह और बरबाद होते हैं कि उनका नाम व निशान तक दुनिया में बाक़ी नहीं रहता।

इजतिमा की फ़लाह में फ़र्द की फ़लाह है

अगर आप ग़ौर करें तो आपको मालूम हो सकता है कि हक़ीक़त में हर शख़्स की भलाई उस समाज की भलाई के साथ जुड़ी हुई है जिसके दायरे में वह रहता है। आपके पास जो दौलत है, अगर आप उसमें से अपने दूसरे भाइयों की मदद करें तो वह दौलत चक्कर लगाती हुई बहुत-से फ़ायदों के साथ फिर आपके पास पलट आएगी और अगर आप तंग नज़री के साथ उसको अपने पास जमा रखेंगे या सिर्फ़ अपने ही निजी फ़ायदे

के लिए ख़र्च करेंगे तो आख़िरकार घटती चली जाएगी। मिसाल के तौर पर अगर आपने एक यतीम बच्चे की परवरिश की और उसे तालीम देकर इस क़ाबिल बना दिया कि वह आपके समाज का एक कमानेवाला मेम्बर बन जाए तो मानो आपने समाज की दौलत को बढ़ाया और ज़ाहिर है कि समाज की दौलत बढ़ेगी तो आप जो समाज के एक मेम्बर हैं, आपको भी इस दौलत में से बहरहाल हिस्सा मिलेगा, चाहे आपको किसी हिसाब से यह मालूम न हो सके कि यह हिस्सा आपको उस ख़ास यतीम की क़ाबलियत से पहुँचा है, जिसकी आपने मदद की थी। लेकिन अगर आपने ख़ुदगरज़ी और तंगनज़री से काम लेकर यह कहा कि मैं इसकी मदद क्यों करूँ, इसके बाप को इसके लिए ख़ुद कुछ न कुछ छोड़ना चाहिए था, तो वह आवारा फिरेगा, एक बेकार आदमी बनकर रह जाएगा। उसमें यह क़ाबलियत ही न पैदा हो सकेगी कि अपनी मेहनत से समाज की दौलत में कुछ इज़ाफ़ा कर सके, बल्कि कुछ अजब नहीं कि वह अपराध करनेवाला बन जाए और एक रोज़ ख़ुद आपके घर में सेंध लगाए। इसके माने ये हुए कि आपने अपने समाज के एक मेम्बर को बेकार, आवारा और जरायम-पेशा बनाकर उसका ही नहीं, ख़ुद अपना भी नुक़सान किया। इस एक मिसाल को ध्यान में रखकर आप ज़रा ग़ौर से देखें तो आपको पता चलेगा कि जो आदमी बेग़रज़ी के साथ समाज की भलाई के लिए रुपया ख़र्च करता है, उसका रुपया तो ज़ाहिर में उसकी जेब से निकल जाता है, मगर बाहर वह बढ़ता और फलता-फूलता चला जाता है, यहाँ तक कि आख़िर में वह अनगिनत फ़ायदों के साथ उसी की जेब में वापस आता है, जिससे वह कभी निकला था। और जो शख़्स ख़ुदग़रज़ी और तंगनज़री के साथ रुपए को अपने पास रोके रखता है और समाज की भलाई पर ख़र्च नहीं करता, वह ज़ाहिर में तो अपना रुपया बचाए रखता है या सूद खाकर उसे बढ़ाता है, मगर हक़ीक़त में अपनी बेवक़ूफ़ी से अपनी दौलत घटाता है और अपने हाथों अपनी बरबादी का सामान करता है। यही राज़ है जिसको अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में इस तरह बयान फ़रमाया है—

يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِي الصَّدَقَاتِ ۝ (البقرة:٢٧٦)

अल्लाह सूद का मठ मार देता है (अर्थात् घटाता और मिटाता

है) और सदक़ात को बढ़ाता है। (क़ुरआन, 2:276)

وَمَا آتَيْتُمْ مِّنْ رِّبًا لِّيَرْبُوْا فِي اَمْوَالِ النَّاسِ فَلاَ يَرْبُوْا عِنْدَ اللّٰهِ وَمَا آتَيْتُمْ مِّنْ زَكٰوةٍ تُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُضْعِفُوْنَ○

"तुम जो सूद देते हो इस ग़रज़ के लिए कि यह लोगों की दौलत बढ़ाए, तो असल में अल्लाह के नज़दीक इससे दौलत नहीं बढ़ती, अलबत्ता जो ज़कात तुम सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए देते हो, वह दुगुनी-चौगुनी होती चली जाती है।" (क़ुरआन, 30:39)

लेकिन इस राज़ को समझने और इसके मुताबिक़ अमल करने में इनसान की तंगनज़री और उसकी जिहालत रोड़ा बनी हुई है। वह महसूसात का बन्दा है। जो रुपया उसकी जेब में है, उसको तो वह देख सकता है कि उसकी जेब में है। जो रुपया उसके बही-खाते के हिसाब से बढ़ रहा है, उसको भी वह जानता है कि हक़ीक़त में बढ़ रहा है। मगर जो रुपया उसके पास से चला जाता है, उसको यह नहीं देख सकता कि वह कहाँ बढ़ रहा है, किस तरह बढ़ रहा है, कितना बढ़ रहा है, और कब उसके पास फ़ायदों और मुनाफ़ों के साथ वापस आता है। वह तो बस यही समझता है कि इतना ज़्यादा रुपया मेरे पास से गया और हमेशा के लिए चला गया।

इस जिहालत की गाँठ को आज तक इनसान अपनी अक़्ल या अपनी कोशिश से नहीं खोल सका। तमाम दुनिया में यही हाल है। एक तरफ़ दौलतमन्दों की दुनिया है जहाँ सारे काम सूद ख़ोरी पर चल रहे हैं और दौलत की ज़्यादती के बाद भी दिनों-दिन मुसीबतें और परेशानियाँ बढ़ती जा रही हैं। दूसरी तरफ़ एक ऐसा गिरोह पैदा हो चुका है और बढ़ता चला जा रहा है, जिसके दिल में हसद की आग जल रही है और जो दौलतमन्दों के ख़ज़ानों पर डाका मारने के साथ इनसानी तहज़ीब और तमद्दुन की सारी बिसात भी उलट देना चाहता है।

मुशकिलों का हल

इस पेचीदगी को उस हकीम व दाना हस्ती ने हल किया है, जिसकी

पाक किताब का नाम 'क़ुरआन' है। इस ताले की कुंजी 'अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लाना' है। अगर आदमी ख़ुदा पर ईमान ले आए और यह जान ले कि ज़मीन व आसमान के ख़ज़ानों का असल मालिक ख़ुदा है और इनसानी मामलों का इनतिज़ाम असल में ख़ुदा ही के हाथ में है, और ख़ुदा के पास एक-एक ज़र्रे का हिसाब है और इनसान की सारी भलाइयों और बुराइयों की आख़िरी जज़ा व सज़ा ठीक-ठीक हिसाब के मुताबिक़ आख़िरत में मिलेगी, तो उसके लिए यह बिलकुल आसान हो जाएगा कि अपनी नज़र पर भरोसा करने के बजाए ख़ुदा पर भरोसा करे और अपनी दौलत को अल्लाह की हिदायत के मुताबिक़ ख़र्च करे और उसके नफ़ा व नुक़सान को ख़ुदा पर छोड़ दे। इस ईमान के साथ वह जो कुछ ख़र्च करेगा वह असल में ख़ुदा को देगा। उसका हिसाब-किताब भी ख़ुदा के बही-खाते में लिखा जाएगा। भले ही दुनिया में किसी को उसके एहसान का इल्म हो या न हो, मगर ख़ुदा के इल्म में ज़रूर आएगा और भले ही कोई उसका एहसान माने या न माने, ख़ुदा उसके एहसान को ज़रूर मानेगा और जानेगा। और ख़ुदा का जब यह वायदा हो चुका है कि वह उसका बदला देगा तो यक़ीन है कि वह उसका बदला ज़रूर देगा, भले ही आख़िरत में दे या दुनिया और आख़िरत दोनों में दे।

अल्लाह की राह में ख़र्च करने के आम हुक्म

हुक्म की दो क़िस्में — आम और ख़ास

मुसलमान भाइयो! अल्लाह तआला ने अपनी शरीअत का यह क़ायदा रखा है कि पहले तो नेकी और भलाई के कामों का एक आम हुक्म दिया जाता है, ताकि लोग अपनी ज़िन्दगी में आम तौर पर भलाई का तरीक़ा अपनाएँ। फिर इसी भलाई की एक ख़ास सूरत भी तय कर दी जाती है, ताकि इसकी ख़ास तौर पर पाबन्दी की जाए।

अल्लाह की याद का आम हुक्म

मिसाल के तौर पर देखिए कि अल्लाह की याद एक भलाई है, सबसे बड़ी भलाई और तमाम भलाइयों का सरचश्मा। इसके लिए आम हुक्म है कि अल्लाह को हमेशा, हर हाल में, हर वक़्त याद रखो और कभी उससे गाफ़िल न हो। क़ुरआन मजीद में है—

فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيَامًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِكُمْ وَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ۝

खड़े और बैठे और लेटे अल्लाह की याद में लगे रहो और अल्लाह को बहुत याद करो, ताकि तुमको फ़लाह नसीब हो।

(क़ुरआन, 4:103)

إِنَّ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَاٰيَاتٍ لِّاُولِي الْاَلْبَابِ الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيَامًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِهِمْ وَيَتَفَكَّرُوْنَ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ج رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا ط (آل عمران: ١٩٠-١٩١)

बेशक, आसमान और ज़मीन की बनावट में और रात और दिन के बारी-बारी से आने में उन लोगों के लिए अल्लाह की बहुत-सी

निशानियाँ हैं जो अक़्ल रखते हैं, जो ख़ुदा को खड़े और बैठे और लेटे याद करते रहते हैं और आसमानों और ज़मीन की बनावट पर ग़ौर करके बेइख़तियार बोल उठते हैं कि पालनहार! तूने यह कारख़ाना बेकार नहीं बनाया। (क़ुरआन, 3:190-191)

وَلَا تُطِعْ مَنْ اَغْفَلْنَا قَلْبَهٗ عَنْ ذِكْرِنَا وَاتَّبَعَ هَوٰهُ وَكَانَ اَمْرُهٗ فُرُطًا۝

और उस आदमी की बात न मानो जिसके दिल को हमने अपनी याद से ग़ाफ़िल पाया और जो अपनी इच्छाओं के पीछे पड़ गया है और जिसके सारे काम हद से गुज़रे हुए हैं। (क़ुरआन, 18:28)

ये और ऐसी ही बहुत-सी आयतें हैं जिनमें हुक्म दिया गया है कि हमेशा हर हाल में अल्लाह की याद जारी रखो, क्योंकि अल्लाह की याद ही वह चीज़ है जो आदमी के मामलों को दुरुस्त रखती है और उसको सीधे रास्ते पर क़ायम रखती है। जहाँ आदमी उसकी याद से ग़ाफ़िल हुआ, और बस नफ़सानी ख़्वाहिशों और शैतानी वसवसों ने उसपर क़ाबू पा लिया। उसका लाज़मी नतीजा यह है कि सीधे रास्ते से भटक कर अपनी ज़िन्दगी के मामलों में हद से गुज़रने लगेगा।

अल्लाह की याद का ख़ास हुक्म

देखिए! यह तो था आम हुक्म! अब अल्लाह की इसी याद की एक ख़ास सूरत तय की गई— नमाज़, और नमाज़ में भी पाँच वक़्त में कुछ रकअतें फ़र्ज़ कर दी गईं जिनमें एक वक़्त में आठ-दस मिनट से ज़्यादा ख़र्च नहीं होते। इस तरह कुछ मिनट इस वक़्त और कुछ मिनट उस वक़्त अल्लाह की याद को फ़र्ज़ करने का यह मतलब नहीं है कि बस आप इतनी ही देर के लिए ख़ुदा को याद करें और बाक़ी वक़्त उसको भूल जाएँ, बल्कि इसका मतलब यह है कि कम से कम इतनी देर के लिए तो तुमको बिलकुल अल्लाह की याद में लग जाना चाहिए। इसके बाद अपने काम भी करते रहो और उनको करते हुए ख़ुदा को भी याद करो।

अल्लाह की राह में ख़र्च का आम हुक्म

बस ऐसा ही मामला ज़कात का भी है। यहाँ भी एक आम हुक्म है और एक ख़ास। एक तरफ़ तो यह हुक्म है कि कंजूसी और तंगदिली से बचो कि यह बुराइयों की जड़ और बदियों की माँ है। अपने अख़लाक़ में अल्लाह का रंग इख़तियार करो जो हर वक़्त बेशुमार मख़लूक़ पर अपनी मेहरबानियों के दरिया बहा रहा है, हालाँकि किसी का उसपर कोई हक़ और दावा नहीं है। अल्लाह की राह में जो कुछ ख़र्च कर सकते हो, करो। अपनी ज़रूरतों से जितना बचा सकते हो, बचाओ और उससे ख़ुदा के दूसरे ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी करो। दीन की ख़िदमत में और अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने में जान और माल की परवाह न करो। अगर ख़ुदा से मुहब्बत रखते हो तो माल की मुहब्बत को ख़ुदा की मुहब्बत पर क़ुरबान कर दो। यह तो है आम हुक्म।

इनफ़ाक़ का ख़ास हुक्म

और इसके साथ ही ख़ास हुक्म यह है कि इतना ज़्यादा अगर तुम्हारे पास माल जमा हो तो उसमें से कम से कम इतना अल्लाह की राह में ज़रूर ख़र्च करो और इतनी पैदावार तुम्हारी ज़मीन में हो तो उसमें से कम से कम इतना हिस्सा तो ज़रूर अल्लाह की नज़र करो। फिर जिस तरह कुछ रकअत नमाज़ फ़र्ज़ करने का मतलब यह नहीं है कि बस ये रकअतें पढ़ते वक़्त ही ख़ुदा को याद करो और बाक़ी सारे वक़्तों में उसको भूल जाओ, इसी तरह माल की एक छोटी-सी मिक़दार अल्लाह की राह में ख़र्च करना फ़र्ज़ किया गया है। इसका मतलब भी यह नहीं है कि जिन लोगों के पास इतना माल हो, बस उन्हीं को अल्लाह की राह में ख़र्च करना चाहिए और जो इससे कम माल रखते हों उन्हें अपनी मुट्ठियाँ भींच लेनी चाहिए, और इसका मतलब यह भी नहीं है कि मालदार लोगों पर जितनी ज़कात फ़र्ज़ की गई है, बस वे उतना ही अल्लाह की राह में ख़र्च करें और उसके बाद कोई ज़रूरतमन्द आए तो उसे झिड़क दें या दीन की ख़िदमत का कोई मौक़ा आए तो कह दें कि हम तो ज़कात दे चुके, अब हमसे एक पाई की भी उम्मीद न रखो। ज़कात फ़र्ज़ करने का यह मतलब

हरगिज़ नहीं है, बल्कि इसका मतलब असल में यह है कि कम से कम इतना माल तो हर मालदार को अल्लाह की राह में देना ही पड़ेगा और इससे ज़्यादा जिस शख़्स से जो कुछ बन आए वह उसको ख़र्च करना चाहिए।

इनफ़ाक़ के आम हुक्म की मुख़्तसर तशरीह

अब मैं आपके सामने पहले आम हुक्म की थोड़ी-सी तशरीह क़रूँगा। फिर दूसरे ख़ुतबे में ख़ास हुक्म बयान करूँगा।

क़ुरआन मजीद की यह ख़ूबी है कि वह जिस चीज़ का हुक्म देता है उसकी हिकमतें और मसलहतें भी ख़ुद ही बता देता है, ताकि हुक्म माननेवाले को हुक्म के साथ यह भी मालूम हो जाए कि यह हुक्म क्यों दिया गया है और इसका फ़ायदा क्या है? क़ुरआन मजीद खोलते ही सबसे पहले जिन आयतों पर आपकी नज़र पड़ती है वह ये हैं—

सीधे रास्ते पर चलने की तीन शर्तें

ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَارَيْبَ فِيْهِ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ○

> यह क़ुरआन अल्लाह की किताब है, इसमें कोई शक नहीं। यह उन परहेज़गार लोगों को ज़िन्दगी का सीधा रास्ता बताता है जो ग़ैब पर ईमान रखते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं और जो रोज़ी हमने उनको दी है उसमें से ख़र्च करते हैं।" (क़ुरआन, 2:2-3)

इस आयत में यह बुनियादी क़ायदा बयान कर दिया गया है कि दुनिया की ज़िन्दगी में सीधे रास्ते पर चलने के लिए तीन चीज़ें लाज़िमी तौर पर शर्त हैं। एक ग़ैब पर ईमान, दूसरे नमाज़ क़ायम करना, तीसरे जो रोज़ी भी अल्लाह ने दी हो उसमें से अल्लाह की राह में ख़र्च करना। दूसरी जगह हुक्म होता है—

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ○

तुम नेकी का दर्जा पा ही नहीं सकते जब तक कि अल्लाह की राह में वे चीज़ें ख़र्च न करो जिनसे तुमको मुहब्बत है।

(क़ुरआन, 3:92)

फिर बताया—

اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَ يَأْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَآءِ ۝

शैतान तुमको डराता है कि ख़र्च करोगे तो फ़क़ीर हो जाओगे वह तुम्हें शर्मनाक चीज़ यानी कंजूसी की तालीम देता है।

(क़ुरआन, 2:268)

इसके बाद इरशाद हुआ—

وَاَنْفِقُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۝

अल्लाह की राह में ख़र्च करो और अपने हाथ से अपने आपको तबाही में न डालो (कि अल्लाह की राह में ख़र्च न करने का मतलब तबाही व बरबादी के हैं)। (क़ुरआन, 2:195)

आख़िर में फ़रमाया—

وَمَنْ يُّوْقَ شُحَّ نَفْسِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝

और जो तंगदिली से बच गए, वही कामयाब होनेवाले हैं।

(क़ुरआन, 59:9)

ज़िन्दगी गुज़ारने के दो तरीक़े

क़ुरआन मजीद की इन सब आयतों से मालूम होता है कि दुनिया में इनसान के लिए ज़िन्दगी गुज़ारने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो ख़ुदा का है जिसमें नेकी और भलाई और फ़लाह और कामियाबी है और इस रास्ते का क़ायदा यह है कि आदमी का दिल खुला हुआ हो। जो रोज़ी भी थोड़ी या बहुत अल्लाह ने दी हो उससे ख़ुद अपनी ज़रूरतें भी पूरी करे, अपने भाइयों की भी मदद करे और अल्लाह का कलिमा बुलंद करने के लिए

भी ख़र्च करे। दूसरा रास्ता शैतान का है जिसमें ज़ाहिरी तौर पर तो आदमी को फ़ायदा ही फ़ायदा नज़र आता है लेकिन हक़ीक़त में तबाही व बरबादी के सिवा कुछ नहीं, और उस रास्ते का क़ायदा यह है कि आदमी दौलत समेटने की कोशिश करे, पैसे-पैसे पर जान दे और उसको दाँतों से पकड़-पकड़कर रखे ताकि ख़र्च न होने पाए और ख़र्च हो भी तो बस अपने निजी फ़ायदे और अपने नफ़्स की ख़्वाहिशों पर ही हो।

ख़ुदा की राह में ख़र्च के तरीक़े

अब देखिए कि ख़ुदाई रास्ते पर चलनेवालों के लिए अल्लाह की राह में ख़र्च करने के क्या तरीक़े क़ुरआन मजीद में बयान हुए हैं। मैं उन सबको नम्बर से बयान करता हूँ—

(1) सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए

सबसे पहली बात यह है कि ख़र्च करने में सिर्फ़ अल्लाह की रज़ा और उसकी ख़ुशी हासिल करना आदमी का मक़सद हो, किसी को एहसानमन्द बनाने या दुनिया में नाम पैदा करने के लिए ख़र्च न किया जाए—

وَمَا تُنْفِقُوْنَ إِلاَّ ابْتِغَآءَ وَجْهِ اللّٰهِ ۝

तुम जो कुछ भी ख़र्च करते हो उससे अल्लाह की रज़ा के सिवा तुम्हारा और कोई मक़सद नहीं होता। (क़ुरआन, 2:272)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا لاَ تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى كَالَّذِىْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَلاَيُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ط فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ فَتَرَكَهٗ صَلْدًا ۝

ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अपनी ख़ैरात को एहसान जताकर और तकलीफ़ देकर उस आदमी की तरह बरबाद न करो जो लोगों के दिखावे के लिए ख़र्च करता है और अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं रखता। उसके ख़र्च की मिसाल तो ऐसी

है जैसे एक चट्टान पर मिट्टी पड़ी हो और उसपर ज़ोर का मेंह बरसे तो सारी मिट्टी बह जाए और बस साफ़ चट्टान की चट्टान रह जाए। (क़ुरआन, 2:264)

(2) एहसान न जताया जाए

दूसरी बात यह है कि किसी को पैसा देकर या रोटी खिलाकर या कपड़ा पहनाकर एहसान न जताया जाए और ऐसा बरताव न किया जाए जिससे उसके दिल को तकलीफ़ हो—

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِى سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لاَ يُتْبِعُوْنَ مَا اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلاَ اَذًى لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلاَخَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلاَ هُمْ يَحْزَنُوْنَ قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ○

जो लोग अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं और फिर ख़र्च करके एहसान नहीं जताते और तकलीफ़ नहीं पहुँचाते, उनके लिए ख़ुदा के यहाँ बदला है और उन्हें किसी नुक़सान का डर या रंज नहीं। रही वह ख़ैरात जिसके बाद तकलीफ़ पहुँचाई जाए तो इससे तो यही अच्छा है कि माँगनेवाले को नर्मी से टाल दिया जाए और उससे कह दिया जाए कि भाई माफ़ करो। (क़ुरआन, 2:262-263)

(3) बेहतर माल दिया जाए

तीसरा क़ायदा यह है कि अल्लाह की राह में अच्छा माल दिया जाए, बुरा छाँटकर न दिया जाए। जो लोग किसी ग़रीब को देने के लिए फटे-पुराने कपड़े तलाश करते हैं या किसी फ़क़ीर को खिलाने के लिए बुरे से बुरा खाना निकालते हैं, उनको बस ऐसे ही बदले की ख़ुदा से भी उम्मीद रखनी चाहिए—

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّا اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِنَ الْاَرْضِ وَلاَ تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ○

ऐ ईमानलानेवालो! जो कुछ तुमने कमाया है और जो कुछ हमने

तुम्हारे लिए ज़मीन से निकाला है उसमें से अच्छा माल अल्लाह की राह में दो, यह न करो कि अल्लाह की राह में देने के लिए बुरे-से-बुरा तलाश करने लगो। (क़ुरआन, (2:267)

(4) जहाँ तक मुमकिन हो छुपाकर दिया जाए

चौथा क़ायदा यह है कि जहाँ तक मुमकिन हो छिपाकर ख़र्च किया जाए ताकि दिखावे और नामवरी की मिलावट न होने पाए, हालांकि खुले तरीक़े से ख़र्च करने में भी कोई हरज नहीं, मगर छिपाकर देना ज़्यादा बेहतर है—

إِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِيَ وَإِنْ تُخْفُوْهَا وَتُؤْتُوْهَا الْفُقَرَآءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ وَيُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِنْ سَيِّاٰتِكُمْ○

अगर खुले तरीक़े से ख़ैरात करो तो यह भी अच्छा है, लेकिन अगर छिपाकर ग़रीब लोगों को दो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है और इससे तुम्हारे गुनाह धुलते हैं। (क़ुरआन, 2:271)

(5) नादानों को ज़रूरत से ज़्यादा न दिया जाए

पाँचवाँ क़ायदा यह है कि कम अक़्ल और नादान लोगों को उनकी ज़रूरत से ज़्यादा न दिया जाए कि बिगड़ जाएँ और बुरी आदतों में पड़ जाएँ, बल्कि उनको जो कुछ दिया जाए, उनकी हैसियत और ज़रूरत के मुताबिक़ दिया जाए। अल्लाह तआला यह चाहता है कि पेट को रोटी और पहनने को कपड़ा तो हर बुरे-से-बुरे और बदकार-से-बदकार को भी मिलना चाहिए, मगर शराब पीने और चरस और गांजे और जुएबाज़ी के लिए लफ़ंगे आदमियों को पैसा न देना चाहिए—

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَآءَ اَمْوَالَكُمُ الَّتِيْ جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ قِيٰمًا وَّارْزُقُوْهُمْ فِيْهَا وَاكْسُوْهُمْ○

अपने माल, जिनको अल्लाह ने तुम्हारे लिए ज़िन्दगी बसर करने का ज़रिया बनाया है, नादान लोगों के सुपुर्द न करो, अलबत्ता इन मालों में से उनको खाने और पहनने के लिए दो।

(क़ुरआन, 4:5)

(6) क़र्ज़दार को परेशान न किया जाए

छठा क़ायदा यह बयान हुआ है कि अगर किसी ग़रीब आदमी की ज़रूरत पूरी करने के लिए उसको क़र्ज़ दिया जाए तो तक़ाज़े करके उसे परेशान न किया जाए, बल्कि उसको इतना मौक़ा दिया जाए कि वह आसानी से क़र्ज़ अदा कर सके और अगर वाक़ई यह मालूम हो कि वह अदा करने के क़ाबिल नहीं है और तुम इतना माल रखते हो कि उसको आसानी के साथ माफ़ कर सकते हो, तो बेहतर यह है कि माफ़ कर दो—

وَإِنْ كَانَ ذُوْعُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ إِلٰى مَيْسَرَةٍ وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ٥

और अगर क़र्ज़दार तंगदस्त हो तो उसे ख़ुशहाल होने तक मौक़ा दो और सदक़ा कर देना तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर है अगर तुम उसका फ़ायदा जानो। (क़ुरआन, 2:280)

(7) ख़ैरात में सन्तुलन

सातवाँ क़ायदा यह बयान किया गया है कि आदमी को ख़ैरात करने में भी हद से न गुज़रना चाहिए। अल्लाह तआला का यह मक़सद नहीं है कि अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट काटकर सब कुछ ख़ैरात में दे डाला जाए, बल्कि वह चाहता है कि सीधे-सादे तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करने के लिए जितनी ज़रूरत आदमी को होती है, उतना ही अपने ऊपर और अपने बाल-बच्चों पर ख़र्च करे और जो बाक़ी बचे उसे अल्लाह की राह में दे—

وَيَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ قُلِ الْعَفْوَ٥

पूछते हैं कि हम क्या ख़र्च करें? ऐ नबी! कह दो कि जो ज़रूरत से ज़्यादा हो। (क़ुरआन, 2:219)

وَالَّذِيْنَ إِذَا اَنْفَقُوْا لَمْ يُسْرِفُوْا وَلَمْ يَقْتُرُوْا وَكَانَ بَيْنَ ذٰلِكَ قَوَامًا٥

अल्लाह के नेक बन्दे वे हैं कि जब ख़र्च करें तो न फ़ज़ूलख़र्ची करें और न बहुत तंगी कर जाएँ, बल्कि उनका तरीक़ा इसके बीच में हो। (क़ुरआन, 25:67)

وَلَاتَجْعَلْ يَدَكَ مَغْلُوْلَةً إِلٰى عُنُقِكَ وَلَاتَبْسُطْهَا كُلَّ الْبَسْطِ فَتَقْعُدَ مَلُوْماً مَّحْسُوْرًا○

न तो अपना हाथ इतना सिकोड़ लो कि गोया गरदन से बँधा हुआ हो और न इतना खोल दो कि हसरतज़दा बैठे रहो और लोग भी तुमको मलामत करें। (क़ुरआन, (17:29)

मदद के हक़दार

आख़िर में यह भी सुन लीजिए कि अल्लाह तआला ने हक़दारों की पूरी लिस्ट बना दी है, जिसको देखकर आपको मालूम हो सकता है कि कौन-कौन लोग आपकी मदद के हक़दार हैं और किनका हक़ अल्लाह ने आपकी कमाई में रखा है। क़ुरआन में है—

وَاتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ○

अपने ग़रीब रिश्तेदार को उसका हक़ दो और मिसकीन को और मुसाफ़िर को। (क़ुरआन, 17:26)

وَاٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسَاكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ وَالسَّائِلِيْنَ وَ فِى الرِّقَابِ○

और नेक वह है जो अल्लाह की मुहब्बत में माल दे अपने ग़रीब रिश्तेदारों और यतीमों और मिसकीनों को और मुसाफ़िर को और ऐसे लोगों को जिनकी गरदनें ग़ुलामी और क़ैद में फँसी हुई हों। (क़ुरआन, 2:177)

وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًاوَّبِذِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسَاكِيْنَ وَالْجَارِ

ذِی الْقُرْبٰی وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْۢبِ وَابْنِ السَّبِیْلِ وَمَا مَلَکَتْ اَیْمَانُکُمْ۝

नेक बरताव किया जाए अपने माँ-बाप और रिश्तेदारों और यतीमों और ग़रीबों और क़रीब के पड़ोसियों और अजनबी पड़ोसियों और पास बैठनेवालों और मुसाफ़िरों और अपने लौंडी और ग़ुलामों से।
(क़ुरआन, 4:36)

وَیُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلٰی حُبِّہٖ مِسْکِیْنًا وَّ یَتِیْمًا وَّاَسِیْرًا۝ اِنَّمَا نُطْعِمُکُمْ لِوَجْہِ اللّٰہِ لَا نُرِیْدُ مِنْکُمْ جَزَآءً وَّلَا شُکُوْرًا اِنَّا نَخَافُ مِنْ رَّبِّنَا یَوْمًا عَبُوْسًا قَمْطَرِیْرًا۝

और नेक लोग अल्लाह की मुहब्बत में मिसकीन और यतीम और क़ैदी को खाना खिलाते हैं और कहते हैं कि हम तुमको सिर्फ़ ख़ुदा के लिए खिला रहे हैं, तुमसे कोई बदला या शुक्रिया नहीं चाहते। हमको तो अपने ख़ुदा से उस दिन का डर लगा हुआ है जिसकी शिद्दत की वजह से लोगों के मुँह सिकुड़ जाएँगे और त्यौरियाँ चढ़ जाएँगी (यानी क़ियामत)। (क़ुरआन, 76:8-10)

وَفِیْ اَمْوَالِهِمْ حَقٌّ لِّلسَّآئِلِ وَالْمَحْرُوْمِ۝

और उनके मालों में हक़ है मदद माँगनेवालों का और उस शख़्स का जो महरूम हो। (क़ुरआन, 51:19)

لِلْفُقَرَآءِ الَّذِیْنَ اُحْصِرُوْا فِیْ سَبِیْلِ اللّٰہِ لَا یَسْتَطِیْعُوْنَ ضَرْبًا فِی الْاَرْضِ یَحْسَبُھُمُ الْجَاھِلُ اَغْنِیَآءَ مِنَ التَّعَفُّفِ تَعْرِفُھُمْ بِسِیْمَاھُمْ لَا یَسْئَلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ؕ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَیْرٍ فَاِنَّ اللّٰہَ بِہٖ عَلِیْمٌ۝

ख़ैरात उन ज़रूरतमंदों के लिए है जो अपना सारा वक़्त ख़ुदा के काम में देकर ऐसे घिर गए हैं कि अपनी रोटी के लिए दौड़-धूप

नहीं कर सकते। उनकी ख़ुद्दारी को देखकर न जाननेवाले लोग गुमान करते हैं कि वे मालदार हैं, मगर उनकी सूरत देखकर तुम पहचान सकते हो कि उनपर क्या गुज़र रही है। उनको ख़ुद जाकर दो, क्योंकि वे ऐसे लोग नहीं हैं कि लोगों से लिपट-लिपटकर माँगते फिरें। उनको ढाँक-छिपाकर जो कुछ भी तुम ख़ैरात दोगे, अल्लाह को उसकी ख़बर होगी और वह उसका बदला देगा।

(क़ुरआन, 2:273)

ज़कात के ख़ास हुक्म

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में आपके सामने ख़ुदा की राह में ख़र्च करने के आम हुक्म बयान कर चुका हूँ। अब मैं इस हुक्म के दूसरे हिस्से की तफ़सील बयान करता हूँ जो ज़कात से ताल्लुक़ रखता है, यानी जिसे फ़र्ज़ किया गया है।

ज़कात के बारे में तीन हुक्म

ज़कात के बारे में अल्लाह ने क़ुरआन मजीद में तीन जगह अलग-अलग हुक्म बयान फ़रमाए हैं—

(1) सूरा बक़रा में फ़रमाया—

اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّا اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۝

> जो पाक माल तुमने कमाए हैं और जो पैदावार हमने तुम्हारे लिए ज़मीन से निकाली है, उसमें से ख़ुदा की राह में ख़र्च करो।
>
> (क़ुरआन, 2:267)

(2) सूरा अनआम में फ़रमाया कि हमने तुम्हारे लिए ज़मीन से बाग़ उगाए हैं और खेतियाँ पैदा की हैं, इसलिए—

كُلُوْا مِنْ ثَمَرِهٖ اِذَا اَثْمَرَ وَاٰتُوْا حَقَّهٗ يَوْمَ حَصَادِهٖ ۝

> उसकी पैदावार जब निकले तो उसमें से खाओ और फ़सल कटने के दिन अल्लाह का हक़ निकाल दो। (क़ुरआन, 6:141)

क़ुरआन मजीद की ये दोनों आयतें ज़मीन की पैदावार के सिलसिले में है और हनफ़ी फ़ुक़हा फ़रमाते हैं कि ख़ुद उगनेवाले पौधे जैसे लकड़ी, घास और बाँस के सिवा बाक़ी जितनी चीज़ें ग़ल्ला, तरकारी और फलों की क़िस्म से निकलें, इन सबमें से अल्लाह का हक़ निकालना चाहिए। हदीस में आता है कि जो पैदावार आसमानी बारिश से हो उसमें अल्लाह का हक़ दसवाँ हिस्सा है और जो पैदावार आदमी की अपनी कोशिशों यानी

सिंचाई वग़ैरह से हो, उसमें अल्लाह का हक़ बीसवाँ हिस्सा है और यह हिस्सा पैदावार कटने के साथ ही वाजिब हो जाता है।

(3) इसके बाद सूरा तौबा में आता है—

وَالَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَالْفِضَّةَ وَ لَايُنْفِقُوْنَهَا فِى سَبِيْلِ اللّٰهِ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ يَّوْمَ يُحْمٰى عَلَيْهَا فِى نَارِ جَهَنَّمَ فَتُكْوٰى بِهَا جِبَاهُهُمْ وَ جُنُوْبُهُمْ وَظُهُوْرُهُمْ ط هٰذَا مَا كَنَزْتُمْ لِاَنْفُسِكُمْ فَذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَكْنِزُوْنَ○

जो लोग सोने और चाँदी को इकट्ठा करके रखते हैं और उसमें से ख़ुदा की राह में ख़र्च नहीं करते उनको दर्दनाक अज़ाब की ख़बर दे दो। उस दिन के अज़ाब की, जब उनके इस सोने और चाँदी को आग में तपाया जाएगा और उससे उनकी पेशानियों, पहलूओं और पीठों पर दाग़ा जाएगा और कहा जाएगा कि यह है वह माल जो तुमने अपने लिए जमा किया था, अब अपने इन खज़ानों का मज़ा चखो। (क़ुरआन, 9:34-35)

फिर फ़रमाया—

اِنَّمَا الصَّدَقٰتُ لِلْفُقَرَآءِ وَالْمَسٰكِيْنِ وَالْعَامِلِيْنَ عَلَيْهَا وَالْمُؤَلَّفَةِ قُلُوْبُهُمْ فِى الرِّقَابِ وَالْغَارِمِيْنَ وَفِى سَبِيْلِ اللّٰهِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ط فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ط وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ○

सदक़े (यानी ज़कात) अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर किया हुआ फ़र्ज़ है। फक़ीरों के लिए और मिसकीनों के लिए और उन लोगों के लिए जो ज़कात वुसूल करने पर मुक़र्रर हों और उनके लिए जिनके दिलों की तालीफ़ मंज़ूर हो और गरदनें छुड़ाने के लिए और क़र्ज़दारों के लिए और ख़ुदा की राह में और मुसाफ़िरों के लिए। अल्लाह बेहतर जाननेवाला और हिकमतवाला है। (क़ुरआन, 9:60)

इसके बाद फ़रमाया—

خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيْهِمْ بِهَا ○

इनके मालों में से ज़कात वुसूल करके इनको पाक व साफ़ कर दो। (क़ुरआन, 9:103)

इन तीनों आयतों से मालूम हुआ कि जो माल जमा किया जाए और बढ़ाया जाए और उसमें से ख़ुदा की राह में ख़र्च न किया जाए, वह नापाक हो जाता है। इसके पाक करने की सूरत सिर्फ़ यह है कि इसमें से ख़ुदा का हक़ निकाल कर उसके बन्दों को दे दिया जाए।

हदीस में आता है कि जब सोना और चाँदी जमा करनेवालों पर अज़ाब की धमकी आई तो मुसलमान सख़्त परेशान हुए, क्योंकि इसके माने तो यह होते थे कि एक सिक्का भी अपने पास न रखो, सब ख़र्च कर डालो। आख़िरकार हज़रत उमर (रज़ि०) हुज़ूर नबी करीम (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और क़ौम की परेशानी का हाल बताया। आप (सल्ल०) ने जवाब दिया कि अल्लाह ने ज़कात को तुमपर इसी लिए फ़र्ज़ किया है कि बाक़ी माल तुम्हारे लिए पाक हो जाए। ऐसी ही रिवायत हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से बयान की जाती है कि हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब तूने अपने माल में से ज़कात निकाल दी तो जो हक़ तुझपर वाजिब था, वह अदा हो गया।

ऊपर बयान की हुई आयतों में तो सिर्फ़ ज़मीन की पैदावार और सोने-चाँदी की ज़कात का हुक्म मिलता है, लेकिन हदीस से मालूम होता है कि तिजारती माल, ऊँट, गाय और बकरियों में भी ज़कात है।

कुछ चीज़ों की ज़कात का निसाब

चाँदी का निसाब दो सौ दिरहम यानी साढ़े बावन तोला के क़रीब है। सोने का निसाब साढ़े सात तोले, ऊँट का निसाब पाँच ऊँट, बकरियों का निसाब चालीस बकरियाँ, गाय का निसाब तीस गायें और तिजारती माल का निसाब साढ़े बावन तोला चाँदी के बराबर माल, यानी जिस आदमी के पास इतना माल मौजूद हो और उसपर एक साल गुज़र जाए तो उसमें से चालीसवाँ हिस्सा (2.5%) ज़कात का निकालना वाजिब है। चाँदी और सोने के मुताल्लिक़ हनफ़िया फ़रमाते हैं कि अगर ये दोनों अलग-अलग

निसाब के बराबर न हों, लेकिन दोनों मिलकर किसी एक निसाब की हद तक उनकी क़ीमत पहुँच जाए तो उनमें से भी ज़कात निकालनी वाजिब है।

ज़ेवरों पर ज़कात

सोना और चाँदी अगर ज़ेवर की सूरत में हो तो हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि०) के नज़दीक इनकी ज़कात अदा करना फ़र्ज़ है और इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने यही क़ौल लिया है। हदीस में आता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दो औरतों के हाथ में सोने के कंगन देखे और पूछा कि क्या तुम ज़कात निकालती हो? एक ने कहा कि नहीं। आपने फ़रमाया, "क्या तू इसे पसन्द करेगी कि क़ियामत के दिन इसके बदले आग के कंगन तुझे पहनाए जाएँ?" इसी तरह हज़रत उम्मे सलमा (रज़ि०) से रिवायत है कि मेरे पास सोने की पाज़ेब थी। मैंने हुज़ूर (सल्ल०) से पूछा कि क्या यह 'कन्ज़' (जमा माल) है? आपने फ़रमाया कि 'अगर इसमें सोने की मिक़दार निसाबे ज़कात तक पहुँचती है और इसमें से ज़कात निकाल दी गई है तो यह 'कन्ज़' नहीं है। इन दोनों हदीसों से मालूम हुआ कि सोना या चाँदी अगर ज़ेवर की शक्ल में हों, तब भी उसी तरह ज़कात फ़र्ज़ है जिस तरह नक़्द की सूरत में होने पर है, अलबत्ता जवाहर और नगीनों पर ज़कात नहीं है।

ज़कात के हक़दार

क़ुरआन मजीद में ज़कात के आठ हक़दार बयान किए गए हैं जिनकी तफ़सील यह है—

(1) **फ़क़ीर**— ये वे लोग हैं, जिनके पास कुछ न कुछ माल तो हो मगर उनकी ज़रूरत के लिए काफ़ी न हो। तंगदस्ती में गुज़र-बसर करते हों और किसी से माँगते न हों। इमाम ज़ुहरी, इमाम अबू हनीफ़ा, इब्न अब्बास, हसन बसरी, अबुल हसन कर्ख़ी (रह०) और दूसरे बुज़ुर्गों ने फ़क़ीर की यही तारीफ़ (Definition) बयान की है।

(2) **मिसकीन**— ये बहुत ही तबाह हाल लोग हैं जिनके पास अपने तन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भी कुछ न हों। हज़रत उमर (रज़ि०) ऐसे लोगों को भी मिसकीनों में शामिल करते हैं जो कमाने की ताक़त रखते

हों मगर उन्हें रोज़गार न मिलता हो।

(3) **आमिलीन अलैहा**— इनसे मुराद वे लोग हैं जिन्हें इस्लामी हुकूमत ज़कात वुसूल करने के लिए मुक़र्रर करे। उनको ज़कात की मद से तनख़्वाह दी जाएगी।

(4) **मोअल्लफ़तुल कुलूब**— इनसे मुराद वे लोग हैं जिनको इस्लाम की हिमायत के लिए या इस्लाम की मुख़ालिफ़त से रोकने के लिए रुपया देने की ज़रूरत पेश आए। और इसमें वे नव मुसलिम भी शामिल हैं जिन्हें मुत्मइन करने की ज़रूरत हो। अगर कोई आदमी अपनी काफ़िर क़ौम को छोड़कर मुसलमानों में आ मिलने की वजह से बेरोज़गार या तबाह हाल हो गया हो तब तो उसकी मदद करना मुसलमानों पर वैसे ही फ़र्ज़ है, लेकिन अगर वह मालदार हो, तब भी उसे ज़कात दी जा सकती है, ताकि उसका दिल इस्लाम पर जम जाए। जंगे हुनैन के मौक़े पर नबी (सल्ल०) ने ग़नीमत के माल में से नवमुस्लिमों को बहुत माल दिया, यहाँ तक कि एक-एक आदमी के हिस्से में सौ-सौ ऊँट आए। अनसार ने इसकी शिकायत की तो हुज़ूर ने फ़रमाया कि ये लोग अभी-अभी कुफ़्र से इस्लाम में आए हैं, मैं इनके दिल को ख़ुश करना चाहता हूँ। इसी बुनियाद पर इमाम ज़ुहरी ने मोअल्लफ़तुल कुलूब की तारीफ़ यूँ बयान की है—

> "जो ईसाई या यहूदी या ग़ैर मुसलिम इस्लाम में दाख़िल हुआ हो, चाहे वह मालदार ही क्यों न हो।"

(5) **फ़िर्रिक़ाब**— इससे मतलब यह है कि जो शख़्स ग़ुलामी के बन्धनों से छूटना चाहता हो उसको ज़कात दी जाए, ताकि वह अपने मालिक को रुपया देकर अपनी गरदन ग़ुलामी से छुड़ा ले। आजकल के ज़माने में ग़ुलामी का रिवाज नहीं है, इसलिए मेरा ख़याल है कि जो लोग जुर्माना अदा न कर सकने की वजह से क़ैद भुगत रहे हों, उनको ज़कात देकर छुटकारा हासिल कराने में मदद दी जा सकती है। यह भी फ़िर्रिक़ाब की तारीफ़ में आ जाता है।

(6) **अलग़ारिमीन**— इनसे मुराद वे लोग हैं जो क़र्ज़दार हों। यह मतलब नहीं है कि आदमी के पास हज़ार रुपया हो और वह सौ रुपये का क़र्ज़दार

हो तो भी उसको ज़कात दी जा सकती है, बल्कि मतलब यह है कि जिसपर इतना क़र्ज़ हो कि उसे अदा करने के बाद उसके पास निसाब के हिसाब से कम माल बचता हो तो उसे ज़कात दी जा सकती है। फ़ुक़हा ने यह भी फ़रमाया है कि जो आदमी अपनी फ़ुज़ूल ख़र्चियों और बदकारियों की वजह से क़र्ज़दार हुआ हो उसको ज़कात देना मकरूह है, क्योंकि फिर वह इस भरोसे पर और ज़्यादा हिम्मत के साथ बदकारियाँ और फ़ुज़ूल ख़र्चियाँ करेगा कि ज़कात लेकर क़र्ज़ अदा कर दूँगा।

(7) **फ़ी सबीलिल्लाह**— यह आम लफ़्ज़ है जो सभी नेक कामों पर इस्तेमाल होता है, लेकिन ख़ास तौर पर इससे मुराद सच्चे दीन का झण्डा ऊँचा करने की कोशिश में मदद करना है। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि ज़कात लेना किसी मालदार आदमी के लिए जायज़ नहीं। लेकिन अगर मालदार आदमी जिहाद के लिए मदद का ज़रूरतमन्द हो तो उसे ज़कात देना चाहिए, इसलिए कि एक शख़्स मालदार सही, लेकिन जिहाद के लिए जो ग़ैर मामूली ख़र्च होता है उसको वह सिर्फ़ अपने माल से किस तरह पूरा कर सकता है। इस काम में ज़कात से उसकी मदद करनी चाहिए।

(8) **इब्नुस्सबील यानी मुसाफ़िर**— भले ही मुसाफ़िर के पास उसके वतन में कितना ही माल हो, लेकिन सफ़र की हालत में अगर वह मुहताज है तो उसे ज़कात देनी चाहिए।

ज़कात किसे दी जाए और किसे नहीं

अब यह सवाल बाक़ी रह जाता है कि आठ गिरोह जो बयान हुए हैं उनमें से किस आदमी को किस हाल में ज़कात देनी चाहिए और किस हाल में ज़कात न देनी चाहिए। इसकी भी थोड़ी-सी तफ़सील आपके सामने बयान कर देता हूँ।

(1) कोई आदमी अपने बाप या बेटे को ज़कात नहीं दे सकता। शौहर अपनी बीवी को और बीवी अपने शौहर को ज़कात नहीं दे सकती। इसमें फ़ुक़हा एक राय रखते हैं। कुछ फ़ुक़हा यह भी कहते हैं कि ऐसे क़रीबी रिश्तेदारों को ज़कात नहीं देनी चाहिए जिनका खाना-पीना आप पर वाजिब हो या जो आपके शरई वारिस हों। अलबत्ता दूर के रिश्तेदार ज़कात के

हक़दार हैं, बल्कि दूसरों से ज़्यादा हक़दार हैं। मगर इमाम औज़ाई (रह०) फ़रमाते हैं कि ज़कात निकालकर अपने ही रिश्तेदारों को न ढूँढ़ते फिरो।

(2) ज़कात सिर्फ़ मुसलमान का हक़ है। हदीस में ज़कात की तारीफ़ यह आई है—

تُؤْخَذُ مِنْ اَغْنِيَآئِكُمْ وَتُرَدُّ إِلٰى فُقَرَآءِكُمْ○

यानी, वह तुम्हारे मालदारों से ली जाएगी और तुम्हारे ही फ़क़ीरों में बाँट दी जाएगी।

अलबत्ता ग़ैर मुसलिम को आम ख़ैरात में से हिस्सा दिया जा सकता है, बल्कि आम ख़ैरात में यह फ़र्क़ करना अच्छा नहीं है कि मुसलमान को दी जाए और ग़ैर मुसलिम मदद का मुहताज हो तो उससे हाथ रोक लिया जाए।

(3) इमाम अबू हनीफ़ा (रह०), इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) और इमाम मुहम्मद (रह०) फ़रमाते हैं कि हर आबादी की ज़कात उसी आबादी के ग़रीबों में ख़र्च होनी चाहिए। एक आबादी से दूसरी आबादी में भेजना अच्छा नहीं है। अलबत्ता उन हालतों में कि वहाँ कोई हक़दार न हो या दूसरी जगह कोई ऐसी मुसीबत आ गई हो कि दूर व नज़दीक की आबादियों से मदद पहुँचानी ज़रूरी हो जैसे बाढ़ या अकाल वग़ैरह। क़रीब-क़रीब यही राय इमाम मालिक (रह०) और इमाम सुफ़ियान सौरी (रह०) की भी है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एक जगह से दूसरी जगह ज़कात भेजना नाजायज़ है।

(4) कुछ बुज़ुर्गों का ख़याल है कि जिस आदमी के पास दो वक़्त के खाने का सामान हो उसे ज़कात न लेनी चाहिए। कुछ बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं कि जिसके पास 10 रुपये और कुछ कहते हैं कि जिसके पास 12 1/2 रुपये मौजूद हों उसे ज़कात न लेनी चाहिए। लेकिन इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) और तमाम हनफ़िया की राय यही है कि जिसके पास पचास रुपये से कम हों वह ज़कात ले सकता है। इसमें मकान और घर का सामान और घोड़ा और नौकर शामिल नहीं है। यानी ये सब सामान रखते हुए भी जो आदमी पचास रुपये से कम माल रखता हो, वह ज़कात लेने का हक़दार है। इस

सिलसिले में एक चीज़ तो है क़ानून और दूसरी चीज़ है फ़ज़ीलत का दर्जा। इन दोनों में फ़र्क़ है। फ़ज़ीलत का दर्जा तो यह है कि हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो आदमी सुबह व शाम की रोटी का सामान रखता हो, वह अगर सवाल के लिए हाथ फैलाता है तो अपने हक़ में आग जमा करता है। दूसरी हदीस में है कि आप (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि मैं इसको पसन्द करता हूँ कि एक आदमी लकड़ियाँ काटे और अपना पेट भरे इसके मुक़ाबले में कि सवाल के लिए हाथ फैलाता फिरे। तीसरी हदीस में है कि जिसके पास खाने को हो या जो कमाने की ताक़त रखता हो, उसका यह काम नहीं है कि ज़कात ले। लेकिन यह ऊँचे इरादे की तालीम है। रहा क़ानून तो इसमें एक आख़िरी हद बतानी ज़रूरी है कि कहाँ तक आदमी ज़कात लेने का हक़दार हो सकता है? सो वह दूसरी हदीसों में मिलता है। मिसाल के तौर पर नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

لِلسَّائِلِ حَقٌّ وَإِنْ جَاءَ عَلَى الْفَرَسِ ٥

"माँगनेवाले का हक़ है, भले ही वह घोड़े पर चढ़कर आया हो।"

एक आदमी ने हुज़ूर (सल्ल०) से कहा कि मेरे पास 10 रुपये हैं, क्या मैं मिसकीन हूँ? आपने फ़रमाया, 'हाँ'। एक बार दो आदमियों ने आकर हुज़ूर (सल्ल०) से ज़कात माँगी। आपने नज़र उठाकर उन्हें ग़ौर से देखा, फिर फ़रमाया कि अगर तुम लेना चाहते हो तो मैं दे दूँगा, लेकिन इस माल में मालदार और काम कर सकने के क़ाबिल हट्टे-कट्टे लोगों का हिस्सा नहीं है। इन सब हदीसों से मालूम होता है कि जो आदमी निसाब के हिसाब से कम माल रखता हो, वह मिसकीन की लिस्ट में आ जाता है और उसे ज़कात दी जा सकती है। यह दूसरी बात है कि ज़क़ात लेने का हक़ असल में असली ज़रूरतमन्दों ही को पहुँचता है।

ज़कात के लिए इजतिमाई निज़ाम की ज़रूरत

ज़कात के ज़रूरी हुक्म मैंने बयान कर दिए हैं। लेकिन इन सबके साथ एक बहुत ज़रूरी चीज़ और भी है जिसकी तरफ़ आपकी तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ और मुसलमान आजकल इसको भूल गए हैं। वह यह है कि इस्लाम में तमाम काम जमाअत के निज़ाम के साथ होते हैं। अलग-अलग

रहने को इस्लाम पसन्द नहीं करता। आप मसजिद से दूर हों और अलग नमाज़ पढ़ लें तो नमाज़ तो हो जाएगी, मगर शरीअत तो यही चाहती है कि जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ें। इसी तरह अगर जमाअत का निज़ाम न हो तो अलग-अलग ज़कात निकालना और ख़र्च करना भी सही है, लेकिन कोशिश यही होनी चाहिए कि ज़कात को एक मरकज़ पर जमा किया जाए ताकि वहाँ से वह एक ज़ाबते के साथ ख़र्च हो। इसी चीज़ की तरफ़ क़ुरआन मजीद में इशारा फ़रमाया गया है। मिसाल के तौर पर फ़रमाया—

خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَتُزَكِّيْهِمْ بِهَا○

यानी, अल्लाह ने नबी करीम (सल्ल०) से फ़रमाया कि आप उनसे ज़कात वुसूल करें। मुसलमानों से यह नहीं फ़रमाया कि तुम ज़कात निकालकर अलग-अलग ख़र्च कर दो। इसी तरह ज़कात वसूल करनेवालों का हक़ मुक़र्रर करने से भी साफ़ मालूम होता है कि ज़कात का सही तरीक़ा यह है कि मुसलमानों का इमाम इसको बाक़ायदा वुसूले और ख़र्च करे। इसी तरह नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

اُمِرْتُ اَنْ آخُذَ الصَّدَقَةَ مِنْ اَغْنِيَاءِكُمْ اَرُدُّوْهَا فِی فُقَرَآءِكُمْ

मुझे हुक्म दिया गया है कि तुम्हारे मालदारों से ज़कात वुसूल करूँ और तुम्हारे फ़क़ीरों में बाँट दूँ।

इसी तरीक़े पर नबी (सल्ल०) और ख़ुलफ़ाए राशिदीन का अमल भी था। तमाम ज़कात इस्लामी हुकूमत के कारकुन जमा करते थे और मरकज़ की तरफ़ से उसको तक़सीम किया जाता था। आज अगर इस्लामी हुकूमत नहीं है और ज़कात जमा करके बाक़ायदा तक़सीम करने का इनतिज़ाम भी नहीं है तो आप अलग-अलग अपनी ज़कात निकालकर शरई तौर पर ख़र्च कर सकते हैं, मगर तमाम मुसलमानों पर लाज़िम है कि ज़कात जमा करने और तक़सीम करने के लिए एक इजतिमाई निज़ाम बनाने की फ़िक्र करें क्योंकि इसके बग़ैर ज़कात के फ़र्ज़ होने के फ़ायदे अधूरे रह जाते हैं।

अध्याय — 5

हज की हक़ीक़त

- हज
  - हज की तारीख़
    - हज के फ़ायदे
      - हज का आलमगीर इजतिमा

हज

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबों में नमाज़, रोज़ा और ज़कात के बारे में आपको तफ़सील के साथ बताया जा चुका है कि ये इबादतें इनसान की ज़िन्दगी को किस तरह इस्लाम के साँचे में ढालती हैं और उसको अल्लाह की बन्दगी के लिए तैयार करती हैं। अब इस्लाम की फ़र्ज़ इबादतों में से सिर्फ़ हज बाक़ी है, जिसके फ़ायदे मुझे आपके सामने बयान करने हैं।

हज के मानी

हज के मानी अरबी ज़बान में ज़ियारत का इरादा करने के हैं। हज में चूँकि हर तरफ़ से लोग काबा की ज़ियारत का इरादा करते हैं, इसलिए उसका नाम हज रखा गया।

हज की शुरुआत

सबसे पहले यह जिस तरह शुरू हुआ, वह क़िस्सा बड़ा सबक़ देनेवाला है। उस क़िस्से को ग़ौर से सुनिए, ताकि हज की हक़ीक़त अच्छी तरह आपके दिमाग़ में बैठ जाए। फिर इसके फ़ायदों का समझना आपके लिए आसान होगा।

हज़रत इबराहीम (अलै०) के ज़माने में हालात

कौन मुसलमान, ईसाई या यहूदी ऐसा है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) के नाम को जानता न हो? दुनिया की दो तिहाई से ज़्यादा आबादी उनको पेशवा मानती है। हज़रत मूसा (अलै०), हज़रत ईसा (अलै०) और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तीनों इन्हीं की औलाद से हैं। उन्हीं के रौशन किए हुए चिराग़ से दुनियाभर में हिदायत की रौशनी फैली है। चार हज़ार वर्ष से ज़्यादा मुद्दत गुज़री, जब वह इराक़ की सरज़मीन में पैदा हुए थे। उस वक़्त सारी दुनिया ख़ुदा को भूली हुई थी। इस ज़मीन पर कोई आदमी ऐसा न था जो उस वक़्त अपने असली मालिक को पहचानता हो और सिर्फ़ उसी

के आगे इताअत व बन्दगी में सिर झुकाता हो। जिस क़ौम में उन्होंने आँखें खोली थीं, वह अगरचे उस ज़माने में दुनिया की सबसे ज़्यादा तरक़्क़ीयाफ़ता क़ौम थी, लेकिन गुमराही में भी वही सबसे आगे थी। इल्म व फ़न और उद्योग-धंधों में तरक़्क़ी कर लेने के बाद भी उन लोगों को इतनी ज़रा-सी बात न सूझती थी कि मख़लूक़ कभी माबूद होने लायक़ नहीं हो सकती। उनके यहाँ बुतों और सितारों की पूजा होती थी। ज्योतिषी, फ़ालगीरी, ग़ैबगोई, जादू-टोने और तावीज़-गण्डे का ख़ूब चर्चा था। उस ज़माने में पुजारियों का एक गिरोह था जो मन्दिरों की हिफ़ाज़त भी करता, लोगों को पूजा भी कराता और शादी और ग़मी वग़ैरह की रस्मों को भी अदा कराता और ग़ैब की ख़बरें भी लोगों को बताने का ढोंग रचा करता था। आम लोग उनके फन्दे में ऐसे फँसे हुए थे कि उन्हीं को अपनी अच्छी और बुरी क़िस्मत का मालिक समझते थे, उन्हीं के इशारों पर चलते थे और बिना कुछ कहे-सुने उनकी ख़्वाहिशों की बन्दगी करते थे, क्योंकि उनका गुमान था कि देवताओं के यहाँ उन पुजारियों की पहुँच है। ये चाहें तो हमपर देवताओं की मेहरबानी होगी, वरना हम तबाह हो जाएँगे। पुजारियों के इस गिरोह के साथ बादशाहों की मिली भगत थी। आम लोगों को अपना बन्दा बनाकर रखने में बादशाह पुजारियों के मददगार थे और पुजारी बादशाहों के। एक तरफ़ हुकूमत इन पुजारियों की हिमायत करती थी और दूसरी तरफ़ ये पुजारी लोगों के अक़ीदे में यह बात बिठाते थे कि वक़्त का बादशाह भी ख़ुदाओं में से एक ख़ुदा है, देश और जनता का मालिक है। उसकी ज़बान क़ानून है और उसको जनता की जान व माल पर हर क़िस्म का इख़तियार हासिल है। इतना ही नहीं, बल्कि बादशाहों के आगे बन्दगी की तमाम रस्में पूरी की जाती थीं, ताकि जनता के दिल व दिमाग़ पर उनकी ख़ुदाई का ख़याल छा जाए।

हज़रत हबराहीम (अलै०) का घराना

ऐसे ज़माने और ऐसी क़ौम में हज़रत इबराहीम (अलै०) पैदा हुए और मज़े की बात तो यह है कि जिस घराने में पैदा हुए वह ख़ुद पुजारियों का घराना था। उनके बाप-दादा अपनी क़ौम के पंडित और ब्राह्मण थे। उस घर में वही तालीम और वही तरबियत उनको मिल सकती थी जो एक पंडित के लड़के को मिला करती है। उसी क़िस्म की बातें बचपन

से कानों में पड़ती थीं। वही पीरों और पीरज़ादों के रंग-ढंग अपने भाई-बन्धुओं और बिरादरी के लोगों में देखते थे, वही मन्दिर की गद्दी उनके लिए तैयार थी जिसपर बैठकर वह अपनी क़ौम के पेशवा बन सकते थे, वही नज़र व नियाज़ व चढ़ावे जिनसे उनका ख़ानदान मालामाल हो रहा था, उनके लिए भी हाज़िर थे। उसी तरह लोग उनके सामने भी हाथ जोड़ने और अक़ीदत से सिर झुकाने के लिए मौजूद थे। उसी तरह देवताओं से रिश्ता मिलाकर और ग़ैबगोई का ढोंग रचाकर वह मामूली किसान से लेकर बादशाह तक हर एक को अपनी पीरी के फन्दे में फाँस सकते थे। इस अँधेरे में जहाँ कोई एक आदमी भी हक़ को जानने और माननेवाला मौजूद न था, न तो उनको हक़ की रौशनी ही कहीं से मिल सकती थी और न किसी मामूली इनसान के बस का यह काम था कि इतने बड़े निजी और ख़ानदानी फ़ायदों को लात मारकर सिर्फ़ सच्चाई के पीछे दुनियाभर की मुसीबतें मोल लेने पर तैयार हो जाता।

हज़रत इबराहीम (अलै०) का एलाने बराअत

मगर हज़रत इबराहीम (अलै०) कोई मामूली इनसान न थे। किसी और ही मिट्टी से उनका ख़मीर बना था। होश सँभालते ही उन्होंने सोचना शुरू कर दिया कि यह सूरज, चाँद और तारे जो ख़ुद ग़ुलामों की तरह घूम रहे हैं और ये पत्थर के बुत जिनको आदमी ख़ुद अपने हाथ से बनाता है और यह बादशाह जो हमारे ही जैसा इनसान है, आख़िर ये ख़ुदा कैसे हो सकते हैं? बेचारे ख़ुद अपने इख़तियार से हिल-डुल नहीं सकते, जिनमें आप अपनी मदद करने की ताक़त नहीं, जो अपनी मौत व ज़िन्दगी के भी मालिक नहीं, उनके पास धरा क्या है कि आदमी उनके आगे इबादत में सिर झुकाए, उनसे अपनी ज़रूरतें माँगे, उनकी ताक़त से डरे और उनकी ख़िदमत करे और उनके हुक्मों को माने? ज़मीन व आसमान की जितनी चीज़ें हमको नज़र आती हैं या जिनको हम किसी तरह जानते हैं, उनमें से कोई भी ऐसी नहीं जो ख़ुद मुहताज न हो, जो ख़ुद किसी ताक़त से दबी हुई न हो और जिसपर कभी न कभी कोई ज़वाल (पतन) न आता हो। फिर जब उन सबका यह हाल है तो उनमें से कोई रब कैसे हो सकता है? जब उनमें से किसी ने मुझको पैदा नहीं किया, न किसी के हाथ में

मेरी मौत या ज़िन्दगी के फ़ायदे और नुक़सान का इख़तियार है, न किसी के हाथ में रोज़ी और ज़रूरतें पूरी करने की कुँजियाँ हैं, तो मैं उनको पालनहार क्यों मानूँ और क्यों उनके आगे बन्दगी और इताअत में सिर झुकाऊँ? मेरा रब तो वही हो सकता है जिसने सबको पैदा किया जिसके सब मुहताज हैं और जिसके इख़तियार में सबकी मौत और ज़िन्दगी और सबका फ़ायदा व नुक़सान है। यह देखकर हज़रत इबराहीम (अलै०) ने पक्का फ़ैसला कर लिया कि जिन माबूदों को मेरी क़ौम पूजती है, उनको मैं हरगिज़ न पूजूँगा और इस फ़ैसले पर पहुँचने के बाद उन्होंने खुल्लम-खुल्ला लोगों से कह दिया—

إِنِّي بَرِيءٌ مِّمَّا تُشْرِكُونَ ○

إِنِّي وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ حَنِيفًا وَّمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِينَ ○

> जिनको तुम ख़ुदाई में शरीक ठहराते हो, उनसे मेरा कोई वास्ता नहीं। मैंने सबसे मुँह मोड़कर उस ज़ात को इबादत व बन्दगी के लिए ख़ास कर लिया है, जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और मैं हरगिज़ शिर्क करनेवाला नहीं हूँ। (क़ुरआन, 6:78-79)

मुसीबतों के पहाड़

इस ऐलान के बाद हज़रत इबराहीम (अलै०) पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े। बाप ने कहा कि मैं तुमसे अपना ताल्लुक़ तोड़ लूँगा और तुमको घर से निकाल बाहर करूँगा। क़ौम ने कहा कि हम में से कोई तुमको पनाह न देगा। हुकूमत भी उनके पीछे पड़ गई। बादशाह के सामने मुक़द्दमा पेश हुआ। मगर वह अकेला इनसान सबके मुक़ाबले में सच्चाई की ख़ातिर डटकर खड़ा हो गया। बाप को अदब से जवाब दिया कि जो इल्म मेरे पास है, वह आपको नहीं मिला, इसलिए बजाए इसके कि मैं आपकी पैरवी करूँ, आपको मेरी पैरवी करनी चाहिए। क़ौम की धमकियों के जवाब में उसके बुतों को अपने हाथ से तोड़कर साबित कर दिया कि जिन्हें तुम पूजते

हो, वे ख़ुद कितने बेबस व मजबूर हैं। बादशाह से भरे दरबार में जाकर साफ़ कह दिया कि तू मेरा रब नहीं है, बल्कि मेरा रब वह है जिसके हाथ में मेरी और तेरी ज़िन्दगी व मौत है और जिसके क़ानून के बंधनों में सूरज तक जकड़ा हुआ है। आख़िर शाही दरबार से फ़ैसला हुआ कि इस शख़्स को ज़िन्दा जला डाला जाए। मगर वह पहाड़ से ज़्यादा मज़बूत दिल रखनेवाला इनसान जो सिर्फ़ एक ख़ुदा पर ईमान ला चुका था, इस हौलनाक सज़ा को भुगतने के लिए भी तैयार हो गया। फिर जब अल्लाह ने अपनी क़ुदरत से उसको आग में जलने से बचा लिया तो वह अपने घर-बार, सगे-संबंधी, क़ौम और वतन सबको छोड़-छाड़कर सिर्फ़ अपनी बीवी और अपने एक भतीजे को लेकर, मुसाफ़िरों की तरह मुल्क-मुल्क की ख़ाक छानने के लिए निकल खड़ा हुआ। जिस शख़्स के लिए अपने घर में महन्त की गद्दी मौजूद थी, जो उसपर बैठकर अपनी क़ौम का पीर बन सकता था, दौलत और इज़्ज़त दोनों जिसके क़दम चूमने के लिए तैयार थीं और जो अपनी औलाद को भी इस महन्ती की गद्दी पर मज़े लूटने के लिए छोड़ सकता था, उसने अपने लिए और अपनी औलाद के लिए बिना घर-बार और बिना सरो सामानी की ज़िन्दगी पसन्द की, क्योंकि दुनिया को झूठे ख़ुदाओं के जाल में फाँसकर ख़ुद मज़े करना उसे गवारा न था और उसके मुक़ाबले में यह गवारा था कि एक सच्चे ख़ुदा की बन्दगी की तरफ़ लोगों को बुलाए और इस 'अपराध' के बदले में कहीं चैन से न बैठ सके।

हिजरत

वतन से निकलकर हज़रत इबराहीम (अलै०) शाम, फ़िलिस्तीन, मिस्र और अरब के मुल्कों में फिरते रहे। ख़ुदा ही जानता है कि इस मुसाफ़िरत की ज़िन्दगी में उनपर क्या गुज़री होगी। माल व दौलत कुछ साथ लेकर न निकले थे और बाहर निकलकर अपनी रोटी कमाने की फ़िक्र में नहीं फिर रहे थे, बल्कि रात-दिन फ़िक्र थी तो यह थी कि लोगों को हर एक की बन्दगी से निकालकर सिर्फ़ एक ख़ुदा का बन्दा बनाएँ। इस ख़याल के आदमी को जब उसके अपने बाप ने और उसकी अपनी क़ौम ने बरदाश्त न किया तो और कौन बरदाश्त कर सकता था? कहाँ उसकी आवभगत हो सकती थी? हर जगह वही मन्दिरों के महन्त और वही ख़ुदाई के दावेदार

बादशाह मौजूद थे और हर जगह वही जाहिल अवाम बसते थे जो इन झूठे ख़ुदाओं के फन्दे में फँसे हुए थे। उन लोगों के दरमियान वह आदमी कहाँ चैन से बैठ सकता था जो न सिर्फ़ ख़ुद ही ख़ुदा के सिवा किसी की ख़ुदाई मानने के लिए तैयार न था, बल्कि दूसरों से भी खुल्लम-खुल्ला कहता फिरता था कि एक अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई मालिक और आक़ा नहीं है। सबकी आक़ाई व ख़ुदावन्दी का तख़्ता उलट दो और सिर्फ़ उस एक के बन्दे बनकर रहो। यही वजह है कि हज़रत इबराहीम (अलै०) को किसी जगह चैन न मिला। सालों बेघर-बेवतन इधर-उधर फिरते रहे। कभी कनआन की बस्तियों में हैं तो कभी मिस्र में और कभी अरब के रेगिस्तान में। इसी तरह सारी जवानी बीत गई और काले बाल सफ़ेद हो गए।

औलाद और उसकी तरबियत

आख़िरी उम्र में जब 90 वर्ष पूरे होने में सिर्फ़ चार साल बाक़ी थे और औलाद से मायूसी हो चुकी थी, अल्लाह ने औलाद दी, लेकिन इस अल्लाह के बन्दे को अब भी यह फ़िक्र न हुई कि ख़ुद बेघर इधर-उधर फिर रहा हूँ तो अब कम से कम अपने बच्चों ही को दुनिया कमाने के क़ाबिल बनाऊँ और उन्हें किसी ऐसे काम पर लगा जाऊँ कि रोटी का सहारा मिल जाए। नहीं, उस बूढ़े मुसलमान को फ़िक्र थी तो यह थी कि जिस मिशन को फैलाने में ख़ुद उसने अपनी उम्र खपा दी थी, काश, कोई ऐसा हो जो उसके मरने के बाद भी इस मिशन को फैलाता रहे! इसी ग़रज़ के लिए वह अल्लाह से औलाद की आरज़ू करता था और जब अल्लाह ने औलाद दी तो उसने यही चाहा कि अपने काम को जारी रखने के लिए उन्हें तैयार करे। इस कामिल इनसान की ज़िन्दगी एक सच्चे और असली मुसलमान की ज़िन्दगी थी। शुरू जवानी में होश सँभालने के बाद ही जब उसने अपने ख़ुदा को पहचाना और पा लिया तो ख़ुदा ने उससे कहा था कि "असलिम" यानी इस्लाम ले आ, अपने आपको मेरे सुपुर्द कर दे, मेरा होकर रह। तब उसने जवाब में यह वचन दिया था—

اَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ○

यानी, मैंने इस्लाम क़बूल किया और सारे आलम के रब का हो गया, मैंने अपने आपको उसके सुपुर्द कर दिया।

(क़ुरआन, 2:13)

इस क़ौल व क़रार को उस सच्चे शख़्स ने तमाम उम्र पूरी पाबन्दी के साथ निबाहकर दिखा दिया। उसने तमाम जगत् के पालनहार की ख़ातिर सदियों के बाप-दादा के मज़हब और उसकी रस्मों और अक़ीदों को छोड़ा, दुनिया के सारे फ़ायदों को छोड़ा, अपनी जान को आग के ख़तरे में डाला, जिलावतनी की मुसीबतें सहीं, मुल्क-मुल्क की ख़ाक छानी, अपनी ज़िंदगी का एक-एक लम्हा रब्बुल आलमीन की इताअत और उसके दीन की तबलीग़ में लगा दिया और बुढ़ापे में जब औलाद नसीब हुई तो उसके लिए भी यही दीन और यही काम पसन्द किया।

सबसे बड़ी आज़माइश

मगर इन आज़माइशों के बाद एक और आख़िरी आज़माइश बाक़ी रह गई थी, जिसके बग़ैर यह फ़ैसला न हो सकता था कि यह आदमी दुनिया की हर चीज़ से बढ़कर रब्बुल आलमीन से मुहब्बत रखता है और वह आज़माइश यह थी कि इस बुढ़ापे में, जबकि सारी मायूसी के बाद उसे औलाद नसीब हुई, अपने इकलौते बेटे को रब्बुल आलमीन की ख़ातिर क़ुरबान कर सकता है या नहीं। चुनांचे यह आज़माइश भी कर डाली गई और जब इशारा पाते ही वह अपने बेटे को अपने हाथ से ज़बह करने पर आमादा हो गया तब फ़ैसला फ़रमा दिया गया कि हाँ, अब तुमने अपने 'मुसलिम' (फ़रमाबरदार) होने के दावे को बिलकुल सच्चा कर दिखाया। अब तुम इस क़ाबिल हो कि तुम्हें सारी दुनिया का इमाम बनाया जाए। इसी बात को क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है—

सारी दुनिया के इमाम बना दिए गए

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ ؕ قَالَ اِنِّىْ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا ؕ قَالَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِىْ ؕ قَالَ لَا يَنَالُ عَهْدِى الظّٰلِمِيْنَ○

और जब इबराहीम को उसके रब ने कुछ बातों में आज़माया, और वह उनमें पूरा उतर गया तो फ़रमाया कि मैं तुमको इनसानों का इमाम (पेशवा) बनाता हूँ। उसने अर्ज़ किया: और मेरी औलाद के बारे में क्या हुक्म है? जवाब दिया: उनमें से जो ज़ालिम होंगे उन्हें मेरा अहद नहीं पहुँचता। (क़ुरआन, 2:124)

इस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) को दुनिया की पेशवाई सौंपी गई और वे इस्लाम की आलमगीर तहरीक के रहनुमा बनाए गए। अब उनको इस तहरीक को फैलाने के लिए ऐसे आदमियों की ज़रूरत पेश आई जो अलग-अलग इलाक़ों को सँभालकर बैठ जाएँ और उनके ख़लीफ़ा या नायब की हैसियत से काम करें। इस काम में तीन आदमी उनके लिए सबसे बड़ा सहारा साबित हुए। एक उनके भतीजे हज़रत लूत (अलै०) दूसरे उनके बड़े लड़के हज़रत इसमाईल (अलै०) जिन्होंने यह सुनकर कि रब्बुलआलमीन उनकी जान की क़ुरबानी चाहता है, ख़ुद अपनी गरदन ख़ुशी-ख़ुशी छुरी के नीचे रख दी और तीसरे उनके छोटे लड़के हज़रत इसहाक़ (अलै०)।

हज़रत लूत (अलै०) को पूर्वी उर्दुन भेजा

भतीजे को आपने सदूम के इलाक़े में बिठाया जिसको आजकल पूर्वी उर्दुन (ट्रांसजोर्डेनिया) कहते हैं। यहाँ उस वक़्त की सबसे ज़्यादा दुष्ट क़ौम रहती थी, इसलिए उसकी इसलाह भी नज़र में थी और साथ ही दूर-दराज़ के इलाक़ों पर भी असर डालना मक़सद था क्योंकि ईरान, इराक़ और मिस्र के बीच आने-जानेवाले सब तिजारती क़ाफ़िले इसी इलाक़े से गुज़रते थे और यहाँ बैठकर दोनों तरफ़ तबलीग़ का सिलसिला जारी किया जा सकता था।

हज़रत इसहाक़ (अलै०) को फ़िलस्तीन भेजा

छोटे लड़के हज़रत इसहाक़ (अलै०) को कनआन के इलाक़े में आबाद किया जिसको आजकल फ़िलस्तीन कहते हैं। यह इलाक़ा शाम और मिस्र के बीच में आबाद है और समुद्र के किनारे होने की वजह से दूसरे मुल्कों पर भी यहाँ से असर डाला जा सकता था। यहीं से हज़रत इसहाक़ के

बेटे हज़रत याक़ूब (अलै०) (जिनका नाम इसराईल भी था) और पोते हज़रत यूसुफ़ (अलै०) की बदौलत इस्लाम की तहरीक मिस्र तक पहुँची।

हज़रत इसमाईल (अलै०) को हिजाज़ में रखा

बड़े लड़के हज़रत इसमाईल (अलै०) को हिजाज़ में मक्के के मक़ाम पर रखा और एक मुद्दत तक ख़ुद उनके साथ रहकर अरब के तमाम इलाक़ों में इस्लाम की तालीम फैलाई।

काबा की तामीर

फिर यही दोनों बाप-बेटों ने इस्लाम की तहरीक का वह मरकज़ (केन्द्र) बनाया जो "काबा" के नाम से आज सारी दुनिया में मशहूर है। इस मरकज़ का चुनाव अल्लाह तआला ने ख़ुद किया था और उसकी बुनियाद रखने की जगह ख़ुद मुक़र्रर की थी। यह इमारत सिर्फ़ एक इबादतगाह ही न थी, जैसे मसजिदें हुआ करती हैं, बल्कि पहले दिन ही से इसको दीने इस्लाम की आलमी तहरीक की तबलीग़ व इशाअत का मरकज़ क़रार दिया गया था और इसका मक़सद यह था कि एक ख़ुदा को माननेवाले हर जगह से खिंच-खिंचकर यहाँ इकट्ठे हुआ करें, मिलकर ख़ुदा की इबादत करें और इस्लाम का पैग़ाम लेकर फिर अपने-अपने मुल्कों को वापस जाएँ। यही वह इजतिमा था जिसका नाम "हज" रखा गया। इसकी पूरी तफ़सील कि यह मरकज़ किस तरह बना, किन जज़बात और किन दुआओं के साथ दोनों बाप-बेटों ने इस इमारत की दीवारें उठाईं और कैसे हज शुरू किया गया, क़ुरआन मजीद में यूँ बयान की गई है—

إِنَّ أَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِيْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ○ فِيْهِ اٰيٰتٌ بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرَاهِيْمَ ۚ وَمَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا○

> यक़ीनन पहला घर जो लोगों के लिए मुक़र्रर किया गया वही था जो मक्का में बना, बरकतवाला घर और तमाम दुनियावालों के लिए हिदायत का मरकज़। इसमें अल्लाह की खुली हुई निशानियाँ हैं, मक़ामे इबराहीम है और जो उसमें दाख़िल हो जाता है उसको

शान्ति मिल जाती है। (क़ुरआन, 3:96-97)

اَوَلَمْ يَرَوْا اَنَّا جَعَلْنَا حَرَمًا آمِنًا وَيُتَخَطَّفُ النَّاسُ مِنْ حَوْلِهِمْ○

क्या लोगों ने देखा नहीं कि हमने कैसा पुरअमन हरम बनाया है, हालाँकि उसके चारों ओर लोग उचक लिए जाते हैं।

(क़ुरआन, 29:67)

(यानी जबकि अरब में हर तरफ़ लूट-मार, क़त्ल, ग़ारतगरी और जंग व जदल का बाज़ार गर्म था, इस हरम में हमेशा अमन ही रहा, यहाँ तक कि वहशी बद्दू तक उसकी हद में अपने बाप के क़ातिल को भी देख लेते तो उसपर हाथ उठाने की हिम्मत न करते।)

हज़रत इबराहीम (अलै०) की दुआएँ

وَاِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمْنًا ط وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرَاهِيْمَ مُصَلًّى ط وَعَهِدْنَا اِلٰى اِبْرَاهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِيَ لِلطَّآئِفِيْنَ وَالْعَاكِفِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ○ وَاِذْ قَالَ اِبْرَاهِيْمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا بَلَدًا آمِنًا وَارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرَاتِ مَنْ آمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ط قَالَ وَمَنْ كَفَرَ فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلاً ثُمَّ اَضْطَرُّهٗ اِلٰى عَذَابِ النَّارِ ط وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ○ وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرَاهِيْمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ ط رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ط اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ○ رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ص وَاَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ج اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ○ رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيْهِمْ رَسُوْلاً مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيْهِمْ ط اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ○

और जबकि हमने इस घर को लोगों के लिए मरकज़ व मर्जा और अमन की जगह बनाया और हुक्म दिया कि इबराहीम की इबादत की जगह को नमाज़ की जगह बना लो और इबराहीम व इसमाईल को हिदायत की कि मेरे घर को तवाफ़ करनेवाले और ठहरनेवाले और रुकू व सजदा करनेवाले लोगों के लिए पाक-साफ़ रखो और जबकि इबराहीम ने दुआ की कि परवरदिगार! इस शहर को पुरअम्न बना दे और यहाँ के बाशिन्दों को फलों की रोज़ी दे, जो उनमें से अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लानेवाला हो। .... और जब इबराहीम और इसमाईल इस घर की बुनियादें उठा रहे थे तो दुआ करते जाते थे कि परवरदिगार! हमारी इस कोशिश को क़बूल फ़रमा, तू सब कुछ सुनता और जानता है। परवरदिगार! और तू हम दोनों को अपना मुसलिम (फ़रमाँबरदार) बना और हमारी नस्ल से एक ऐसी क़ौम उठा जो तेरी मुसलिम हो और हमें अपनी इबादत के तरीक़े बता और हमपर इनायत की नज़र रख। तू बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है। परवरदिगार! और तू इन लोगों में इन्हीं की क़ौम से एक ऐसा रसूल भेजियो जो उन्हें तेरी आयतें सुनाए और उनको किताब और हिकमत की तालीम दे और उनके अख़लाक़ दुरुस्त करे। बेशक! तू बड़ी क़ुदरतवाला और बड़ा हकीम है।

(क़ुरआन, 2:125-129)

وَاِذْ قَالَ اِبْرَاهِيْمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا الْبَلَدَا آمِنًا وَّاجْنُبْنِي وَبَنِيَّ اَنْ نَّعْبُدَ الْاَصْنَامَ ۝ رَبِّ اِنَّهُمْ اَضْلَلْنَ كَثِيْرًا مِّنَ النَّاسِ ۚ فَمَنْ تَبِعَنِيْ فَاِنَّهٗ مِنِّيْ ۚ وَمَنْ عَصَانِيْ فَاِنَّكَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ رَبَّنَا اِنِّيْ اَسْكَنْتُ مِنْ ذُرِّيَّتِيْ بِوَادٍ غَيْرِ ذِيْ زَرْعٍ عِنْدَ بَيْتِكَ الْمُحَرَّمِ ۙ رَبَّنَا لِيُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ فَاجْعَلْ اَفْئِدَةً مِّنَ النَّاسِ تَهْوِيْ اِلَيْهِمْ وَارْزُقْهُمْ مِّنَ الثَّمَرٰتِ لَعَلَّهُمْ يَشْكُرُوْنَ ۝

और जबकि इबराहीम ने दुआ की कि ऐ पालनहार! इस शहर को पुरअम्न बना और मुझको और मेरे बच्चों को बुतपरस्ती से बचा। परवरदिगार! इन बुतों ने बहुत-से लोगों को गुमराह किया है। सो जो कोई मेरे तरीक़े की पैरवी करे, तो मेरा है और जो मेरे तरीक़े से फिर जाए तो यक़ीनन तू माफ़ करनेवाला और रहमान है। परवरदिगार! मैंने अपनी नस्ल के एक हिस्से को तेरे इस इज़्ज़तवाले घर के पास वीरान व सुनसान घाटी में ला बसाया है ताकि ये नमाज़ का निज़ाम क़ायम करें। तो ऐ रब! तू लोगों के दिलों में ऐसा शौक़ डाल कि वे उनकी तरफ़ खिंचकर आएँ और उनको फलों से रोज़ी पहुँचा। उम्मीद है कि ये तेरे शुक्रगुज़ार बनेंगे।

(क़ुरआन, 14:35-37)

وَاِذْ بَوَّاْنَا لِاِبْرَاهِيْمَ مَكَانَ الْبَيْتِ اَنْ لاَّ تُشْرِكْ بِيْ شَيْئًا وَّطَهِّرْ بَيْتِيَ لِلطَّائِفِيْنَ وَالْقَائِمِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ○وَاَذِّنْ فِي النَّاسِ بِالْحَجِّ يَأْتُوْكَ رِجَالاً وَّعَلٰى كُلِّ ضَامِرٍ يَّاْتِيْنَ مِنْ كُلِّ فَجٍّ عَمِيْقٍ○لِّيَشْهَدُوْا مَنَافِعَ لَهُمْ وَيَذْكُرُوْا اسْمَ اللّٰهِ فِيْٓ اَيَّامٍ مَّعْلُوْمَاتٍ عَلٰى مَا رَزَقَهُمْ مِّنْ بَهِيْمَةِ الْاَنْعَامِ ج فَكُلُوْا مِنْهَا وَاَطْعِمُوا الْبَآئِسَ الْفَقِيْرَ○

और जबकि हमने इबराहीम के लिए इस घर की जगह मुक़र्रर की इस हिदायत के साथ कि यहाँ शिर्क न करो, और मेरे घर को तवाफ़ करनेवालों और क़याम करनेवालों और रुकू और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखो, और लोगों में हज की आम मुनादी कर दो, ताकि तुम्हारे पास आएँ, भले ही पैदल आएँ या हर दूर-दराज़ की जगहों से दुबली ऊँटनियों पर आएँ, ताकि यहाँ आकर वे देखें कि उनके लिए कैसे-कैसे दीनी व दुनियवी फ़ायदे हैं और इन कुछ दिनों में इन जानवरों पर जो अल्लाह ने उनको दिए हों, अल्लाह का नाम लें (यानी क़ुरबानी करें) और इसमें

से ख़ुद भी खाएँ और तंगदस्त व मुहताज लोगों को भी खिलाएँ।

(क़ुरआन, 22:26-28)

मुसलमान भाइयो! यह है उस हज के शुरू होने की कहानी जिसे इस्लाम का पाँचवाँ सुतून क़रार दिया गया है। इससे आपको मालूम हो गया होगा कि दुनिया में सबसे पहले जिस नबी को इस्लाम की आलमी दावत फैलाने के लिए भेजा गया था, मक्का उसके मिशन का मरकज़ था। काबा वह जगह थी जहाँ से यह तबलीग़ दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाई जाती थी और हज का तरीक़ा इसलिए मुक़र्रर किया गया था कि जो लोग एक ख़ुदा की बन्दगी का इक़रार करें और उसकी इताअत में दाख़िल हों, वे भले ही किसी क़ौम और किसी मुल्क से ताल्लुक़ रखते हों, सबके सब उस एक मरकज़ से वाबस्ता हो जाएँ और हर साल यहाँ इकट्ठा होकर इस मरकज़ का तवाफ़ करें, मानो ज़ाहिर में अपनी इस अन्दरूनी कैफ़ियत का नक़्शा जमा लें कि उनकी ज़िन्दगी उस पहिए की तरह है जो हमेशा अपनी धुरी के चारों ओर ही घूमता है।

हज की तारीख़

मुसलमान भाइयो! पिछले ख़ुतबे में आपको यह बता चुका हूँ कि हज की शुरुआत किस तरह और किस मक़सद के लिए की गई थी। यह भी आपको बता चुका हूँ कि हज़रत इबराहीम (अलै०) ने मक्के को इस इस्लामी तहरीक का मरकज़ बनाया था और यहाँ अपने सबसे बड़े बेटे हज़रत इसमाईल (अलै०) को बिठाया था ताकि आपके बाद वह इस आन्दोलन को जारी रखे।

इबराहीम (अलै०) की औलाद में बुतपरस्ती का रिवाज

ख़ुदा ही बेहतर जानता है कि हज़रत इसमाईल (अलै०) के बाद उनकी औलाद कब तक उस दीन पर क़ायम रही जिसपर उनके बाप उनको छोड़ गए थे। बहरहाल कुछ सदियों में ये लोग अपने बुज़ुर्गों की तालीम और उनके तरीक़े सब भूल-भाल गए और धीरे-धीरे उनमें वे सब गुमराहियाँ पैदा हो गईं जो दूसरी जाहिल क़ौमों में फैली हुई थीं। इसी काबा में, जिसे एक ख़ुदा की इबादत के लिए दावत व तबलीग़ का मरकज़ बनाया गया था, सैकड़ों बुत रख दिए गए थे और ग़ज़ब यह है कि ख़ुद हज़रत इबराहीम और हज़रत इसमाईल (अलै०) का भी बुत (Statue) बना डाला गया, जिनकी सारी ज़िन्दगी बुतों ही की परस्तिश मिटाने में सर्फ़ हुई थी। इबराहीम हनीफ़ की औलाद ने लात, मनात, हुबल, नस्र, यग़ूस, उज़्ज़ा, असाफ़, नायला और ख़ुदा जाने किस-किस नाम के बुत बनाए और उनको पूजा। चाँद, अतारिद (बुध ग्रह), ज़ुहरा (वृहस्पति ग्रह), ज़ुहल और पता नहीं किस-किस सितारे को पूजा। जिन्न, भूत, प्रेत, फ़रिश्तों और अपने मुर्दा बुज़ुर्गों की रूहों को पूजा। जिहालत का ज़ोर यहाँ तक बढ़ा कि जब घर से निकलते और अपना ख़ानदानी बुत उन्हें पूजने को न मिलता तो रास्ता चलते में जो अच्छा-सा चिकना पत्थर मिल जाता, उसी को पूज डालते और पत्थर भी न मिलता तो मिट्टी को पानी से गूँधकर एक पिण्ड-सा बना लेते और बकरी का दूध छिड़कते ही वह बेजान पिण्ड उनका ख़ुदा

बन जाता। जिस महन्तगिरी और पंडिताई के ख़िलाफ़ उनके बाप इबराहीम (अलै०) ने इराक़ में लड़ाई की थी, वह ख़ुद उन्हीं के घर में घुस आई। काबा को उन्होंने बुतख़ाना बना लिया। ख़ुद वहाँ के महन्त बनकर बैठ गए। हज को तीर्थयात्रा बनाकर उस घर से जो तौहीद की तबलीग़ के लिए बना था, बुतपरस्ती की तबलीग़ करने लगे और पुजारियों के सारे हथकंडे इख़तियार करके उन्होंने अरब के दूर व नज़दीक से आनेवाले मुसाफ़िरों से नज़र-चढ़ावे वुसूल करने शुरू कर दिए। इस तरह वह सारा काम बरबाद हो गया जो इबराहीम व इसमाईल (अलै०) करके गए थे और जिस मक़सद के लिए उन्होंने हज का तरीक़ा जारी किया था, उसकी जगह कुछ और ही काम होने लगे।

हज में बिगाड़ की शक्लें

शायरों के मुक़ाबले

उस जाहिलियत के ज़माने में हज की जो हालत थी, उसका अन्दाज़ा आप इससे कर सकते हैं कि यह एक मेला था जो हर साल लगता था। बड़े-बड़े क़बीले अपने-अपने जत्थों के साथ यहाँ आते और अपने-अपने पड़ाव अलग-अलग डालते, हर क़बीले का शायर या भाँड अपनी और अपने क़बीलेवालों की बहादुरी, नामवरी, इज़्ज़त, ताक़त और सख़ावत की तारीफ़ में ज़मीन व आसमान के कुलाबे मिलाता और हर एक डींगें मारने में दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करता, यहाँ तक कि एक-दूसरे की बुराई करने तक की नौबत पहुँच जाती।

झूठी सख़ावत के मुजाहिदे

फिर फ़ैयाज़ी का मुक़ाबला होता। हर क़बीले के सरदार अपनी बड़ाई जताने के लिए देगें चढ़ाते और एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए ऊँट पर ऊँट काटते चले जाते। इस फ़िज़ूलख़र्ची से उन लोगों का मक़सद इसके सिवा कुछ न था कि इस मेले के मौक़े पर उनका नाम सारे अरब में ऊँचा हो जाए और ये चर्चे हों कि फ़लाँ साहब ने इतने ऊँट ज़बह किए और फ़लाँ साहब ने इतनों को खाना खिलाया। इन मजलिसों में राग-रंग, शराबख़ोरी,

ज़िना और हर क़िस्म की फ़हशकारी ख़ूब धड़ल्ले से होती थी और ख़ुदा का ख़याल मुशकिल ही से किसी को आता था।

नंगा तवाफ़

काबे के गिर्द तवाफ़ होता था। मगर किस तरह? औरत-मर्द सब नंगे होकर घूमते थे और कहते थे कि हम उसी हालत में ख़ुदा के सामने जाएँगे, जिसमें हमारी माओं ने हमें जना है। इबराहीम (अलै०) की मसजिद में इबादत होती थी। मगर कैसी? तालियाँ पीटी जातीं, सीटियाँ बजाई जातीं और नरसिंघे फूँके जाते। ख़ुदा का नाम पुकारा जाता। मगर किस शान से? कहते थे—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لاَ شَرِيْكَ لَكَ إِلاَّ شَرِيْكًا هُوَ لَكَ تَمْلِكُهُ وَمَا مَلَكَ.

मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मगर वह जो तेरा होने की वजह से तेरा शरीक है। तू उसका भी मालिक है और उसकी मिलकियत का भी मालिक है।"

क़ुरबानी का तसव्वुर

ख़ुदा के नाम पर वे क़ुरबानियाँ भी करते थे, मगर किस बदतमीज़ी के साथ? क़ुरबानी का ख़ून काबा की दीवारों से लथेड़ा जाता और गोश्त दरवाज़े पर डाला ज़ाता, इस ख़याल से कि (अल्लाह की पनाह) यह गोश्त और ख़ून ख़ुदा को मतलूब (अपेक्षित) है।

हराम महीनों की बेहुरमती

हज़रत इबराहीम (अलै०) ने हज के चार महीनों को हराम ठहराया था और हिदायत की थी कि इन महीनों में किसी प्रकार की लड़ाई-झगड़ा न हो। ये लोग इन हराम महीनों का किसी हद तक ख़याल रखते थे, मगर जब लड़ने को जी चाहता, तो ढिठाई के साथ एक साल हराम के महीने को हलाल कर लेते और दूसरे साल उसका बदला कर देते थे।

कुछ ख़ुद की लगाई पाबंदियाँ

फिर जो लोग अपने मज़हब में नेक-नीयत थे, उन्होंने भी जिहालत की वजह से अजीब-अजीब तरीक़े ईजाद कर लिए थे। कुछ लोग बिना रास्ते का सामान लिए हज को निकल खड़े होते और माँगते-खाते चले जाते थे। उनके नज़दीक यह नेकी का काम था। कहते थे कि हम ख़ुदा पर भरोसा करनेवाले हैं। ख़ुदा के घर की तरफ़ जा रहे हैं। फिर दुनिया का सामान क्यों लें? आम तौर से हज के सफ़र में तिजारत करने या कमाई के लिए मेहनत व मज़दूरी को नाजायज़ समझा जाता था। बहुत-से लोग हज में खाना-पीना छोड़ देते थे और उसे भी इबादत का हिस्सा समझते थे। कुछ लोग हज को निकलते तो बातचीत करना छोड़ देते। इसका नाम "हजे मुसमित" यानी "गूँगा हज" था। इसी क़िस्म की और ग़लत रस्में बेशुमार थीं, जिनका हाल बयान करके मैं आपका वक़्त बरबाद नहीं करना चाहता।

दुआए ख़लील (अलै०) की क़बूलियत

यह हालत तक़रीबन दो हज़ार साल तक क़ायम रही। इस लम्बी मुद्दत में कोई नबी अरब में पैदा नहीं हुआ, न किसी नबी की असल तालीम अरब के लोगों तक पहुँची। आख़िरकार हज़रत इबराहीम (अलै०) की उस दुआ के पूरा होने का वक़्त आया जो उन्होंने काबा की दीवारें उठाते वक़्त अल्लाह से माँगी थी। यानी—

> "परवरदिगार! इनके बीच एक पैग़म्बर ख़ुद इन्हीं की क़ौम में से भेजियो, जो इन्हें तेरी आयतें सुनाए और किताब और हिकमत की तालीम दे और इनके अख़लाक़ दुरुस्त करे।"

चुनाँचे हज़रत इबराहीम (अलै०) की औलाद से फिर एक इनसाने कामिल उठा, जिसका पाक नाम 'मुहम्मद (सल्ल०) बिन अब्दुल्लाह' था।

जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने पंडितों और महन्तों के ख़ानदान में आँख खोली थी, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी उस ख़ानदान में आँख खोली जो सदियों से काबा के तीर्थ का महन्त बना हुआ था। जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अपने हाथ से ख़ुद अपने ख़ानदान की महन्ती पर चोट लगाई, उसी तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी उसपर चोट लगाई और सिर्फ़ चोट ही नहीं लगाई, बल्कि हमेशा के लिए उसकी जड़ काटकर रख दी। फिर जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै०) ने तमाम ग़लत अक़ीदों और तमाम झूठे ख़ुदाओं की ख़ुदाई मिटाने के लिए जिद्दोजुहद की थी और एक ख़ुदा की बंदगी फैलाने की कोशिश की थी, बिलकुल वही काम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी किया; और फिर उसी असली और बेलौस (विशुद्ध) दीन को ताज़ा कर दिया जिसे हज़रत इबराहीम (अलै०) लेकर आए थे। इक्कीस साल की मुद्दत में जब यह सारा काम आप (सल्ल०) पूरा कर चुके तो अल्लाह के हुक्म से आप (सल्ल०) ने फिर उसी तरह काबा को सारी दुनिया के ख़ुदापरस्तों का मरकज़ बनाने का एलान किया और फिर वही मुनादी की कि सब तरफ़ से हज के लिए इस मरकज़ की तरफ़ जाओ।

وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ إِلَيْهِ سَبِيلًا ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِينَ ۝

> और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो कोई इस घर तक आने की क़ुदरत (सामर्थ्य) रखता हो, वह हज के लिए आए, फिर जो कोई कुफ़्र करे (यानी सामर्थ्य के होते हुए भी न आए) तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है। (क़ुरआन, 3:97)

सुन्नते इबराहीम (अलै०) को ज़िन्दा करना

इस तरह हज को नए सिरे से शुरू करने के साथ ही जाहिलियत की वे सारी रस्में भी बिलकुल मिटा दी गईं जो पिछले दो हज़ार वर्ष में रिवाज पा गई थीं।

बुतपरस्ती का ख़ात्मा

काबे के सारे बुत तोड़ दिए गए, ख़ुदा के सिवा दूसरों की जो पूजा हो रही थी, वह पूरी तरह रोक दी गई। सारी जाहिलियत की रस्में मिटा दी गईं। मेले-ठेले और तमाशे बन्द कर दिए गए और हुक्म दिया गया कि अब जो इबादत का तरीक़ा बताया जा रहा है, उसी तरीक़े से यहाँ अल्लाह की इबादत करो—

وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰكُمْ ۚ وَإِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ الضَّآلِّيْنَ○

और अल्लाह को याद करो, उस तरह जैसी तुम्हें अल्लाह ने हिदायत की है, वरना इससे पहले तो तुम गुमराह लोग थे। (क़ुरआन, 2:198)

बेहूदा कामों पर रोक

सभी बेहूदा कामों को सख़्ती से रोक दिया गया—

فَلاَ رَفَثَ وَلاَ فُسُوْقَ ۙ وَلاَ جِدَالَ فِى الْحَجِّ○

हज में न शहवानी काम किए जाएँ, न फ़िस्क़ व फ़ुजूर हो, न लड़ाई-झगड़े हों। (क़ुरआन, 2:197)

शायरी के दंगल, बाप-दादा के कारनामों पर फ़ख़्र, झूठी तारीफ़ और दूसरों की बुराई करने के मुक़ाबले सब बन्द कर दिए गए और हुक्म दिया गया—

فَإِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا○

फिर जब अपने हज के मनासिक अदा कर चुको तो याद करो अल्लाह को जिस तरह तुम अपने बाप-दादों को याद करते थे, बल्कि उससे भी बढ़ कर। (क़ुरआन, 2:200)

दिखावे की फ़य्याज़ी का ख़ात्मा

फ़य्याज़ी के मुक़ाबले जो सिर्फ़ दिखावे और नाम के लिए होते थे, उन

सबका ख़ात्मा कर दिया गया और उसकी जगह वही हज़रत इबराहीम (अलै०) के ज़माने का तरीक़ा फिर ज़िन्दा किया गया कि सिर्फ़ अल्लाह के नाम पर जानवर ज़बह किए जाएँ ताकि ख़ुशहाल लोगों की कुरबानी से ग़रीब से ग़रीब हाजियों को भी खाने का मौक़ा मिल जाए—

كُلُوْا وَاشْرَبُوْا وَلاَ تُسْرِفُوْا إِنَّهُ لاَيُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ۝

खाओ-पियो, मगर फिज़ूलख़र्ची न करो कि अल्लाह फ़िजूल ख़र्च करनेवालों को पसन्द नहीं करता। (कुरआन, 7:31)

فَاذْكُرُوْا اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهَا صَوَآفَّ فَإِذَا وَجَبَتْ جُنُوْبُهَا فَكُلُوْا مِنْهَا وَاطْعِمُوْا الْقَانِعَ وَالْمُعْتَرَّ۝

इन जानवरों को ख़ालिस अल्लाह के लिए उसी के नाम पर कुरबान करो, फिर जब उनकी पीठें ज़मीन पर ठहर जाएँ (यानी जब जान पूरी तरह निकल चुके और हरकत बाक़ी न रहे) तो ख़ुद भी उनमें से खाओ और क़िनाअत करनेवालों को भी खिलाओ और ज़रूरतमंद सायल को भी। (कुरआन, 22:36)

कुरबानी का ख़ून और गोश्त लथेड़ना मना

कुरबानी का ख़ून काबा की दीवारों से लथेड़ने और गोश्त लाकर डालने से मना कर दिया गया और कहा गया—

لَنْ يَّنَالَ اللّٰهَ لُحُوْمُهَا وَلاَ دِمَآؤُهَا وَلٰكِنْ يَّنَالُهُ التَّقْوٰى مِنْكُمْ۝

अल्लाह को इन जानवरों के गोश्त और ख़ून नहीं पहुँचते, बल्कि तुम्हारी परहेज़गारी व ख़ुदातरसी पहुँचती है। (कुरआन, 22:37)

नंगे होकर तवाफ़ की मनाही

नंगे होकर तवाफ़ करने से बिलकुल रोक दिया गया और कहा गया—

قُلْ مَنْ حَرَّمَ زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ۝

ऐ नबी! उनसे कहो कि किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम किया जो उसने अपने बन्दों के लिए निकाली थी (यानी लिबास)? (क़ुरआन, 7:32)

قُلْ إِنَّ اللّٰهَ لَا يَأْمُرُ بِالْفَحْشَاءِ ○

(ऐ नबी!) कहो कि अल्लाह तो हरगिज़ बेहयाई का हुक्म नहीं देता। (क़ुरआन, 7:28)

يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ ○

ऐ आदम की औलाद! हर इबादत के वक़्त अपनी ज़ीनत (यानी लिबास) पहने रहा करो। (क़ुरआन, 7:31)

हज के महीनों में उलट-फेर की मनाही

हज के महीनों का उलट-फेर करने और हराम महीनों को लड़ाई के लिए हलाल कर लेने से सख़्ती के साथ रोक दिया गया।

إِنَّمَا النَّسِيْٓءُ زِيَادَةٌ فِي الْكُفْرِ يُضَلُّ بِهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا يُحِلُّوْنَهٗ عَامًا وَّ يُحَرِّمُوْنَهٗ عَامًا لِّيُوَاطِئُوْا عِدَّةَ مَا حَرَّمَ اللّٰهُ فَيُحِلُّوْا مَا حَرَّمَ اللّٰهُ ○

नसी (महीनों का फेर-बदल) तो कुफ़्र में और इज़ाफ़ा है (यानी कुफ़्र के साथ ढिठाई का इज़ाफ़ा है)। काफ़िर लोग इससे और ज़्यादा गुमराही में पड़ते हैं। एक साल एक महीने को हलाल कर लेते हैं और दूसरे साल इसके बदले में कोई दूसरा महीना हराम कर देते हैं ताकि जितने महीने अल्लाह ने हराम ठहराए हैं, उनकी तादाद तो पूरी कर दी जाए, मगर इस बहाने से दरअसल उस चीज़ को हलाल कर लिया जाए जिसे अल्लाह ने हराम किया था। (क़ुरआन, 9:37)

सफ़र का ख़र्च लेने का हुक्म

सफ़र का ख़र्च लिए बिना हज के लिए निकलने से मना किया गया

और कहा गया—

تَزَوَّدُوا فَإِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى۝

सफ़र का ख़र्च ज़रूर लो, क्योंकि (दुनिया में सफ़र का ख़र्च न लेना आख़िरत का सामान नहीं है) सबसे अच्छा आख़िरत का सामान तो तक़वा है। (क़ुरआन, 2:197)

हज में रोज़ी कमाने की इजाज़त

हज के सफ़र में कमाई न करने को जो नेकी का काम समझा जाता था और रोज़ी कमाने को नाजायज़ ख़याल किया जाता था, इस ख़याल को ग़लत साबित किया गया——

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلاً مِّنْ رَّبِّكُمْ۝

कोई बात नहीं अगर तुम कारोबार के ज़रिए से अपने रब का फ़ज़्ल तलाश करते जाओ। (क़ुरआन, 2:198)

जाहिली रस्मों का ख़ात्मा

'गूँगे हज' और 'भूखे-प्यासे हज' से भी रोका गया और इसी तरह जाहिलियत की दूसरी तमाम रस्मों को मिटाकर हज को तक़वा, ख़ुदातरसी, पाकीज़गी और सादगी व दुर्वेशी का मुकम्मल नमूना बना दिया गया। हाजियों को हुक्म दिया गया कि जब अपने घरों से चलो तो अपने आपको दुनिया की तमाम गंदगियों से पाक कर लो, शह्वात को छोड़ दो, बीवियों के साथ भी उस ज़माने में शौहर-बीवी का-सा ताल्लुक़ न रखो। गाली-गलौच और तमाम बेहूदा कामों से परहेज़ करो।

मीक़ात मुक़र्रर

काबा की तरफ़ आनेवाले जितने रास्ते हैं, उन सबपर बीसियों मील दूर से एक-एक हद मुक़र्रर कर दी गई कि इस हद से आगे बढ़ने से पहले सब लोग अपने-अपने लिबास बदलकर इहराम का फ़क़ीराना लिबास पहन

लें, ताकि सब अमीर व ग़रीब एक से हो जाएँ, अलग-अलग क़ौमों के फ़र्क़ मिट जाएँ और सबके सब अल्लाह के दरबार में एक होकर, फ़क़ीर बनकर आजिज़ी की हालत में हाज़िर हों।

पुरअम्न माहौल की हिदायत

इहराम बाँधने के बाद इनसान का ख़ून बहाना तो दूर रहा, जानवरों तक का शिकार करना हराम कर दिया गया; ताकि अम्नपसन्दी पैदा हो, जंगलीपन दूर हो जाए और तबीअतों पर रूहानियत ग़ालिब हो। हज के चार महीने इसलिए हराम किए गए कि इस मुद्दत में कोई लड़ाई न हो, काबा को जानेवाले तमाम रास्तों में अम्न रहे और हरम की ज़ियारत करनेवालों को कोई न छेड़े। इस शान के साथ जब हाजी हरम में पहुँचें तो उनके लिए कोई मेला-ठेला, खेल-तमाशा, नाच-रंग वग़ैरह नहीं है, क़दम-क़दम पर ख़ुदा का ज़िक्र है, नमाज़ें हैं, इबादतें हैं, क़ुरबानियाँ हैं, काबे का तवाफ़ है और कोई पुकार है तो बस यह है—

एक ही नारा, तलबिया

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ، لَبَّيْكَ لاَشَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ إِنَّ الْحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ، لاَ شَرِيْكَ لَكَ.

> हाज़िर हूँ मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ। बेशक तारीफ़ सब तेरे ही लिए है। नेमत सब तेरी ही है। सारी बादशाही तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।

ऐसे ही पाक व साफ़, बेलौस, और मुख़लिसाना हज के बारे में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

مَنْ حَجَّ لِلّٰهِ فَلَمْ يَرْفُثْ وَلَمْ يَفْسُقْ رَجَعَ كَيَوْمٍ وَّلَدَتْهُ اُمُّهُ.

> जिसने अल्लाह के लिए हज किया और उसमें शहवात और दूसरे गुनाहों से परहेज़ किया, वह इस तरह पलटा जैसे आज ही अपनी

माँ के पेट से पैदा हुआ है।

फ़रीज़-ए-हज की अहमियत

अब इससे पहले कि आपके सामने हज के फ़ायदे बयान किए जाएँ, यह भी बता देना ज़रूरी है कि यह 'फ़र्ज़' कैसा फ़र्ज़ है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ إِلَيْهِ سَبِيْلًا ۚ وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ۝

और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो उस घर तक पहुँचने की क़ुदरत रखता हो, वह उसका हज करे और जिसने कुफ़्र किया, तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।'' (क़ुरआन, 3:97)

इस आयत में क़ुदरत रखने के बावजूद जान-बूझकर हज न करने को कुफ़्र कहा गया है। इसकी तशरीह नबी (सल्ल०) की इन दो हदीसों से होती है—

مَنْ مَّلَكَ زَادًا وَّرَاحِلَةً تُبَلِّغُهُ إِلٰى بَيْتِ اللّٰهِ وَلَمْ يَحُجَّ فَلَا عَلَيْهِ اَنْ يَّمُوْتَ يَهُوْدِيًّا اَوْ نَصْرَانِيًّا.

जो आदमी रास्ते का खाना और सवारी रखता हो, जिससे बैतुल्लाह (हरम) तक पहुँच सकता हो और फिर हज न करे तो उसका इस हालत पर मरना और यहूदी या ईसाई होकर मरना बिलकुल बराबर है।

مَنْ لَّمْ يَمْنَعْهُ مِنَ الْحَجِّ حَاجَةٌ ظَاهِرَةٌ اَوْ سُلْطَانٌ جَآئِزٌ اَوْ مَرَضٌ حَابِسٌ فَمَاتَ وَلَمْ يَحُجَّ فَلْيَمُتْ إِنْ شَاءَ يَهُوْدِيًّا وَإِنْ شَآءَ نَصْرَانِيًّا.

जिसको न किसी बड़ी ज़रूरत ने हज से रोका हो, न किसी ज़ालिम हाकिम ने, न किसी रोकनेवाले मर्ज़ ने, और फिर उसने हज न किया हो और इसी हालत में उसे मौत आ जाए, तो उसे इख़तियार

है भले ही वह यहूदी बनकर मरे या ईसाई बनकर।

और इसी की तफ़सीर (व्याख्या) हज़रत उमर (रज़ि०) ने की, जब कहा कि—

> जो लोग क़ुदरत रखने के बाद भी हज नहीं करते, मेरा जी चाहता है कि उनपर जिज़िया लगा दूँ, वे मुसलमान नहीं हैं, वे मुसलमान नहीं हैं।

अल्लाह के इस फ़रमान और रसूल (सल्ल०) व रसूल के ख़लीफ़ा की इस तशरीह (व्याख्या) से आपको अन्दाज़ा हो गया होगा कि यह फ़र्ज़ ऐसा फ़र्ज़ नहीं है कि जी चाहे तो अदा कीजिए और न चाहे तो टाल दीजिए। बल्कि यह ऐसा फ़र्ज़ है कि हर उस मुसलमान को, जो काबा तक जाने-आने का ख़र्च रखता हो और हाथ-पाँव से लाचार न हो, उम्र में एक बार उसे लाज़मी तौर पर अदा करना चाहिए, चाहे वह दुनिया के किसी कोने में हो और भले ही उसके ऊपर बाल-बच्चों की और अपने कारोबार या मुलाज़िमत वग़ैरह की कैसी ही ज़िम्मेदारियाँ हों। जो लोग क़ुदरत रखने के बाद भी हज को टालते रहते हैं और हज़ारों काम के बहाने कर-करके साल पर साल यूँ ही गुज़ारते चले जाते हैं उनको अपने ईमान की ख़ैर मनानी चाहिए। रहे वे लोग जिनको उम्र भर कभी यह ख़याल ही नहीं आता कि हज भी कोई फ़र्ज़ उनके ज़िम्मे है, दुनिया भर के सफ़र करते फिरते हैं, 'यूरोपीय काबा' को आते-जाते हिजाज़ के साहिल से भी गुज़र जाते हैं, जहाँ से मक्का सिर्फ़ कुछ घण्टों की दूरी पर है और फिर भी हज का इरादा तक उनके दिल में नहीं गुज़रता, वे तो बिलकुल ही मुसलमान नहीं हैं। झूठ कहते हैं अगर अपने-आप को मुसलमान कहते हैं और जो उन्हें मुसलमान समझता है वह दरअसल क़ुरआन की तालीमात से नावाक़िफ़ और जाहिल है। अल्लाह के हुक्म से मुँह मोड़नेवालों के दिल में अगर मुसलमानों के मुताल्लिक़ दर्द उठता है तो उठा करे, लेकिन सब बेमाना है जब तक अल्लाह की इताअत और उसके हुक्म पर ईमान का जज़्बा उनके दिल में नहीं है।

हज के फ़ायदे

मुसलमान भाइयो! क़ुरआन मजीद में जहाँ यह ज़िक्र आया है कि अल्लाह तआला ने इबराहीम (अलै०) को हज की आम मुनादी करने का हुक्म दिया था, वहाँ उस हुक्म की पहली वजह यह बयान की गई है कि, "लियशहदू मनाफ़ि-अ लहुम" (ताकि लोग यहाँ आकर देखें कि हज में उनके लिए कैसे-कैसे फ़ायदे हैं।) यानी यह सफ़र करके और उस जगह जमा होकर वे ख़ुद अपनी आँखों से देख लें कि यह उन्हीं के फ़ायदे के लिए है और उसमें जो फ़ायदे छिपे हुए हैं, उनका अन्दाज़ा कुछ उसी वक़्त हो सकता है जबकि आदमी यह काम करके ख़ुद देख ले। हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के बारे में कहा जाता है कि जब तक उन्होंने हज नहीं किया था, उन्हें इस मामले में खटका था कि इस्लामी इबादतों में सबसे अफ़ज़ल कौन-सी इबादत है। मगर जब उन्होंने ख़ुद हज करके उन अनगिनत फ़ायदों को देखा जो इस इबादत में छिपे हुए हैं, तो बेधड़क पुकार उठे कि यक़ीनी तौर पर हज सबसे अफ़ज़ल है।

आइए! अब मैं आपको चंद लफ़्ज़ों में इसके फ़ायदे बताऊँ:

हज के सफ़र की नौईयत

दुनिया के लोग आम तौर पर दो ही क़िस्मों के सफ़रों को जानते हैं। एक सफ़र वह जो रोटी कमाने के लिए किया जाता है, दूसरा वह जो सैर व मनोरंजन के लिए किया जाता है। इन दोनों सफ़रों में अपनी ग़रज़ और अपनी ख़्वाहिश आदमी को बाहर निकलने को तैयार करती है। घर छोड़ता है तो अपने मतलब के लिए, बाल-बच्चों और नातेदारों से अलग होता है तो अपनी ख़ातिर, माल ख़र्च करता है या वक़्त लगाता है तो अपनी ग़रज़ के लिए, इसमें क़ुरबानी का कोई सवाल नहीं है। मगर यह सफ़र जिसका नाम हज है, इसका मामला और सब सफ़रों से अलग है। यह सफ़र अपनी ग़रज़ के लिए या अपने नफ़्स की किसी ख़्वाहिश के लिए नहीं है, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह के लिए और उस फ़र्ज़ को अदा करने के

लिए है जो अल्लाह ने मुक़र्रर किया है। इस सफ़र पर कोई शख़्स उस वक़्त तक तैयार हो ही नहीं सकता, जब तक कि उसके दिल में अल्लाह की मुहब्बत न हो, उसका डर न हो और उसके फ़र्ज़ को फ़र्ज़ समझने का ख़याल न हो। तो जो शख़्स अपने घर बार से एक लम्बी मुद्दत के लिए अलगाव, अपने सगे-सम्बन्धियों से जुदाई, अपने कारोबार का नुक़सान, अपने माल का ख़र्च और सफ़र की तकलीफ़ें बरदाश्त करके हज को निकलता है, उसका निकलना ख़ुद इस बात की दलील है कि उसके अन्दर ख़ुदा का ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत भी है और फ़र्ज़ का एहसास भी है, और उसमें यह ताक़त भी मौजूद है कि अगर किसी वक़्त ख़ुदा की राह में निकलने की ज़रूरत पेश आए तो वह निकल सकता है, तकलीफ़ें उठा सकता है, अपने माल और अपनी राहत को ख़ुदा की ख़ुशी पर क़ुरबान कर सकता है।

नेकी और तक़वा की चाह

फिर जब वह ऐसे पाक इरादे से सफ़र के लिए तैयार होता है तो उसकी तबीयत का हाल कुछ और ही होता है। जिस दिल में ख़ुदा की मुहब्बत का शौक़ भड़क उठा हो और जिसको उधर की लौ लग गई हो, उसमें फिर नेक ही नेक ख़याल आने शुरू हो जाते हैं। गुनाहों से तौबा करता है और लोगों से अपना कहा-सुना माफ़ करवाता है। किसी का हक़ उसपर आता हो तो उसे अदा करने की फ़िक्र करता है, ताकि ख़ुदा के दरबार में बन्दों के हक़ का बोझ लादे हुए न जाए। बुराई से उसके दिल को नफ़रत होने लगती है और क़ुदरती तौर पर भलाई की तरफ़ रग़बत बढ़ जाती है। फिर सफ़र के लिए निकलने के साथ ही जैसे-जैसे वह ख़ुदा के घर की तरफ़ बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके अन्दर नेकी का जज़्बा भी बढ़ता चला जाता है। उसकी कोशिश यह होती है कि किसी को उससे तकलीफ़ न पहुँचे और जिसकी जितनी ख़िदमत या मदद हो सके, करे। बदकलामी, बेहूदगी, बेहयाई, बद्दयानती और झगड़ा-फ़साद करने से ख़ुद उसकी अपनी तबीयत अन्दर से रुकती है; क्योंकि वह ख़ुदा के रास्ते में जा रहा है। अल्लाह के घर का मुसाफ़िर हो और फिर बुरे काम करता हुआ जाए, ऐसी शर्म की बात किसी से कैसे हो? उसका तो यह सफ़र पूरा का पूरा इबादत

है। इस इबादत की हालत में ज़ुल्म और फ़िस्क़ का क्या काम? इसलिए दूसरे तमाम सफ़रों के ख़िलाफ़ यह ऐसा सफ़र है जो हर वक़्त आदमी के नफ़्स को पाक करता रहता है। और यूँ समझो कि यह एक बहुत बड़ा सुधार करनेवाला कोर्स है जिससे लाज़मी तौर पर हर उस मुसलमान को गुज़रना पड़ता है जो हज के लिए जाए।

इहराम और उसकी शर्तें

सफ़र का एक हिस्सा तय कर चुकने के बाद एक ख़ास हद ऐसी आती है जिससे कोई मुसलमान जो मक्का जाना चाहता हो, इहराम बाँधे बिना आगे नहीं बढ़ सकता। यह इहराम क्या है? एक फ़क़ीराना लिबास जिसमें एक तहबन्द, एक चादर और जूती (चप्पल) के सिवा कुछ नहीं होता। इसका मतलब यह है कि अब तक जो कुछ तुम थे, सो थे, मगर अब जो तुम्हें ख़ुदा के दरबार में जाना है तो फ़क़ीर बनकर चलो। ज़ाहिर में भी फ़क़ीर बनो और दिल के भी फ़क़ीर बनने की कोशिश करो। रंगीन कपड़े और साज-सज्जा के लिबास उतार दो। सादा और दुर्वेशाना ढंग के लिबास पहन लो। मोज़े न पहनो, सिर खुला रखो, ख़ुशबू न लगाओ, बाल न बनाओ, हर क़िस्म की सजावट से परहेज़ करो। शौहर-बीवी का ताल्लुक़ बन्द कर दो, बल्कि ऐसी हरकतों और बातों से भी परहेज़ करो जो इस चाह को बढ़ानेवाली या इसकी याद दिलानेवाली हों। शिकार न करो, बल्कि शिकारी को शिकार का निशाना देने या उसका पता बताने से भी पहलू बचाओ। ज़ाहिर में जब यह रंग अपनाओगे तो बातिन पर भी इसका असर पड़ेगा। अन्दर से तुम्हारा दिल भी फ़क़ीर बनेगा, किब्र व ग़ुरूर निकलेगा, मिसकीनी और अमन-पसंदी पैदा होगी। दुनिया और उसकी लज़्ज़तों में फँसने से जो कुछ गन्दगियाँ तुम्हारी रूह को लग गई थीं, वे साफ़ होंगी और ख़ुदापरस्ती की कैफ़ियत तुम्हारे ऊपर भी छाती जाएगी और अन्दर भी।

तलबिया

इहराम बाँधने के साथ जो कलिमें हाजी की ज़बान से निकलते हैं, जिनको वह हर नमाज़ के बाद और हर ऊँचाई पर चढ़ते वक़्त, और हर निचाई

की तरफ़ उतरते वक़्त, और हर क़ाफ़िले से मिलते वक़्त और हर रोज़ सुबह जागकर ऊँची आवाज़ से पुकारता है, वे ये हैं—

لَبَّيْكَ اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لَبَّيْكَ لاَشَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ إِنَّ الْحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ لَكَ وَالْمُلْكَ لاَشَرِيْكَ لَكَ.

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बैक ला शरी-क ल-क, लब्बैक, इन्नल हम-द वन्नेअ़-म-त ल-क वल मुल्-क, ला शरी-क ल-क।

हाज़िर हूँ मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ। बेशक तारीफ़ सब तेरे ही लिए है। नेमत सब तेरी ही है। सारी बादशाही तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।

यह दरअसल हज की उस आम आवाज़ का जवाब है जो साढ़े चार हज़ार साल से पहले हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अल्लाह के हुक्म से बुलन्द की थी। पैंतालीस सदियाँ गुज़र चुकी हैं जब पहले-पहल अल्लाह के उस मुनादी ने पुकारा था—

"अल्लाह के बन्दो! अल्लाह के घर की तरफ़ आओ, ज़मीन के कोने-कोने से आओ, चाहे पैदल चलकर आओ, चाहे सवारियों पर आओ।"

जवाब में आज तक हरम[1] का हर मुसाफ़िर ऊँची आवाज़ से कह रहा है—

"मैं हाज़िर हूँ, मेरे अल्लाह मैं हाज़िर हूँ। तेरा कोई शरीक नहीं, मैं सिर्फ़ तेरे बुलावे पर हाज़िर हूँ। तारीफ़ तेरे लिए है, नेमत तेरी है, मुल्क तेरा है, किसी चीज़ में तेरा कोई शरीक नहीं।"

इस तरह 'लब्बैक' की हर आवाज़ के साथ हाजी का ताल्लुक़ सच्ची और ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की उस तहरीक से जुड़ जाता है जो हज़रत इबराहीम व इसमाईल (अलै०) के वक़्त से चली आ रही है। साढ़े चार हज़ार साल का फ़ासला बीच में से हट जाता है। ऐसा मालूम होने लगता है कि मानो

---

1. ख़ाना-काबा

उधर अल्लाह की तरफ़ से हज़रत इबराहीम (अलै०) पुकार रहे हैं और इधर से यह जवाब दे रहा है। जवाब देता जाता है और बढ़ता जाता है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, शौक़ की कैफ़ियत और ज़्यादा तेज़ होती जाती है। हर चढ़ाव और हर उतार पर उसके कानों में अल्लाह के मुनादी की आवाज़ गूँजती है और यह उसपर लब्बैक कहता हुआ आगे चलता है। हर क़ाफ़िला उसे वहीं का पैग़ाम देनेवाला मालूम होता है और एक आशिक़ की तरह यह उसका पैग़ाम सुनकर पुकारता है: "मैं हाज़िर, मैं हाज़िर!" हर नई सुबह उसके लिए मानो 'दोस्त का पैग़ाम' लाती है और नूर के तड़के में आँख खोलते ही यह "लब्बैक अल्लाहुम्-म लब्बैक" की सदा लगाने लगता है। ग़रज़ यह बार-बार की सदा इहराम के उस फ़क़ीराना लिबास, सफ़र की उस हालत और मंज़िल ब मंज़िल करके काबा से ज़्यादा क़रीब होते जाने की उस कैफ़ियत के साथ मिलकर कुछ ऐसा समाँ बाँध देती है कि हाजी ख़ुदा के इश्क़ में बेक़रार हो जाता है और उसके दिल की यह हालत होती है कि बस दोस्त की एक याद के सिवा "आग इस घर में लगी ऐसी कि जो था जल गया।"

तवाफ़े ज़ियारत

इस शान से हाजी मक्का पहुँचता है और जाते ही सीधा उस आस्ताने की तरफ़ मुड़ जाता है ज़िसकी तरफ़ बुलाया गया था। दोस्त के आस्ताने को चूमता है, फिर अपने अक़ीदे, अपने ईमान और अपने दीन व मज़हब के उस मरकज़ के गिर्द चक्कर लगाता है और हर चक्कर आस्ताना चूमने से शुरू और आस्ताना चूमने ही पर ख़त्म करता जाता है।[1] इसके बाद मक़ामे इबराहीम पर दो रकूअतें सलामी की पढ़ता है। फिर वहाँ से निकलकर

---

1. हजरे असवद (काला पत्थर) के बोसा लेने पर नादान लोग अकसर एतराज़ करते हैं। वे कहते हैं कि यह भी तो एक तरह की बुतपरस्ती है, हालाँकि दरअसल यह आस्ताना बोसी के सिवा कुछ नहीं है। काबा का तवाफ़ हजरे असवद के सामने से शुरू किया जाता है और सात तवाफ़ के बीच में हर तवाफ़ के ख़ात्मे पर हजरे असवद को बोसा दिया जाता है या उसकी तरफ़ इशारा कर दिया जाता है। इसमें ज़र्रा बराबर भी अंश उस हजरे असवद की पूजा का नहीं पाया जाता। हज़रत उमर (रज़ि०) का यह क़ौल मशहूर है कि उन्होंने हजरे असवद को ख़िताब करके फ़रमाया था कि "मैं जानता हूँ कि तू सिर्फ़ एक पत्थर है। अगर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने तुझे न चूमा होता, तो मैं हरगिज़ तुझे न चूमता।"

सफ़ा पहाड़ पर चढ़ता है और वहाँ से जब काबा पर नज़र पड़ती है तो पुकार उठता है!

لاَ إِلٰـهَ إِلاَّ اللّٰهُ وَلاَ نَعْبُدُ إِلاَّ إِيَّاهُ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ وَلَوْ كَرِهَ الْكٰفِرُوْنَ.

कोई माबूद नहीं अल्लाह के सिवा, किसी दूसरे की हम बंदगी नहीं करते, हमारी इताअत सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए ख़ास है, चाहे कुफ्र करनेवालों को कितना ही नापसंद हो।

सफ़ा व मर्वा के बीच दौड़

फिर वह सफ़ा व मर्वा के बीच दौड़ता है, गोया अपनी हालत से इस बात का सबूत दे रहा है कि यूँ ही अपने मालिक की ख़िदमत में और यूँ ही उसकी ख़ुशनूदी की तलब में हमेशा सई करता रहेगा। इस सई के बीच में कभी उसकी ज़बान से निकलता है—

اَللّٰهُمَّ اسْتَعْمِلْنِىْ بِسُنَّةِ نَبِيِّكَ وَتَوَفَّنِىْ عَلٰى مِلَّتِهٖ وَاَعِذْنِىْ مِنْ مُضِلاَّتِ الْفِتَنِ.

ख़ुदाया! मुझसे काम ले उसी तरीक़े पर जो तेरे नबी का तरीक़ा है, और मुझे मौत दे उसी रास्ते पर जो तेरे नबी का रास्ता है और ज़िन्दगी में मुझे बचा उन फ़ितनों से जो सीधे रास्ते से भटकानेवाले हैं।

और कभी कहता है—

رَبِّ اغْفِرْ وَارْحَمْ وَتَجَاوَزْ عَمَّا تَعْلَمْ إِنَّكَ اَنْتَ الْاَعَزُّ وَالْاَكْرَمُ○

परवरदिगार! माफ़ कर और रहम कर, मेरे जिन क़सूरों को तू जानता है, उनसे दरगुज़र कर! तेरी ताक़त सबसे बढ़कर है और तेरा करम भी सबसे बढ़कर है।

वुक़ूफ़े मिना, अरफ़ात और मुज़दल्फ़ा

इसके बाद वह मानो अल्लाह का सिपाही बन जाता है और अब पाँच-छ:

रोज़ उसको कैम्प की-सी ज़िन्दगी बसर करनी होती है। एक दिन मिना में पड़ाव है, दूसरे दिन अरफ़ात में कैम्प है और ख़ुतबे में कमाण्डर की हिदायतें सुनी जा रही हैं। रात मुज़दल्फ़ा में जाकर छावनी डाली जाती है।

रमी जिमार

दिन निकलता है तो मिना की तरफ़ कूच होता है और वहाँ उस सुतून पर कंकरियों से चाँदमारी की जाती है, जहाँ तक असहाबे फ़ील (हाथीवालों की फ़ौजें) काबा को ढहाने के लिए पहुँच गई थीं। हर कंकरी मारने के साथ अल्लाह का सिपाही कहता जाता है :

اَللّٰهُ اَكْبَرُ رَغْمًا لِّلشَّيْطٰنِ وَ حِزْبِهٖ.

अल्लाहु अकबर रग़मल्लिशैतानि व हिज़बिही, और

اَللّٰهُمَّ تَصْدِيْقًا بِكِتٰبِكَ وَاتِّبَاعًا لِّسُنَّةِ نَبِيِّكَ.

अल्लाहुम-म तस्दीक़म बिकिताबि-क व इत्तिबाअल लि सुन्नति नबिय्यिक।

कंकरियों की इस चाँदमारी का मतलब यह है कि ख़ुदाया जो तेरे दीन को मिटाने और तेरा बोल नीचा करने उठेगा, मैं उसके मुक़ाबले में तेरा बोल-बोला करने के लिए यूँ लडूँगा। फिर उसी जगह क़ुरबानी की जाती है, ताकि ख़ुदा की राह में ख़ून बहाने की नीयत और इरादे का इज़हार अमल से हो जाए। फिर सिर मुंडवाया जाता है या बाल कटवाए जाते हैं, फिर वहाँ से काबे का रुख़ किया जाता है, जैसे सिपाही अपनी ड्यूटी पूरी करके हेडक्वार्टर की तरफ़ कामयाब वापस आ रहा है। अब इहराम खुल जाता है। जो कुछ हराम किया गया था वह अब फिर हलाल हो जाता है और अब हाजी की ज़िन्दगी फिर मामूली तौर पर शुरू हो जाती है। इस मामूली ज़िन्दगी की तरफ़ पलटने के बाद हाजी मिना में जाकर फिर कैम्प करता है और दूसरे दिन पत्थर के उन तीनों सुतूनों पर बारी-बारी कंकरियों से फिर चाँदमारी करता है, जिनको जमरात कहते हैं और जो दरअसल उस हाथीवाली फ़ौज की पसपाई और तबाही की यादगार हैं, जो अल्लाह

के रसूल (सल्ल०) की पैदाइश के साल ठीक हज के मौक़े पर अल्लाह के इस घर को ढहाने आई थी और जिसे अल्लाह के हुक्म से आसमानी चिड़ियों ने कंकरियाँ मार-मारकर तबाह कर दिया था।[1] तीसरे दिन फिर इन सुतूनों पर पत्थर बरसाने के बाद हाजी मक्का पलटता है और सात बार अपने दीन के मरकज़ का तवाफ़ करता है। यह विदाई होने का तवाफ़ है, इससे फ़ारिग़ होने के माने हज से फ़ारिग़ हो जाने के हैं।

हज की बरकतें व असरात

यह सारी तफ़सील जो आपने सुनी, इससे आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि हज के इरादे और उसकी तैयारी से लेकर अपने घर वापस आने तक, दो-तीन महीने की मुद्दत में, कितने ज़बरदस्त असरात आदमी के दिल और दिमाग़ पर पड़ते हैं। इसमें वक़्त की क़ुरबानी है, माल की क़ुरबानी है, आराम व आसाइश की क़ुरबानी है, बहुत-से दुनियवी ताल्लुक़ात की क़ुरबानी है, बहुत-सी नफ़्सानी ख़्वाहिशों और लज़्ज़तों की क़ुरबानी हैं और यह सब कुछ अल्लाह की ख़ातिर है, कोई अपनी ग़रज़ इसमें शामिल नहीं। फिर इस सफ़र में परहेज़गारी व तक़वा के साथ लगातार ख़ुदा की याद और ख़ुदा की तरफ़ शौक़ व इश्क़ की जो कैफ़ियत आदमी पर गुज़रती है, वह अपना एक मुस्तक़िल नक़्श दिल पर छोड़ जाती है, जिसका असर सालों क़ायम रहता है। फिर हरम की सरज़मीन में पहुँचकर क़दम-क़दम पर इनसान उन लोगों की निशानियों को देखता है जिन्होंने अल्लाह की बन्दगी व इताअत में अपना सब कुछ क़ुरबान किया, दुनियाभर से लड़े, मुसीबतें उठाईं, मुल्क से निकाले गए, ज़ुल्म पर ज़ुल्म सहे, मगर आख़िरकार अल्लाह का कलिमा बुलन्द करके छोड़ा और हर उस झूठी ताक़त का सिर नीचा करके ही दम लिया जो आदमी से अल्लाह के सिवा किसी और की बन्दगी कराना चाहती थी। इन ज़ाहिर और बरकतवाली निशानियों

---

1. आम तौर पर यह मशहूर है कि कंकरियाँ मारने का यह काम उस घटना की यादगार है जो हज़रत इबराहीम (अलै०) को पेश आई थी, यानी हज़रत इसमाईल (अलै०) की क़ुरबानी देते वक़्त शैतान ने आकर आपको बहकाया था और आपने उसे कंकरियाँ मारी थीं, या जब हज़रत इसमाईल (अलै०) के फ़िदया में मेंढ़ा आपको क़ुरबानी के लिए दिया गया तो वह निकलकर भागा था और उसको आपने कंकरियाँ मारी थीं। लेकिन किसी सही हदीस में नबी (सल्ल०) से यह रिवायत नहीं है कि रमिए जिमार (पत्थर मारने) की वजह यह है।

को देखकर एक ख़ुदापरस्त आदमी हिम्मत व इरादा और अल्लाह की राह में जिहाद का जो सबक़ ले सकता है, शायद किसी दूसरी चीज़ से नहीं ले सकता। फिर काबा के तवाफ़ से उस दीन के मरकज़ से जो वाबिस्तगी होती है और मनासिके हज के बीच दौड़-धूप, कूच और क़याम से मुजाहिदाना ज़िन्दगी की जो मश्क़ कराई जाती है, उसे अगर आप नमाज़ और रोज़ा और ज़कात के साथ मिलाकर देखें तो आपको मालूम होगा कि ये सारी चीज़ें किसी बहुत बड़े काम की ट्रेनिंग हैं जो इस्लाम मुसलमानों से लेना चाहता है। इसी लिए हर उस मुसलमान पर जो काबा तक जाने-आने की क़ुदरत रखता हो, हज ज़रूरी कर दिया गया है, ताकि जहाँ तक मुमकिन हो, हर ज़माने में ज़्यादा-से-ज़्यादा मुसलमान ऐसे मौजूद रहें जो इस पूरी ट्रेनिंग से गुज़र चुके हों।

हज एक इजतिमाई इबादत

लेकिन हज के फ़ायदों का पूरा अन्दाज़ा आप उस वक़्त तक नहीं कर सकते, जब तक यह बात आपके सामने न हो कि एक-एक मुसलमान अकेला-अकेला हज नहीं करता, बल्कि तमाम दुनिया के मुसलमानों के लिए हज का एक ही ज़माना रखा गया है और हज़ारों-लाखों मुसलमान मिलकर एक वक़्त में हज अदा करते हैं। पहले जो कुछ मैंने बयान किया है उससे तो आपके सामने सिर्फ़ इतनी बात आई है कि अलग-अलग, एक-एक हाजी पर इस इबादत का क्या असर होता है। अब मैं अगले ख़ुतबे में आपको यह बताऊँगा कि सारी दुनिया के मुसलमानों के लिए हज का एक ही वक़्त मुक़र्रर करके इन फ़ायदों को किस तरह लाखों दरजे बढ़ा दिया गया है। इस्लाम का कमाल यही है कि एक पंथ दो काज नहीं, बल्कि हज़ार काज निकाल ले जाता है। नमाज़ अलग पढ़ने में ही कुछ कम फ़ायदे न थे, मगर उसके साथ जमाअत की शर्त लगाकर, और इमामत का क़ायदा मुक़र्रर करके और जुमा व दोनों ईदों की बड़ी जमाअतें बनाकर उसके फ़ायदों को बेहदो हिसाब बढ़ा दिया गया है। रोज़ा अलग-अलग रखना भी इसलाह व तरबियत का बहुत बड़ा ज़रिया था, लेकिन सब मुसलमानों के लिए रमज़ान का एक ही महीना मुक़र्रर करके उसके फ़ायदे इतने बढ़ा दिए गए कि गिना नहीं जा सकता। ज़कात अलग-अलग देने में भी बहुत

ख़ूबियाँ थीं, मगर उसके लिए बैतुलमाल का निज़ाम मुक़र्रर करके उसके फ़ायदों को इतना ज़्यादा बढ़ा दिया गया कि आप उसका अन्दाज़ा उस वक़्त तक कर ही नहीं सकते, जब तक कि इस्लामी हुकूमत क़ायम न हो, और आप अपनी आँखों से देख न लें कि तमाम मुसलमानों की ज़कात एक जगह जमा करके एक इंतिज़ाम के साथ उसके हक़दारों में तक़सीम करने से कितनी ख़ैर व बरकत होती है। यही मामला हज का भी है। अकेला-अकेला आदमी हज करे तब भी उसकी ज़िन्दगी में बहुत बड़ा इंक़िलाब हो सकता है, मगर तमाम दुनिया के मुसलमानों के लिए एक ही वक़्त में मिलकर हज करने का क़ायदा मुक़र्रर करके तो उसके फ़ायदों की कोई हद बाक़ी ही नहीं रखी गई। यह मज़मून ज़रा तफ़सील (विस्तार) चाहता है इसलिए, अगर अल्लाह ने चाहा, तो अगले ख़ुतबे में इसको तफ़सील के साथ बयान करूँगा।

हज का आलमगीर इजतिमा

हज के फ़ायदे

इस्लामी दुनिया में हरकत

मुसलमान भाइयो! आप जानते हैं कि ऐसे मुसलमान जिनपर हज फ़र्ज़ है, यानी जो काबा तक आने-जाने की क़ुदरत रखते हैं, एक-दो तो होते नहीं हैं। हर बस्ती में उनकी अच्छी ख़ासी तादाद होती है। हर शहर में हज़ारों और हर मुल्क में लाखों ही होते हैं और हर साल उनमें से बहुत-से लोग हज का इरादा करके निकलते हैं। अब ज़रा सोचिए कि दुनिया के कोने-कोने में जहाँ-जहाँ भी मुसलमान बसते हैं, हज का मौसम आने के साथ ही किस तरह इस्लाम की ज़िन्दगी जाग उठती है, कैसी कुछ हरकत पैदा होती है और कितनी देर तक रहती है। तक़रीबन रमज़ान के महीने से लेकर ज़ीक़ादा तक दुनिया के सभी हिस्सों से अनेकों लोग हज़ की तैयारियाँ करके निकलते हैं और उधर ज़िलहिज्जा के आख़िर से सफ़र, रबीउल अव्वल, बल्कि रबीउस्सानी तक वापस होनेवालों का सिलसिला चलता रहता है। इस 6-7 महीने की मुद्दत तक मानो लगातार इस ज़मीन की तमाम मुसलमान आबादियों में एक तरह की दीनी हरकत जारी रहती है। जो लोग हज को जाते और हज से वापस आते हैं वे तो दीनी कैफ़ियत से सरशार होते ही हैं मगर जो नहीं जाते, उनको भी हाजियों को विदा करने और एक-एक बस्ती से उनके गुज़रने और फिर वापसी में उनका स्वागत करने और उनसे हज के हालात सुनने की वजह से थोड़ा या बहुत इस कैफ़ियत का कुछ न कुछ हिस्सा मिल ही जाता है।

परहेज़गारी और तक़वा में बढ़ोतरी

जब एक-एक हाजी हज की नीयत करता है और उस नीयत के साथ ही उस पर ख़ुदा का ख़ौफ़ और परहेज़गारी और तौबा व इसतिग़फ़ार और नेक अख़लाक़ों के असरात छाने शुरू होते हैं, और वह अपने अज़ीज़ों,

दोस्तों, मामलादारों और हर क़िस्म के ताल्लुक़ रखनेवालों से इस तरह रुख़्सत होता है और अपने मामले साफ़ करना शुरू करता है कि मानो अब वह पहले जैसा आदमी नहीं है, बल्कि ख़ुदा की तरफ़ लौ लग जाने की वजह से उसका दिल पाक-साफ़ हो रहा है, तो अन्दाज़ा कीजिए कि एक हाजी की इस हालत का कितने-कितने लोगों पर असर पड़ता होगा और अगर हर साल दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में एक लाख आदमी भी औसतन इस तरह हज के लिए तैयार होते हों तो उनकी तासीर कितने लाख आदमियों के अख़लाक़ तक पहुँचती होगी? फिर हाजियों के क़ाफ़िले जहाँ-जहाँ से गुज़रते होंगे, वहाँ उनको देखकर, उनसे मिलकर, उनकी 'लब्बैक-लब्बैक' की आवाज़ें सुनकर कितनों के दिल गरमा जाते होंगे, कितनों की तवज्जोह अल्लाह की तरफ़ और अल्लाह के घर की तरफ़ फिर जाती होगी और कितनों की सोई हुई रूह में हज के शौक़ से हरकत पैदा हो जाती होगी। फिर जब ये लोग अपने मरकज़ से फिरकर अपनी-अपनी बसतियों की तरफ़ दुनिया के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में हज की कैफ़ियतों का ख़ुमार लिए हुए पलटते होंगे और लोग उनसे मुलाक़ात करते होंगे तो उनके हाल व क़ाल ज़बान से अल्लाह के घर का ज़िक्र सुनकर कितने बेशुमार हलक़ों में दीनी जज़बात ताज़ा हो जाते होंगे।

इस्लामी दुनिया की बेदारी का मौसम

इसलिए अगर मैं यह कहूँ तो बेजा न होगा कि जिस तरह रमज़ान का महीना तमाम इस्लामी दुनिया में तक़वा का मौसम है, उसी तरह हज का ज़माना तमाम दुनिया में इस्लाम की ज़िन्दगी और बेदारी का ज़माना है। इस तरीक़े से शरीअत बनानेवाले हकीम व दाना ने ऐसा बेमिसाल इंतिज़ाम कर दिया है कि अगर अल्लाह ने चाहा तो क़ियामत तक इस्लाम की यह आलमगीर तहरीक मिट नहीं सकती। दुनिया के हालात चाहे कितने ही बिगड़ जाएँ और ज़माना कितना ही ख़राब हो जाए, मगर यह काबे का मरकज़ इस्लामी दुनिया के जिस्म में कुछ इस तरह रख दिया गया है, जैसे आदमी के जिस्म में दिल होता है। जब तक दिल हरकत करता रहे, आदमी मर नहीं सकता, चाहे बीमारियों की वजह से हिलने तक की ताक़त न रखता हो। बिलकुल इसी तरह दुनिया का यह दिल भी हर साल उसकी

दूर-दूर की रगों तक से ख़ून खींचता रहता है और फिर उसको रग-रग तक फैला देता है। जब तक इस दिल की यह हरकत जारी है और जब तक ख़ून के खींचने और फैलने का यह सिलसिला चल रहा है उस वक़्त तक यह बिलकुल नामुमकिन है कि इस जिस्म की ज़िन्दगी ख़त्म हो जाए, भले ही बीमारियों से यह कितना ही कमज़ोर हो गया हो।

मिल्लत की एकता का शानदार नज़ारा

ज़रा आँखें बँद करके अपने दिल में उस नक़्शे का तसव्वुर तो कीजिए कि इधर पूरब से, उधर पश्चिम से, इधर उत्तर से, उधर दक्षिण से अनगिनत क़ौमों और मुल्कों के लोग हज़ारों रास्तों से एक ही मरकज़ की तरफ़ चले आ रहे हैं। शक्लें और सूरतें अलग-अलग हैं, रंग अलग, ज़बानें अलग, लिबास अलग मगर मरकज़ के क़रीब एक ख़ास हद तक पहुँचते ही सब अपने-अपने क़ौमी लिबास उतार देते हैं और सारे के सारे एक ही तरह का सादा यूनीफ़ार्म पहन लेते हैं। इहराम का यह यूनीफ़ार्म पहनने के बाद एलानिया यह मालूम होने लगता है कि दुनिया और ज़मीन व आसमान के बादशाह की यह फ़ौज, जो दुनिया की हज़ारों क़ौमों से भर्ती होकर आ रही है, एक ही बादशाह की फ़ौज है, एक ही इताअत व बन्दगी का निशान उन सबपर लगा हुआ है, एक ही वफ़ादारी के रिश्ते में ये सब बँधे हुए हैं और एक ही राजधानी की तरफ़ अपने बादशाह के सामने पेश होने के लिए जा रहे हैं। ये यूनीफ़ार्म पहने हुए सिपाही जब मीक़ात[1] से आगे बढ़ते हैं तो उन सबकी ज़बानों से वही एक नारा बुलंद होता है—

لَبَّيْكَ، اَللّٰهُمَّ لَبَّيْكَ لاَ شَرِيْكَ لَكَ لَبَّيْكَ.

लब्बैक, अल्लाहुम-म लब्बैक ला शरी-क ल-क लब्बैक।

बोलने की ज़बानें सबकी मुख़्तलिफ़ हैं, मगर नारा सबका एक ही है। फिर ज्यों-ज्यों मरकज़ क़रीब आता जाता है, दायरा सिमटकर छोटा होता चला जाता है। मुख़्तलिफ़ मुल्कों के क़ाफ़िले मिलते चले जाते हैं और सबके सब मिलकर नमाज़ें एक ही ढंग पर पढ़ते हैं। सबका एक यूनीफ़ार्म,

1. वह जगह जहाँ से हज की नीयत से मक्का जानेवाले हज का इहराम बाँधते हैं।

सबका एक इमाम, सबकी एक ही हरकत, सबकी एक ही ज़बान, सब एक 'अल्लाहु अकबर' के ही इशारे पर उठते और बैठते हैं और रुकू और सिजदा करते हैं और सब उसी एक अरबी क़ुरआन को पढ़ते और सुनते हैं। यूँ ज़बानों और क़ौमियतों और वतनों और नस्लों का फ़र्क़ ख़त्म होता है और इस तरह ख़ुदापरस्तों की एक आलमगीर जमाअत बनती है, फिर जब ये क़ाफ़िले एक ज़बान होकर 'लब्बैक-लब्बैक' के नारे बुलन्द करते हुए चलते हैं, जब हर बुलंदी और हर पस्ती पर यही नारे लगते हैं, जब क़ाफ़िलों के एक-दूसरे से मिलने के वक़्त दोनों तरफ़ से यही आवाज़ें उठती हैं, जब नमाज़ों के वक़्त और सुबह के तड़के में यही आवाज़ें गूँजती हैं तो एक अजीब माहौल पैदा हो जाता है जिसके नशे में आदमी चूर होकर अपनी ख़ुदी को भूल जाता है और इस लब्बैक की कैफ़ियत में डूबकर रह जाता है। फिर काबा पहुँचकर तमाम दुनिया से आए हुए आदमियों का एक लिबास में एक मरकज़ के चारों तरफ़ घूमना, फिर सबका एक साथ सफ़ा और मरवा के बीच सई करना, फिर सबका मिना में कैम्प लगाना, फिर सबका अरफ़ात की तरफ़ कूच करना और वहाँ एक इमाम से ख़ुतबा सुनना, फिर सबका मुज़दल्फ़ा में रात को छावनी डालना, फिर सबका एक साथ मिना की तरफ़ पलटना, फिर सबका मिलकर जमरए उक़्बा पर कंकरियों की चाँदमारी करना, फिर सबका क़ुरबानियाँ करना, फिर सबका एक साथ काबे की तरफ़ पलटकर तवाफ़ करना, फिर सबका एक ही मरकज़ के गिर्द नमाज़ पढ़ना— यह अपने अन्दर वह कैफ़ियत रखता है जिसकी मिसाल दुनिया में मिलनी मुशकिल है।

एक मक़सद, एक मरकज़ पर इजतिमा

दुनियाभर की क़ौमों से निकले हुए लोगों का एक मरकज़ पर जमा होना और वह भी ऐसी यकदिली व यकजहती के साथ, ऐसी हमख़याली व हमआहंगी के साथ, ऐसे पाक जज़बों, पाक मक़सदों और पाक कामों के साथ, हक़ीक़त में इतनी बड़ी नेमत है जो आदम की औलाद को इस्लाम के सिवा किसी ने नहीं दी। दुनिया की क़ौमें हमेशा एक-दूसरे से मिलती रही हैं, मगर किस तरह? जंग के मैदान में गला काटने के लिए या सुलह कांफ्रेन्सों में मुल्कों की तक़सीम और क़ौमों के बँटवारे के लिए या यू०एन०ओ०

की मजलिस में ताकि हर क़ौम एक-दूसरी क़ौम के ख़िलाफ़ धोखे, फ़रेब, साज़िश और बेईमानियों के जाल फैलाए और दूसरों के नुक़सान से अपना फ़ायदा करने की कोशिश करे। तमाम क़ौमों के आम लोगों का साफ़दिली के साथ मिलना, नेक अख़लाक़ और पाक ख़यालात के साथ मिलना, मुहब्बत और ख़ुलूस के साथ मिलना, दिली व रूहानी मिलाप के साथ मिलना, ख़यालात, आमाल और मक़ासिद की यकजेहती के साथ मिलना और सिर्फ़ एक ही बार मिलकर न रह जाना, बल्कि हमेशा-हमेशा के लिए हर साल एक मरकज़ पर इसी तरह इकट्ठे होते रहना, क्या यह नेमत इस्लाम के सिवा इनसानों को और कहीं मिलती है? दुनिया में अम्न क़ायम करने, क़ौमों की दुश्मनियों को मिटाने और लड़ाई-झगड़ों के बजाए मुहब्बत, दोस्ती और बिरादरी की फ़िज़ा पैदा करने के लिए इससे बेहतर नुस्ख़ा किसने तजवीज़ किया है?

अम्न के क़ियाम की सबसे बड़ी तहरीक

इस्लाम सिर्फ़ इतना ही नहीं करता, इससे बढ़कर यहाँ और बहुत कुछ है। उसने लाज़िम किया है कि साल के चार महीने जो हज और उमरा के लिए मुक़र्रर किए गए हैं, उनमें कोशिश की जाए कि काबा की तरफ़ आनेवाले तमाम रास्तों में अम्न क़ायम रहे। यह दुनिया में अम्न क़ायम रखने की सबसे बड़ी तहरीक है, जो हमेशा-हमेशा रहनेवाली है। और अगर दुनिया की सियासत की बागडोर इस्लाम के हाथों में हो तो कम से कम साल का एक तिहाई हिस्सा तो हमेशा-हमेशा के लिए जंग और ग़ारतगरी से ख़ाली रह सकता है।

दुनिया में वाहिद अम्न का मरकज़

उसने दुनिया को एक ऐसा हरम दिया है जो क़ियामत तक के लिए अम्न का शहर है, जिसमें आदमी तो क्या जानवर तक का शिकार नहीं किया जा सकता, जिसमें घास तक काटने की इजाज़त नहीं, जिसकी ज़मीन का काँटा तक नहीं तोड़ा जा सकता, जिसमें हुक्म है कि किसी की कोई चीज़ गिरी पड़ी हो तो उसे हाथ तक न लगाओ।

उसने दुनिया को एक ऐसा शहर दिया है जिसमें हथियार लाने के लिए मना किया गया है, जिसमें ग़ल्ले और दूसरी आम ज़रूरत की चीज़ों को रोककर महँगा करना 'इलहाद' (ख़ुदा के इनकार) की हद तक पहुँच जाता है, जिसमें ज़ुल्म करनेवाले को अल्लाह ने धमकी दी है कि—

نُذِقْهُ مِنْ عَذَابٍ اَلِيْمٍ.

"हम उसे दर्दनाक सज़ा देंगे।"

हक़ीक़ी बराबरी का मरकज़

उसने दुनिया को एक ऐसा मरकज़ दिया है जिसकी तारीफ़ यह है कि—

سَوَآءً الْعَاكِفُ فِيْهِ وَالْبَادِ.

यानी वहाँ तमाम उन इनसानों के हक़ बिलकुल बराबर हैं जो ख़ुदा की बादशाही और मुहम्मद (सल्ल०) की रहनुमाई तसलीम करके इस्लाम की बिरादरी में दाख़िल हो जाएँ। चाहे कोई इनसान अमेरिका का रहनेवाला हो या अफ़्रीक़ा का, चीन का हो या हिन्दुस्तान का, अगर वह मुसलमान हो जाए तो मक्का की ज़मीन पर उसके वही हक़ हैं जो ख़ुद मक्कावालों के हैं। पूरे हरम के इलाक़े की हैसियत मानो एक मसजिद की-सी है कि जो आदमी मसजिद में जाकर किसी जगह अपना डेरा जमा दे वह जगह उसी की है। कोई उसको वहाँ से उठा नहीं सकता, न उससे किराया माँग सकता है। मगर वह उस जगह चाहे सारी उम्र बैठा रहा हो, उसे यह कहने का हक़ नहीं है कि यह जगह मेरी मिलकियत है। न वह उसको बेच सकता है, न उसका किराया वुसूल कर सकता है, यहाँ तक कि जब वह शख़्स वहाँ से उठ जाए तो दूसरे को भी वहाँ डेरा जमाने का वैसा ही हक़ है, जैसा उसको था। बिलकुल यही हाल पूरे मक्का के हरम का है।

नबी (सल्ल०) का इरशाद है—

مَكَّةُ مُنَاخٌ لِّمَنْ سَبَقَ.

"जो आदमी इस शहर में किसी जगह आकर पहले उतर जाए, वह जगह उसी की है।"

वहाँ के मकानों का किराया लेना जाएज़ नहीं है। हज़रत उमर (रज़ि०) ने वहाँ के लोगों को हुक्म दे दिया था कि अपने मकानों के गिर्द आँगनों पर दरवाज़े न लगाओ, ताकि जो चाहे तुम्हारे आँगन में आकर ठहर सके। कुछ फ़ुक़हा ने तो यहाँ तक कहा कि शहर मक्का के मकानों पर न किसी की मिलकियत है और न वे विरासत में दिए जा सकते हैं।

क्या इस्लाम के सिवा आदमी को ये नेमतें कहीं और भी मिल सकती हैं?

भाइयो! यह है वह हज, जिसके बारे में फ़रमाया गया था कि इसे करके देखो, इसमें तुम्हारे लिए कितने फ़ायदे हैं। मेरी ज़बान में इतनी ताक़त नहीं कि इसके सारे फ़ायदे गिना सकूँ, फिर भी इसके फ़ायदों का यह ज़रा-सा ख़ाका जो मैंने आपके सामने पेश किया है, इसी से आप समझ सकते हैं कि यह क्या चीज़ है?

हमारी नाक़द्री

मगर यह सब सुनने के बाद ज़रा मेरे जले दिल की कुछ बातें भी सुन लीजिए! आप नस्ली मुसलमानों का हाल उस बच्चे का-सा है जो हीरे की खान में पैदा हुआ हो। ऐसा बच्चा जब हर तरफ़ हीरे ही हीरे देखता है और पत्थरों की तरह हीरों से खेलता है तो हीरे उसकी निगाह में ऐसे ही बेक़द्र हो जाते हैं जैसे पत्थर। यही हाल आपका भी है कि दुनिया जिन नेमतों से महरूम है और इस महरूमी की वजह से जो सख़्त मुसीबतें और तकलीफ़ें उठा रही है और जिनकी तलाश में हद से ज़्यादा परेशान है, वे नेमतें आपको मुफ़्त में बग़ैर किसी तलाश व जुस्तजू के सिर्फ़ इस वजह से मिल गईं कि ख़ुशक़िस्मती से आप मुसलमान घरों में पैदा हुए हैं। तौहीद का वह कलिमा—जो आदमी की ज़िन्दगी के तमाम उलझे हुए मसलों को सुलझाकर एक साफ़-सीधा रास्ता बना देता है—बचपन से आपके कानों में पड़ा। नमाज़ और रोज़े के वे कीमिया से ज़्यादा क़ीमती नुस्ख़े जो आदमी को जानवर से इनसान बना देते हैं और इनसानों को ख़ुदातरस और एक-दूसरे का भाई, हमदर्द और दोस्त बनाने के लिए जिनसे अच्छे नुस्ख़े आज तक मालूम नहीं हो सके हैं, आपको आँख खोलते ही ख़ुद-ब-ख़ुद बाप-दादा

की मीरास में मिल गए। ज़कात की वह बेमिसाल तरकीब जिससे सिर्फ़ दिलों ही की नापाकी दूर नहीं होती, बल्कि दुनिया के मालियात का निज़ाम भी दुरुस्त हो जाता है, जिससे महरूम होकर आप ख़ुद अपनी आँखों से देख रहे हैं कि दुनिया के लोग एक-दूसरे का मुँह नोचने लगे हैं, आपको वह इस तरह मिल गई जैसे किसी होशियार हकीम के बच्चे को बिना मेहनत के वे नुस्ख़े मिल जाते हैं जिन्हें दूसरे लोग ढूँढ़ते फिरते हैं। इसी तरह हज का वह अज़ीमुश्शान तरीक़ा भी जिसका आज दुनिया में कहीं जवाब नहीं है, जिससे ज़्यादा ताक़तवर ज़रिया किसी तहरीक को चारों तरफ़ दुनिया में फैलाने और हमेशा ज़िन्दा रखने के लिए आज तक मालूम नहीं हो सका है, जिसके सिवा आज दुनिया में कोई आलमगीर ताक़त ऐसी मौजूद नहीं है कि आदम की सारी औलाद को ज़मीन के कोने-कोने से खींचकर एक ख़ुदा के नाम पर एक मरकज़ पर जमा कर दे और अनगिनत नस्लों और क़ौमों को एक ख़ुदापरस्त, नेकनीयत, ख़ैरख़्वाह बिरादरी में पेवस्त करके रख दे। हाँ, ऐसा बेमिसाल तरीक़ा भी आपको बग़ैर किसी जुस्तजू के बना बनाया और सैकड़ों वर्ष से चलता हुआ मिल गया, मगर आपने इन नेमतों की कोई क़द्र न की, क्योंकि आँख खोलते ही ये आपको अपने घर में हाथ आ गईं। अब आप उनसे बिलकुल उसी तरह खेल रहे हैं, जिस तरह हीरे की खान में पैदा होनेवाला नादान बच्चा हीरों से खेलता है और उन्हें कंकड़-पत्थर समझने लगता है। अपनी जिहालत व नादानी की वजह से जिस बुरी तरह आप इस ज़बरदस्त दौलत और ताक़त को बरबाद कर रहे हैं, उसका नज़्ज़ारा देखकर दिल जल उठता है। कोई कहाँ से इतनी बरदाश्त की ताक़त लाए कि पत्थरफोड़ों के हाथों जवाहिरात को बरबाद होते देखकर ज़ब्त कर सके?

मेरे प्यारो! आपने शायर का यह शेर तो सुना ही होगा—

ख़रे ईसा अगर ब मक्का रवद
चूँ बियायद हुनूज़ ख़र बाशद

यानी गधा चाहे ईसा (अलै०) जैसे पैग़म्बर ही का क्यों न हो मक्का की ज़ियारत से कोई फ़ायदा नहीं उठा सकता, अगर वह वहाँ हो आए तब भी जैसा गधा था, वैसा ही रहेगा।

नमाज़, रोज़ा हो या हज, ये सब चीज़ें समझ-बूझ रखनेवाले इनसानों की तरबीयत के लिए हैं, जानवरों को सुधारने के लिए नहीं हैं। जो लोग न उनके मतलब व माने को समझें, न उनके मक़सद से कुछ मतलब रखें, न उस फ़ायदे को हासिल करने का इरादा ही करें जो इन इबादतों में भरा हुआ है, बल्कि जिनके दिमाग़ में इन इबादतों के मक़सद व मतलब का सिरे से कोई ख़याल ही न हो, वे अगर इन कामों की नक़ल इस तरह उतार दिया करें कि जैसा पिछलो को करते देखा वैसा ही खुद भी कर दिया, तो इससे आख़िर किस नतीज़े की उम्मीद की जा सकती है ? बदक़िस्मती से आम तौर पर आजकल के मुसलमान इसी तरीक़े से इन कामों को अंजाम दे रहे हैं। हर इबादत की ज़ाहिरी शक्ल जैसी मुक़र्रर कर दी गई है, वैसी ही बनाकर रख देते हैं, मगर वह शक्ल रूह से बिलकुल ख़ाली होती है। आप देखते हैं कि हर साल हज़ारों ज़ियारत करनेवाले इस्लाम के मरकज़ की तरफ़ जाते हैं और हज करके पलट आते हैं, मगर न जाते वक़्त ही उनपर वह असली कैफ़ियत तारी होती है जो हरम के एक मुसाफ़िर में होनी चाहिए और न वहाँ से वापस आकर ही उनमें हज का कोई असर पाया जाता है और न ही इस सफ़र के बीच में वे इन आबादियों के मुसलमानों और ग़ैर मुसलिमों पर अपने अख़लाक़ का कोई अच्छा असर डालते हैं, जिनपर से उनका गुज़र होता है। बल्कि इसके बिलकुल उल्टे उनमें ज़्यादातर वे लोग शामिल होते हैं जो अपनी गन्दगी, बदतमीज़ी और अख़लाक़ी पस्ती की नुमाइश करके इस्लाम की इज़्ज़त को बट्टा लगाते हैं। उनकी ज़िन्दगी को देखकर बजाए इसके कि दीन की बुज़ुर्गी का कोई सिक्का दूसरों पर जमे, ख़ुद अपनों की निगाहों में भी वह बेइज़्ज़त हो जाता है। और यही वजह है कि आज ख़ुद हमारी अपनी क़ौम के बहुत-से नौजवान हमसे पूछते हैं कि ज़रा इस हज का फ़ायदा तो हमें समझाओ, हालाँकि यह हज वह चीज़ थी कि अगर इसे इसकी असली शान के साथ अदा किया जाता तो ग़ैर मुसलिम तक इसके फ़ायदों को एलानिया देखकर ईमान ले आते। किसी तरहरीक के हज़ारों लाखों मेम्बर हर साल दुनिया के हर हिस्से से ख़िंचकर इकट्ठा हों और फिर अपने-अपने मुल्कों को वापस जाएँ, मुल्क-मुल्क और शहर-शहर से गुज़रते हुए अपनी पाकीज़ा ज़िन्दगी, पाकीज़ा ख़यालात और पाकीज़ा अख़लाक़ को ज़ाहिर करते जाएँ, जहाँ-जहाँ ठहरें और जहाँ-जहाँ

से गुज़रें वहाँ अपनी तरहीक के उसूलों का न सिर्फ़ ज़बान से प्रचार करें, बल्कि अपनी अमली ज़िन्दगी से उनका पूरा-पूरा मुज़ाहिरा भी कर दें, और यह सिलसिला दस-बीस वर्ष नहीं, बल्कि सदियों तक साल-ब-साल चलता रहे, भला ग़ौर तो कीजिए कि यह भी कोई ऐसी चीज़ थी कि इसके फ़ायदे पूछने की किसी को ज़रूरत पेश आती? ख़ुदा की क़सम! अगर यह काम सही तरीक़े पर होता तो अंधे तक उसके फ़ायदे देखते और बहरे उसके फ़ायदे सुन लेते। हर साल का हज करोड़ों मुसलमानों को नेक बनाता, हज़ारों ग़ैर मुसलिमों को इस्लाम के दायरे में खींच लाता और लाखों ग़ैर मुसलिमों के दिलों पर इस्लाम की बुज़ुर्गी का सिक्का बिठा देता। मगर बुरा हो जिहालत का, जाहिलों के हाथ पड़कर कितनी क़ीमती चीज़ किस बुरी तरह बरबाद हो रही है।

हज से पूरे फ़ायदे हासिल करने का तरीक़ा

हज के पूरे फ़ायदे हासिल होने के लिए ज़रूरी था कि इस्लाम के मरकज़ में कोई ऐसा हाथ होता जो इस आलमगीर ताक़त से काम लेता, कोई ऐसा दिल होता जो हर साल तमाम दुनिया के जिस्म में पाक ख़ून दौड़ाता रहता, कोई ऐसा दिमाग़ होता जो इन हज़ारों लाखों ख़ुदा के भेजे हुए क़ासिदों के वास्ते से दुनिया भर में इस्लाम के पैग़ाम को फैलाने की कोशिश करता, और कुछ नहीं तो कम-से-कम इतना ही होता कि वहाँ ख़ालिस इस्लामी ज़िन्दगी का एक मुकम्मल नमूना मौजूद होता और हर साल दुनिया के मुसलमान वहाँ से सही दीनदारी का ताज़ा सबक़ ले-लेकर पलटते। मगर हाय अफ़सोस कि वहाँ कुछ भी नहीं! लम्बी मुद्दतों से अरब में जिहालत परवरिश पा रही है। अब्बासियों के दौर से लेकर उसमानियों के दौर तक हर ज़माने के बादशाह अपनी सियासी ग़रज़ की ख़ातिर अरब को तरक़्क़ी देने के बजाए सदियों से लगातार गिराने की कोशिश करते रहे हैं। उन्होंने अरबवालों को इल्म, अख़लाक़ व तमद्दुन हर चीज़ के एतबार से पस्ती की इनतिहा तक पहुँचाकर छोड़ा है। नतीजा यह है कि वह सरज़मीन, जहाँ से कभी इस्लाम का नूर तमाम दुनिया में फैला था, आज उसी जाहिलियत के क़रीब पहुँच गई है, जिसमें वह इस्लाम से पहले मुबतिला थी। अब न वहाँ इस्लाम का इल्म है, न इस्लामी अख़लाक़ है, न इस्लामी ज़िन्दगी है। लोग दूर-दूर

से बड़ी गहरी अक़ीदतें लिए हुए पाक हरम का सफ़र करते हैं, मगर इस इलाक़े में पहुँचकर जब हर तरफ़ उनको जिहालत, गन्दगी, लालच, बेहयाई, दुनियापरस्ती, बदअख़लाक़ी, बदइनतिज़ामी और आम बाशिन्दों की हर तरह गिरी हुई हालत नज़र आती है तो उनकी उम्मीदों का पूरा ताना-बाना बिखर जाता है, यहाँ तक कि बहुत-से लोग हज करके अपने ईमान बढ़ाने के बजाए और उल्टा कुछ खो आते हैं। वही पुरानी महन्तगरी जो हज़रत इबराहीम व इसमाईल (अलै०) के बाद जाहिलियत के ज़माने में काबे पर छाई हुई थी और जिसे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने आकर ख़त्म किया था, अब फिर ताज़ा हो गई है। हरम काबा के मुन्तज़िम फिर उसी तरह महन्त बनकर बैठ गए हैं। ख़ुदा का घर उनके लिए जायदाद और हज उनके लिए तिजारत बन गया है। हज करनेवालों को वे अपना ग्राहक समझते हैं। दूसरे मुल्कों में बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें पानेवाले एजेन्ट मुक़र्रर हैं, ताकि ग्राहकों को घेर-घेरकर भेजें। हर साल अजमेर के ख़ादिमों की तरह एक दल-का-दल दलालों और सफ़री एजेन्टों का मक्का से निकलता है, ताकि दुनियाभर के मुल्कों से ग्राहकों को घेर लाएँ। क़ुरआनी आयतें और हदीस के हुक्म लोगों को सुना-सुनाकर हज पर तैयार किया जाता है, इसलिए नहीं कि उन्हें ख़ुदा का आएद किया हुआ फ़र्ज़ याद दिलाया जाए, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि इन हुक्मों को सुनकर ये लोग हज को निकलें तो आमदनी का दरवाज़ा खुलें। मानो अल्लाह तआला और उसके रसूल ने यह सारा कारोबार उन्हीं महन्तों और उनके दलालों की परवरिश के लिए फैलाया था। फिर जब इस फ़र्ज़ को अदा करने के लिए आदमी घर से निकलता है तो सफ़र शुरू करने से लेकर वापसी तक हर जगह उसको मज़हबी मज़दूरों और दीनी ताजिरों से साबिक़ा पेश आता है। मुअल्लिम, तवाफ़ करने और तवाफ़ करानेवाले, काबे की कुँजी रखनेवाले और ख़ुद हिजाज़ की हुकूमत, सब इस तिजारत में हिस्सेदार हैं। हज के सारे मनासिक मुआवज़ा लेकर अदा कराए जाते हैं। एक मुसलमान के लिए काबा के घर का दरवाज़ा तक फ़ीस के बग़ैर नहीं खुल सकता (ख़ुदा पनाह में रखे)। यह बनारस और हरिद्वार के पंडितों की-सी हालत उस दीन के सिर्फ़ नाम के ख़िदमत गुज़ारों और मरकज़ी इबादतगाह के मुजाविरों ने इख़तियार कर रखी है, जिसने महंतगरी के कारोबार की जड़ काट दी थी। भला जहाँ इबादत कराने का

काम मज़दूरी और तिजारत बन गया हो, जहाँ इबादतगाहों को आमदनी का ज़रिया बना लिया गया हो, जहाँ ख़ुदा के हुक्मों का इस ग़रज़ के लिए इस्तेमाल किया जाता हो कि ख़ुदा का हुक्म सुनकर लोग फ़र्ज़ बजा लाने के लिए मजबूर हों और इस ताक़त के बल पर उनकी जेबों से रुपया घसीटा जाए, जहाँ आदमी को इबादत का हर रुक्न अदा करने के लिए मुआविज़ा देना पड़ता हो और दीनी सआदत एक तरह से ख़रीद व फ़रोख़्त की चीज़ बन गई हो, ऐसी जगह इबादत की रूह बाक़ी कहाँ रह सकती है? किस तरह आप उम्मीद कर सकते हैं कि हज करनेवालों और हज करानेवालों को इस इबादत के हक़ीक़ी और रूहानी फ़ायदे हासिल होंगे? जबकि यह सारा काम एक तरफ़ सौदागरी और दूसरी तरफ़ ख़रीदारी की ज़ेहनियत से हो रहा हो?[1]

इस ज़िक्र से मेरा मक़सद किसी को इलज़ाम देना नहीं है, बल्कि सिर्फ़ आप लोगों को यह बताना है कि हज जैसी अज़ीमुश्शान ताक़त को आज किन चीज़ों ने तक़रीबन बेअसर बनाकर रख दिया है। यह ग़लतफ़हमी किसी के दिल में न रहनी चाहिए कि इस्लाम में और उसके जारी किए हुए तरीक़ों में कोई कोताही है। नहीं, कोताही दरअसल उन लोगों में है जो इस्लाम की सही और ठीक-ठीक पैरवी नहीं करते। यह आपके अपने हाथों की कमाई है कि जो तरीक़े आपको इनसानियत का मुकम्मल नमूना बनानेवाले थे और जिनपर ठीक-ठीक अमल करके आप तमाम दुनिया का सुधार करनेवाले और इमाम बन सकते थे, उनसे आज कोई अच्छा फल ज़ाहिर नहीं हो रहा है और नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि लोगों को ख़ुद इन तरीक़ों

---

1. ध्यान रहे कि यह ख़ुतबा सन् 1938 ई० का है। इसके बाद से अब तक हालात का बहुत कुछ सुधार हो चुका है और सऊदी अरब की हुकूमत और भी सुधार के लिए कोशिश कर रही है। रियाज़, मक्का, जिद्दा आदि शहरों में शरीअत की तालीम के लिए ऊँचे दर्जे के इदारे क़ायम किए गए हैं। मदीना में एक इस्लामी यूनिवर्सिटी ने बड़े पैमाने पर काम शुरू कर दिया है। मक्का में राबिता आलम-ए-इस्लामी के नाम से इस्लामी जगत का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन क़ायम किया गया है जो पूरी कोशिश कर रहा है कि हज के इजतिमा से फ़ायदा उठाकर तमाम मुसलमानों में दीनी रूह पैदा की जाए। इन पहलुओं से हालात बड़ी हद तक क़ाबिले इतमीनान हैं। अब दो कामों की तरफ़ खास ध्यान देने की ज़रूरत है। एक यह कि मक्का-मदीना की सरज़मीन को मग़रबी तहज़ीब के सैलाब से बचाया जाए। दूसरे यह कि मुअल्लमीन के तरीक़ेकार की इसलाह की जाए। ख़ुदा करे कि सऊदी हुकूमत इस बारे में सही तदबीरें अमल में लाए। —प्रकाशक

के फ़ायदेमंद होने में शक होने लगा है। इसकी मिसाल बिलकुल ऐसी है जैसे एक तजुर्बाकार हकीम बेहतरीन पुरअसर नुस्ख़े तैयार करके छोड़ गया हो और बाद में उसके वे नुस्ख़े अनाड़ी और जाहिल जानशीनों के हाथों पड़कर बेकार भी हो रहे हों और बदनाम भी। नुस्ख़ा ख़ुद में चाहे कितना ही सही हो, मगर हर हाल में उससे काम लेने के लिए फ़न की जानकारी और समझ-बूझ ज़रूरी है। अनाड़ी उससे काम लेंगे तो अजब नहीं कि वह ग़ैर-मुफ़ीद ही नहीं, बल्कि नुक़सानदेह हो जाए और जाहिल लोग, जो ख़ुद नुस्ख़े के जाँचने की सलाहियत न रखते हों, इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाएँ कि नुस्ख़ा ख़ुद ही ग़लत है।

☆ ★ ☆